

सत्साहित्य प्रकाशन

गांधीवादी संयोजन के सिद्धान्त

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की भूमिकामहित



लेखक

श्रीमन्नारायण

प्रशुभाकर

वमनाथ महोदय



१९६१

सत्सा साहित्य भण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड व्याख्याय
मंत्री सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली ।

पहली बार १९९१
मूल्य
पाँच रुपये

प्रकाशकीय

इस पुस्तक को पाठकों के सामने रखते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है। गांधी-साहित्य की यह एक अनमोल कृति है। इसमें गांधीजी की कल्पना के मारल का बहुत ही विस्तार बिना दिया गया है। गांधीजी इस देश में समराज्य की स्थापना करना चाहते थे। उस व्यवस्था के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं पर उन्होंने स्वयं बहुत-कुछ लिखा है। उस सबका सार और उसका विवेचन पाठकों को इस पुस्तक में मिलेगा।

पुस्तक की सामग्री छः खण्डों में विभाजित की गई है। पहले खण्ड में 'नारल के धार्मिक विकास की गांधीवादी संवेचना है जिसे लेखक ने सन् १९४४ में प्रस्तुत किया था। उस पुस्तिका का देश में बहुत ही व्यापक प्रचार हुआ था और लगभग सभी भारतीय भाषाओं में उसके अनुबाद हुए थे। उसकी छूमिका में स्वयं महात्मा गांधी ने लिखा था

‘भाचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवास उन पुषकों में से हैं, जिन्होंने अपने समूह धारम बुद्धिसाली भी जीवन को भालुभूमि की सेवाके लिए लिखा कर कर दिया है। जीवन के जिस मार्ग का मैं पोषक हूँ उसके साथ सम्मेलन उनकी पूर्ण सहानुभूति है। यह पुस्तिका वर्तमान राजनीति-धारा के रूप में उसीकी व्याख्या का एक प्रयास है। भाचार्य अग्रवास ने जान पड़ता है उस विषय के अर्थात् साहित्य का अच्छी तरह से अध्ययन किया है। मुझ यह कहते हुए दुःख होता है कि मैं इस प्रबन्ध को जिसने ध्यान से पढ़ना चाहिए था नहीं पढ़ पाया हूँ फिर भी मैं यह कह सकने के लिए काफी पढ़ चुका हूँ कि किसी भी जगह उन्होंने मेरी मसल व्याख्या नहीं की है। इसमें इस बात का दावा नहीं है कि यह जराबे के अर्थशास्त्र के फसि लालों का सर्वांगीण प्रतिपादन है। इसमें अहिंसा पर आधारित जराबे के अर्थशास्त्र और औद्योगिक अर्थशास्त्र का—जिसके लाभदायक होने के लिए उसका आधार हिंसा पर होना अनिवार्य है, अर्थात् उन देशों का खोपन जिनका औद्योगीकरण नहीं हुआ है—तुमनारमक अध्ययन किया गया है।

मुख्य संस्कार के तर्कों को स्वयं प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। मैं इस प्रबन्ध को देश की वर्तमान भयावह स्थिति के प्रात्येक विद्यार्थी द्वारा ध्यानपूर्वक पढ़े जाने की सिफारिश करता हूँ।

गांधीवादी योजना पर जो ध्यानीबनाए हुए उनके उत्तर बैठे हुए लेखक ने एक दूसरी पुस्तिका 'गांधीवादी संयोजना की परिपुष्टि' सन् १९४८ में प्रकाशित की। उसकी भूमिका में डा. राजनप्रसाद ने लिखा

“लेखक ने विषय के सब पहलुओं पर विचार किया है। कुछ निष्कर्ष निकाले हैं तथा प्रस्तुत समस्याओं पर अपने हल भी भुकाये हैं। महात्मा गांधी एक धार्मिकवादी व्यक्ति थे परन्तु वह उतने ही यथार्थवादी भी थे। इसलिये यदि वह धार्मिक के आकाश में ऊँची उड़ान मरते थे तो उन्होंने यथार्थ को भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार इन दोनों के बीच की कड़ी को उन्होंने टूटने नहीं दिया। वह सबब धार्मिक और यथार्थ में सामंजस्य बनाये रखते थे। भारतीय व्यवसाय पर फिर से विचार करने की जरूरत है, पर यह होना चाहिए भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर, क्योंकि वहाँ की परिस्थितियाँ एक जास तरह की हैं—यद्यपि गहराई से देखें तो वेप संसार से वे कुछ ज्यादा भिन्न भी नहीं हैं। इसलिये दूसरे देशों के अनुभव के आधार पर कोई सामान्य सिद्धान्त कायम करके उसे वहाँ लागू करेंगे तो काम नहीं चलेगा। इसी प्रकार जो सिद्धान्त दूसरी जगहों पर काम दे गये वे वहाँ क्यों-कैसे-क्यों काम नहीं करेंगे। इस कामाने के अर्थत् पश्चिमी धर्म शास्त्र के दो प्रमुख और मौलिक सिद्धान्त हैं—यकीकरण और केन्त्रीकरण। जैसे महात्मा गांधी संन मान के विरोधी नहीं हैं परन्तु वह इतना ज़रूर चाहते हैं कि संन अनुप्य को अपना गुलाम न बना सके। स्पष्ट ही धान संनों के कारण केन्त्रीकरण की ओर वृत्ति बढ़ रही है, उसके वह विरुद्ध हैं। संनों के परिणाम-स्वरूप उत्पादन का जो केन्त्रीकरण हो जाता है वह उन्हें पसन्द नहीं। वह तो उत्पादन का विकेन्त्रीकरण चाहते हैं। जैसा कि आचार्य प्रबलास ने बताया है—भारत को जैसा कि वह जबतक करता पाया है मध्यम मार्ग ग्रहण करना चाहिए और यदि संसार भी चाहता है कि उसीका पैदा किया हुआ यह राष्ट्र उसका काम समान कर जाने तो उसे भी यही मार्ग ग्रहण करना होगा। यह मध्यम मार्ग है सत्य और यथार्थता।

हमें इसीकी ग्रहण करना चाहिए। इससे संसार का मार्ग-दर्शन होया और वह भी इसे ग्रहण कर सकेगा। राजनीतिक क्षेत्र में हमने इसका प्रयोग किया है और उसकी मदद से हमें कोई सामुदायिकता नहीं मिली है। इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी हमें इसका प्रयोग करना चाहिए। आज मनुष्य मनुष्य और मनुष्य तथा समाज के हितों में विरोध पैदा हो गया है। इसे मिटाने की जरूरत है। मनुष्य को समाज के हित के सामने अपने हित को गौण समझना चाहिए। परन्तु दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तित्व की भी रक्षा और विकास होना चाहिए। बहुतभी समझ होया जब मनुष्यों के सारे व्यक्तित्व हार-पूरी तरह सत्य और अहिंसा पर आधारित होंगे। गांधीवादी योजना अथवा गांधीजी के सिद्धान्तों पर आधारित जीवन-व्यवहार यही करता है। अपने प्रबंधात्मक और राजनीति में भी वह इन्हीं सिद्धान्तों पर चलता है।

“पुस्तक का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है और हमारे जीवन के साथ उसका घनिष्ठ संबंध है। जो इस विषय पर पुराने ढंग पर बहुत-सा साहित्य लिखा गया है। परन्तु गांधीजी के सिद्धान्तों पर आधारित जीवन-व्यवहार का जोड़ में परिचय देनेवाली पुस्तकें बहुत कम देखने में आती हैं। इसमिद यह पुस्तक और भी अधिक स्वागत के योग्य है।

यह पुस्तिका इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में प्रकाशित की गई है।

तीसरे खण्ड में लेखक की ‘स्वाधीन भारत का गांधीवादी संविधान’ पुस्तिका की गई है, जो सन् १९४६ में भारतीय संविधान सभा के विचार विमर्श की पूर्व चेता में प्रकाशित हुई थी। उस प्रवक्तृ की भूमिका महारत्ना गांधी ने मिली थी। उसमें उन्होंने लिखा था “पुस्तिका में इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि लेखक ने जेमे यथार्थमय प्रामाणिक बनाने की साध बानी रखी है।” “जसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो येरे धारकों ने मुझे प्रसन्नत लगा हो।” मैं अखिलम प्रवक्तृ की इस पुस्तक को भारत के संविधान के प्रतिपादन के धनैक प्रयासों में एक सारगर्भित रैन मानता हूँ। इस प्रयास की कृषी इस बात में है कि उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे समयाभाव के कारण मैं नहीं कर पाया था।

चौथे खण्ड में लेखक की उस लेख-भाग का दिया गया है, जो उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जनरल मीकटरी की हैसियत में कांग्रेस-कमेटी

को पत्रिका 'आर्थिक समीक्षा' में लिखी थी। इस पत्रिका के श्रीमन्नारायणजी सः बर्ग (सन् १९५२ ५८) तक प्रधान सम्पादक रहे थे। इस लेख-माला में उन्होंने गांधीवादी अर्थशास्त्र तथा समाजवादी सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है।

पाचवें वर्ष के लेखों को लेखक ने सन् १९५८ में प्लाजिंग कमीशन के सदस्य हो जाने के बाद लिखा था।

अन्तिम वर्ष में उन्होंने बुनियादी सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए बताया है कि समाजवादी समाज की स्थापना किस प्रकार हो सकती है।

पाठक देखने कि इस पुस्तक में लेखक ने उन सारे बुनियादी तथ्यों का समावेश कर दिया है जिनकी पृष्ठभूमि में गांधीजी भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे।

आज देश के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि उसकी छोटी-बड़ी समस्याओं को किस प्रकार सुलझा जाय और राष्ट्र-पिता के विचारों के अनुसार देश को किस रास्ते में डाला जाय ? यह पुस्तक इस प्रश्न का बड़ी यत्नीरता से उत्तर देती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज भारत संकटि काल से गुजर रहा है और आजारी के इन तेरह बरों में भी समाज और राष्ट्र का सही रूप निश्चित नहीं हो पाया है।

ऐसी अवस्था में हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक बड़े काम की सिख होगी। इसमें गांधीजी के भारत का स्वर मुखरित है और यह सभी पाठकों को बहुत ही विचार प्रेरक सामग्री प्रदान करती है।

यह पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ गांधियन प्लानिंग' के नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी है, पर हिन्दी में इसका अनुबाद करने में आज और विषय की सुव्यवस्था के लिए कुछ सामान्य हेर-फेर कर दिया गया है।

—गांधी

भूमिका

श्री श्रीमन्नारायण गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के बहुपट्टि एवं वित्तमयीम लेखक हैं। गांधीजी की रचनाओं के अध्ययन से उन्होंने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसके धारावा उन्हीं एक बड़ा लाभ यह भी रहा है कि वह गांधीजी के सम्पर्क में आये हैं और विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत होने-वासी विविध समस्याओं पर चर्चाओं में भी इन्होंने प्रायः भाग लिया है। इतना ही नहीं उन्होंने इस विविध विषय पर दूसरों के साहित्य तथा कृतियों के अध्ययन का भी प्रतिरिक्त लाभ उठाया है।

श्री श्रीमन्नारायण का संबंध उन संस्थाओं और संघों से भी रहा है जो गांधीवादी विचारक कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं तथा घटकों को क्रियान्वित करने में संलग्न हैं। उदाहरण के लिए बुनियादी छात्रीय छादी प्रमोद्योग तथा इस प्रकार के अन्य कार्यों से सम्बद्ध संस्थाओं से उनका संबंध रहा है। कांग्रेस में काम करने से उन्हें उस विशाल संस्था के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला है। समय में रहने से उन्हें विभिन्न प्रश्नों के बारे में गांधीवादी दृष्टिकोण का अध्ययन करने और संसद-सदस्यों के सामने उसे रखने के भी मौके मिले हैं।

व्यापक अध्ययन और महारमा गांधी के विचारों एवं कृतियों के निजी वित्तन और संपर्क के आधार पर लिखी यह पुस्तक उन सभी के लिए पठनीय है जो उन विषयों में अभिरुचि रखते हैं जिनपर देश का ध्यान केन्द्रित है और जिनमें से अधिकांश बुर्गम्य से विचारवास्तव विषय बने हुए हैं।

यह आवश्यक नहीं कि उनके प्रत्येक निष्कर्ष को स्वीकार ही किया जाय अथवा साथ मुद्दों के समर्पन में उन्होंने जो तर्क दिये हैं जिससे यह कवि मोक्षप्राप्त हो सके उन सबसे सहमत ही हुआ जाय। पाठकों को इसमें बहुत-कुछ ऐसी सामग्री मिलेगी जो कि सूचनात्मक है शिक्षाप्रद है और विचार-प्रेरक है।

मुझे विश्वास है घाम जनता के मन में जो बहुत-से सवाल उठ रहे हैं उन्हें समझने-बुझने में यह पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी।

राष्ट्रपति-मदन मोहन मालवी

१४ जनवरी १९६०

विषय-सूची

खंड १ गांधीवादी योजना

१—११

साक्षरी १८ ग्रहिया २३ धर्मधर्म की पवित्रता २७ पुरखत का प्रमोदन २९ मानवीय मूल्य ३२ भारतीय ग्रामीण समाज ३६ धार्मिक प्रजातन्त्र ३९ मन्त्रीकरण की बुझाया ४१ मन्त्रों के प्रति गांधीजी का दृष्ट ४४ बेकारी ४३ वितरण की समस्या ४७ राष्ट्रीय सुरक्षा ४८ उत्पादन की कीमत ४९ प्राणि-सात्व का प्रमाण ५२ बेटी और ग्रामीण जीवन ५३ अन्तर्राष्ट्रीय धानि ५४ मध्य प्रमाण पत्र ५५ चीन में ५७ जापान में ५९ बूझरे वेष्ट ६ उपसंहार ६१।

खंड २ योजना का विवेचन

१२—१९

माजीवाद और संयोजन ६३ माजीवाद और राष्ट्रीयकरण ६४ क्या यह विचार मध्यगुणी है? ६५ स्वावसम्भल क्यों? ६९ धार्मिक मूल्यता ७२ ग्राम-पञ्चायत 'अयोध्या' हैं। ७४ बुनियादी सिद्धान्तों का पुनरुद्धारण ७६ 'साक्षात् जीवन और उच्च विचार' ७७ पूरा रोजगार ८१ कार्य-क्षमता कहाँ से साधने? ८० विकेन्द्रीकरण ८४ विकेन्द्रीकरण बनाम समाजीकरण ८६।

खंड ३ राजनैतिक पहलू

१००—१२१

बुनियादी सिद्धान्त १ ४ राज्य का उद्देश्य १ ५ अधिनायकवादी राज्य बनाम अधिनायक १ ७ लोकतन्त्र ही एकमात्र विकल्प ११ लोकतन्त्र और राष्ट्रीय ११३ पूँजीवादी लोकतन्त्र ११५ लोकतन्त्र बनाम हुस्तकवादी ११७ राजनैतिक दल और संयोजन ११८ केन्द्रीकरण ११९ गांधीजी का मार्ग ११९ ग्रहिया १२२ विकेन्द्रीकरण १२४ युनान के नगर-राज्य १२८ भारत के ग्रामीण प्रजातन्त्र १२९ विकेन्द्रीकरण का धर्मशास्त्र १३३ विकेन्द्रीकरण का सत्त्व ज्ञान १३७ सामाजिक पहलू १३९ जीवन का ध्यान १४० कला और सौन्दर्य १४१ राष्ट्र की सुरक्षा १४२ अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द १४३ पहले अपनी संभावे १४३ क्या इसमें पुरानापन है? १४६

- अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-मित्रता १४८ सर्व सम्मता १४९। १४२—२४३
 सर्वोच्च और समाजवादी नमूना
 समाज का समाजवादी स्वरूप १४२ समाजवादी समाज-रचना
 और औद्योगिकीकरण १४७ समाजवादी स्वरूप और सामाजिक क्रांति
 १६० समाजवादी समाज साठ सिद्धान्त १६४ समाजवादी राज्य
 की ओर १६६ समाजवादी संयोजन में लोकतन्त्र की वृद्धि १७२
 नीचे से संयोजन १७४ संयोजन और सर्वोच्च १८० नैतिक मूल्यों
 की आवश्यकता १८४ धार्मिक और नैतिक संयोजन १८६ नीचा
 नाप १८८ माध्य और सामान्य १९ पहली कक्षादारी १९४ सर्वो
 दय और मावसवाद १९५ भारत और साम्यवादी पद्धति १९८
 साम्यवाद और लोकतन्त्र २१ साम्यवादी वर्धन २३ सम्प्रदाय
 वाद और साम्यवाद २६ धार्मिक नवयोजन और धिक्का २९
 धिक्का और लोकतन्त्र १७ शिक्षा में सम्प्रदायवाद २१५ कम
 विकसित देश में विरोधी दम २१७ मनुष्य और राज्य २१६ हमारी
 उद्योग-नीति २२१ छोटे उद्योगों का धर्षणास्त्र २२८ मिस हाव
 करने और जारी २३१ वाणिज्य सुधारों का धर्षणास्त्र २३४
 हमारी धर्म-नीति २३८ हमारी तात्कालिक धर्षणास्त्राण २४
 सबसे बड़ा धनु-बेकारी २४१ भूमि-सुधार २४७ भूमि की उच्च
 तम सीमा २५० हमारी जेती की समस्या २५१ उत्पादन का
 धर्मियान २५६ भूदान-वक्त्र का धर्षणास्त्र २६१ सामदान की क्रांति
 २६६ करों के सम्बन्ध में नई नीति २७१ सरकारवादी की नीति
 २७८ सुरक्षा का धर्षणास्त्र २८२ शान्ति राज २८६ शासन का
 विरोधीकरण २९ साम्प्रदायिक विकास और जगता २९१। २९७—३९८
 भारतीय संयोजन की आधारभूत दृष्टि
 संयोजन और मोरतन्त्र ३० नवयोजन का ध्येय ३१ राष्ट्रीयवादी
 संयोजन के मूल तत्त्व ३१० भूमि-सम्बन्धी नीति ३१४ सहकारी
 नेती का धर्षणास्त्र ३१७ भाग्य में दृष्टि का नवयोजन ३२१ तीसरी
 योजना की दृष्टि ३२४।
 ; अन्तर्द्वार

गांधीवादी सयोजन
के
सिद्धान्त



गांधीवादी संयोजन के सिद्धान्त

खण्ड १

गांधीवादी योजना

१

सुले व्यापार की नीति के घंठ के साथ ही प्रत्येक देश में आर्थिक संयोजन का महत्त्व अत्यन्त बढ़ गया है। प्रथम महायुद्ध के पहले मजदूरों की सेवा मकानों की कमी और बेकारी को मिटाने जैसे राष्ट्रीय जीवन के बहुत बड़े घंटों के बारे में संयोजन की पद्धति पर सोचा जाता था परन्तु उसके बाद तो संयोजन का विचार बहुत फैल गया। राष्ट्रीय जीवन के तम तम हर पक्ष का संयोजन शुरू हो गया। सोवियत रूस की पंचवर्षीय योजना इस प्रकार का सबसे पहला प्रयास था। फिर तो यह विचार बड़ा और बेहते-बेहते सारे संसार में फैल गया। संसार में खड़े हुई बेहद मंदी से अपने देश को बचाने के लिए राष्ट्रपति कम्बेस्ट ने अमरीका में 'न्यू डील' (नया सौदा) का प्रारम्भ किया। जर्मनी में हिटलर ने अपने देश को मुक्त ब्रह्मे महायुद्ध के लिए तैयार करने के लिए चार वर्ष की योजना जारी की। इंग्लैंड की जाल खरा भीगी रही। उसने भी संयोजन शुरू किया परन्तु अच्छों में—एक-एक क्षेत्र में—और इसीमें सन्तोष मान लिया। फिर भी आमाजिक सुरक्षा की 'बीबरेज योजना' इस दिशा में उसका एक व्यवस्थित प्रयास था।

भारत में पश्चिम की पद्धति पर संयोजन का प्रयत्न करनेवासे सबसे पहले व्यक्ति बे सार एम बिस्नेस्वरय्या। परन्तु भारत के आर्थिक विकास की व्यवस्थित और व्यापक योजना का तफसीलवार मसविदा बनाने का बरा भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) द्वारा निम्नलिखित राष्ट्रीय संयोजन समिति ने किया। दुर्भाग्यवश यह अपना काम पूरा नहीं कर सकी।



गांधीवादी संयोजन के सिद्धान्त

खण्ड १

गांधीवादी योजना

१

कुले व्यापार की नीति के अंत के साथ ही प्रत्येक देश में धार्मिक संयोजन का महत्त्व एकत्रण बढ़ गया है। अल्प महायुद्ध के पहले मजदूरों की सेवा मकानों की कमी और बेकारी का मिटाने जैसे राष्ट्रीय जीवन के बहुत बड़े प्रश्नों के बारे में संयोजन की पद्धति पर सोचा जाता था परन्तु उसके बाद तो संयोजन का विचार बहुत फैल गया। राष्ट्रीय जीवन के लगभग हर पहलू का संयोजन शुरू हो गया। सोवियत संघ की पंचवर्षीय योजना इस प्रकार का सबसे पहला प्रयास था। फिर तो यह विचार बड़ा और देखते-देखते सारे संसार में फैल गया। संसार में छाई हुई बेहद मंदी से अपने देश को बचाने के लिए राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट ने अमेरिका में 'न्यू डील' (नया डील) का प्रारम्भ किया। जर्मनी में हिटलर ने अपने देश को मुक्त करने के लिए दूसरे महायुद्ध के लिए तैयार करने के लिए चार वर्ष की योजना जारी की। इंग्लैंड की चान चार भीवी रही। उसने भी संयोजन शुरू किया परन्तु अर्थों में—एक-एक क्षेत्र में—और इसीमें सम्योप धान मिला। फिर भी सामाजिक सुरक्षा की 'बीबरेज योजना' इस दिशा में उनका एक व्यक्तिगत प्रयास था।

भारत में अहिंसक की पद्धति पर संयोजन का प्रयत्न करनेवाले सबसे पहले व्यक्ति जे. एम. बिस्मिल्लरम्भा। परन्तु भारत के आर्थिक विकास की अवस्थित और व्यापक योजना का तत्कालीनसार महविदा बनाने का भार भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय संयोजन समिति ने किया। दुर्भाग्यवश यह अपना काम पूरा नहीं कर सकी।

इसका कारण हम सब अच्छी तरह से जानते हैं। इसी प्रकार इन दिनों जब कि भारत की आजाद ब्रामा को बा रखा है तब देश के पाठ प्रमुख उद्योगों ने आर्थिक विकास की पद्धति-वर्षीय योजना बनाकर निश्चित रूप से देश की बड़ी सेवा की है। यह योजना आमतौर पर बम्बई-योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इन सुयोग्य और विख्यात उद्योग-मठियों की सहाई और देश भक्ति में हमें शंका नहीं हो सकती फिर भी हम यह बात भुला नहीं सकते कि यह पश्चिम की पद्धति पर बनाई गई मुख्यतः एक पूँजीवादी योजना है। श्री मानवेंद्रनाथ राय ने भी एक 'पीपल्स प्लान' (जनता की संयोजना) बनाई थी। उसमें दस वर्षों में १५ हजार करोड़ रुपये खर्च करने की कल्पना की गई थी।

परन्तु मुझे लगता है कि भारत के आर्थिक विकास की हम जो भी योजना बनायें वह हमारे सांस्कृतिक और सामाजिक आचारों पर ही बनाई जानी चाहिए। उपर्युक्त योजनाएं ऐसी नहीं हैं। पश्चिम की पूँजीवादी या साम्यवादी योजनाओं की कैबल नकल करने से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें अपनी एक स्वदेशी योजना बनानी होगी जिसकी जड़ें हमारी अपनी जमीन में ही गहरी हों। सुमंगलित और सक्रियताशीली सामाजिक माने किन्तुने समय से भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रहा है। प्राचीन काल में हमारे देश में इसने जिस सामाजिक और आर्थिक संस्कृति का विकास किया है वह छाया समस्त संसार के इतिहास में एक अनोखी वस्तु है। यह समाज रचना आलोचकों पर आधारित थी जिसमें मानवता समा नता न्याय शान्ति और सहयोग सभी अंग प्रोत्त थे। इसलिए यह बकुरी है कि भारत स्वयं अपनी निजी आर्थिक योजना बनाये पश्चिम की नकल मात्र न करे। ऐसा करके वह संसार का मार्ग-दर्शन कर सकेगा और अंत में एक नई व्यवस्था का विकास करने में उसके लिए मददगार भी हो सकेगा। महात्मा गांधी भारतीय अर्थ-व्यवस्था के इन्हीं प्राचीन आधारों पर बराबर जोर देते रहे और अब तो पश्चिम के अनेक महान विचारक भी उनके इन विचारों का समर्थन करने लग गये हैं। सामाज्य से सांपीजी के लेवों को पड़ने और घटपटन करने का मुख्य काफ़ी दबावर मिमा है। यही नहीं भारत के अनेक आर्थिक प्रश्नों पर मैंने अपने अनेक वर्षों भी

की है। इसीलिए मैं इनके बारे में गांधीजी के विचार अवस्थित रीति से जनता के सामने पेश करने का साहस कर रहा हूँ। इनके समर्थन में मैं पश्चिम के विख्यात धर्म-शास्त्रियों और समाज-शास्त्रियों के प्रमाण भी उद्धृत करूँगा। भारत की प्राथमिक समस्याओं पर गांधीजी ने बहुत लिखा है क्योंकि वह बहुत बड़े धर्मशास्त्री रहे हैं। परन्तु उस भागी में नहीं जिसमें धाम तीर पर इस धर्म का प्रयोग होता है। इसलिए उन्होंने पिसे पिटे टकसानी धर्मों का प्रयोग नहीं किया। उनके विचार सहज-बुद्धि के रूप में प्रकट हुए और उनमें सहरी भावना का आशय था। धर्म स्वभाव से धर्मशास्त्र की एक तर्क-पद्धति में ठीक नहीं बैठते फिर भी उनके नेतृत्व में हमें एक अवस्थित प्राथमिक रचना की मजबूती प्राप्त होती है, जो प्राचीन भारतीय परम्परा पर आधारित है और यदि हम विस्तार से उसकी तफ्तीशें बनाने बैठें तो वह इस पुनर्जागरण के सार को पुनः घोषण और संहार के स्तर पर अवश्य ही शान्ति सुरक्षा और प्रगति की सुनिश्चित योजना दे सकती है।

२

धाम हमारे देश में संयोजनाओं तबकीनों और पुनर्निर्माण की योजनाओं की माइ-सी आई हुई है। परन्तु इनके बीच हमें एक बुनियादी बात याद रखनी चाहिए। वह यह कि योजना अपने-आपमें कोई साध्य नहीं है। प्रथम में साध्य तो चुननी ही थी है और योजना उसका एक साधन मात्र है। विज्ञापनों में धृष्टी दवाओं की भाँति हर योजना के बनानेवाले धपनी बीच को सर्वमंथ बताते हैं। धन्य धोत्र भी उसमें अपनी कल्पना जोड़कर मान लेते हैं कि उसके धर्मर कोई जाहू है जो उनकी हर प्रकार की प्राथमिक मुसीबत को दूर कर देगा।

योजनाएं बनाना धनवला धपने-आपमें कोई दुर्ग योजना नहीं है। वह तो दूरदृष्टी और समझदारी-मरी थी है। परन्तु जब घोषण के मूल्य और वह तरीकों को छिपाने के लिए उन्हें समझ-मरी बड़ी-बड़ी योजनाओं का जाला पहाया जाता है तब उन्हें हमें समझ और सावधानी की जरूरत से ही देखना पड़ता है।

हमारे सामने आज बहुत ही कठिन समस्याएँ हैं। केवल योजनाएँ बनाने से ये नहीं सुलझेंगी और न उनसे संसार की हानत ही सुभरेगी। वस भी गाँधि संयोजन के जरिये जनता के 'रङ्ग-सङ्ग' को ढँचा छठाने में काफी सफलता मिल सकती है। परन्तु इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का बलि दान करना पड़ता है। बर्मेनी की गाँधि युद्ध-यन्त्रों को तेजी से बढ़ा कर नष्ट और बलाने के लिए 'छोटी कढ़ाई' के साथ लोगों को काम में मजबूर बेकारी की समस्या को भी कुछ हद तक हल किया जा सकता है। इसी प्रकार राष्ट्र में कोई आर्थिक संकट पैदा हो तो अमेरिका के 'न्यू डील' (नया सीढ़ा) की भाँति उसे दूर करने के लिए एक सामाजिक उपाय के रूप में भी संयोजन का उपयोग किया जा सकता है। ईंग्लैंड में भी 'बीबरज योजना' ने साम्राज्य के मातहत प्रदेशों और उपनिवेशों के सारे राज्यों को जुटाकर अंगरेज कीम के अन्दर कुछ सामाजिक सुखा निर्माण कर दी।

इस प्रकार संयोजन एक बहुत बड़ा यंत्र है, किन्तु याद रहे कि यह बड़ा यंत्र है। उसका भसा और बुरा दोनों प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। इसलिए मुझे यह बात यह है कि उसका उद्देश्य क्या था क्या है? उसकी बड़ में मानना—भीषत—क्या है?

इस प्रकार मुख्य प्रश्न यह है कि आर्थिक संयोजन का मुख्य उद्देश्य क्या हो? केवल इतना कह देना काफी नहीं है कि 'हम जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाना चाहते हैं' या 'समाज को समृद्ध बनाना चाहते हैं।' बल्कि-योजना का उद्देश्य यही बताया गया है कि अत्यंत पंद्रह वर्षों में भारत में धातमी की अतिष्ठ धाय बूनी हो जायगी। और, हम एक क्षण को मान लेते हैं कि इस योजना के अमल से जन-साधारण की अतिष्ठ धाय बड़ी पंद्रह वर्षों में बूनी हो सकती है। परन्तु केवल धाय का इस प्रकार दूना हो जाना अपने-आपमें कोई बहुत अन्धसाध्य नहीं कहा जा सकता। आर्थिक मूर्खों को हम जीवन के मानवोचित और सांस्कृतिक मूल्यों से कभी धनप नहीं कर सकते। इसीलिए तो राष्ट्रीय महागंगा की संयोजन-समिति ने कहा था कि संयोजन में जीवन के 'सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का भी अमावेश किया जाना चाहिए। उसके मानवीय पहलू को सुनाया नहीं

जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए पश्चिम की जीजिये। वहाँ जीवन का स्तर इतना बढ़ा हो चुका है कि अब उसे अधिक उठाने की गुंजाइश ही नहीं है। वहाँ संयोजन का सख्त बताना जाता है—“सबके लिए पूरा काम। परन्तु यह भी कोई मदद है? पूरा काम बना संयोजन का सख्त नहीं हो सकता। वह तो किसी साम्य का एक साधन मात्र है। कुछ लोग कहते हैं संयोजन का सख्त अधिक उत्पादन होना चाहिए और वे कहते हैं कि इसके लिए देश की जन-शक्ति का तथा साधनों का पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। परन्तु हम जानते हैं कि अत्यधिक औद्योगीकरण और उत्पादन का परिणाम क्या हुआ है? वहाँ एक तरफ अत्यधिक विपुलता और समृद्धि है, दूसरी तरफ वहीं-वहीं दरिद्रता का घोर अविनाश भी अत्यन्त हमारी आँखों के सामने है।

तो फिर हमारे संयोजन का उद्देश्य क्या हो? प्राध्यापक कोल कहते हैं कि “हमारा आर्थिक संयोजन इन सिद्धान्तों के आधार पर हो कि समाज के पास उत्पादन की जो भी साधन-सामग्री हो उसका पूरा-पूरा उपयोग होना चाहिए और सबकी आमदनी का वितरित-वितरण भी इस प्रकार सुनिश्चित प्रकार से हो कि सर्व-साधारण की सजाई और कल्याण की दृष्टि से सर्व करने के लिए वह उपलब्ध हो सके।”^१ प्राध्यापक प्रोल्डस हक्ससे अन्तर्गत संयोजन की मुख्य कसौटी यह बताते हैं कि जिस समाज पर यह लागू किया जा रहा है। उसके पुरुष और स्त्री सदस्यों में अनासक्ति और जिम्मेदारी की भावना बाने और वे उत्तरोत्तर अधिक स्वायत्तीय शान्त नीतिमान बुद्धिमान और प्रगतिशील बनें। यदि ऐसा होता है तो वह संयोजन सही और सफल है अन्यथा वह गलत और असफल है।^२ ‘जनता की संयोजना’ (पीपल्स प्लान) में भी गान्धेयभाषा रॉय ने बताया है कि “संयोजन का उद्देश्य जनता की तात्कालिक तथा बुनियादी जरूरतों की पूर्ति होना चाहिए।” परन्तु इस विषय में मुझे डॉ० सन यात सन के जनता के तीन सिद्धान्त—‘राष्ट्रीयता प्रजातन्त्र और जीविका’ सबसे

^१ प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक प्लानिंग पृष्ठ ४०६

^२ इन्ट्रोडक्शन पीपल्स प्लान, पृष्ठ ३२

हमारे सामने आज बहुत ही कठिन समस्याएँ हैं। केवल योजनाएँ बनाने से वे नहीं सुलझती और न उनसे संसार की हातहत ही सुधरेगी। इस की भाँति संयोजन के जरिये जनता के रहन-सहन को ऊँचा उठाने में काफी सफलता मिल सकती है। परन्तु इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का बलि पान करना पड़ता है। जर्मनी की भाँति मुख-मन्त्रों को तेजी से बढ़ा करके और बसाने के लिए फौजी कड़ाई के साथ लोगों को काम में समाकर बेकारी की समस्या को भी कुछ हद तक हल किया जा सकता है। इसी प्रकार राष्ट्र में कोई आर्थिक संकट पैदा हो तो अमरीका के 'न्यू डील' (नया सीरा) की भाँति उसे दूर करने के लिए एक तात्कालिक उपाय के रूप में भी संयोजन का उपयोग किया जा सकता है। इंग्लैंड में भी 'बीवरज योजना' ने साम्राज्य के मातहत प्रदेशों और उपनिवेशों के सारे राज्यों को बुटाकर अंगरेज कीम के अन्दर कुछ सामाजिक सुरक्षा निर्माण कर दी।

इस प्रकार संयोजन एक बहुत बड़ा यन्त्र है किन्तु पाव रहे कि वह जड़ धर्म है। उसका जमा और दुरुबोनों प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। इसलिए मुझे यह बात यह है कि उसका उद्देश्य अथवा मकसद क्या है? उसकी जड़ में भावना—नीयत—क्या है?

इस प्रकार मुख्य प्रश्न यह है कि आर्थिक संयोजन का मुख्य उद्देश्य क्या हो? केवल इतना कह देना काफी नहीं है कि 'हम जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाना चाहते हैं' या 'समाज को समृद्ध बनाना चाहते हैं'। बम्बई-योजना का उद्देश्य यही बताया गया है कि पहले पंद्रह वर्षों में भारत में आबमी की औसत आय दूनी हो जायगी। और हम एक लक्ष को मान लेते हैं कि इस योजना के अमल से जन-साधारण की औसत आय वहाँ पंद्रह वर्षों में दूनी हो सकती है। परन्तु केवल आय का इस प्रकार दूना हो जाना अपने-आपमें कोई बहुत अच्छा साध्य नहीं कहा जा सकता। आर्थिक मूल्यों को हम जीवन के मानवोचित और सांस्कृतिक मूल्यों से कभी अलग नहीं कर सकते। इसीलिए तो राष्ट्रीय महासभा की संयोजन-समिति ने कहा था कि संयोजन में जीवन के 'सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों का भी समावेश किया जाना चाहिए। उसके मानवीय पहलु को नुसलाया नहीं

जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए पश्चिम की नींविये। वहां बीजन का स्तर इतना ऊंचा हो चुका है कि अब उसे अधिक उठाने की युवावस्था ही नहीं है। वहां संयोजन का मध्य बताया जाता है—“सबके लिए पूरा काम।” परन्तु यह भी कोई तथ्य है? पूरा काम बना संयोजन का मध्य नहीं हो सकता। वह तो किसी साम्य का एक साधन मात्र है। कुछ लोग कहते हैं, संयोजन का मध्य अधिक उत्पादन होना चाहिए और वे कहते हैं कि इसके लिए देश की जन-शक्ति का तथा साधनों का पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। परन्तु हम जानते हैं कि अत्यधिक औद्योगीकरण और उत्पादन का परिणाम क्या हुआ है? वहां एक तरह का अत्यधिक विपुलता और समृद्धि है, दूसरी तरह वही-के-वही दरिद्रता का और अधिपाप भी प्रत्यक्ष हमारी आंखों के सामने है।

तो फिर हमारे संयोजन का उद्देश्य क्या हो? प्राध्यापक कोल कहते हैं कि “हमारा आर्थिक संयोजन इन सिद्धान्तों के आधार पर हो कि समाज के पास उत्पादन की ओ भी साधन-सामग्री हो उसका पूरा-पूरा उपयोग हो जाए और सबकी आमदनी का विनियोजन-वितरण भी इस प्रकार सुनिश्चित प्रकार से हो कि सर्व-आधारण की धलाई और कल्याण की दृष्टि से कार्य करने के लिए वह उपमध्य हो सके।” प्राध्यापक प्रॉइस हस्तसे अपने संयोजन की मुख्य कड़ी यह बताते हैं कि जिस समाज पर वह लागू किया जा रहा है। उसके पुण्य और स्त्री समस्याओं में अनात्मिक और अस्मेशारी की भावना जावे और वे उत्तरोत्तर अधिक स्वायत्तता प्राप्त नीतिमान बुद्धिमान और प्रगतिशील बनें। यदि ऐसा होता है तो वह संयोजन नहीं और मध्य है अथवा वह धन और धनहीन है। “जनता की संयोजना” (पीपल्स प्लान) में श्री मानवेन्द्रनाथ राय ने कहा है कि “संयोजन का उद्देश्य जनता की सामूहिकता का सुदृढ़ होना चाहिए।” परन्तु इस विषय में मुझे जो स्पष्टता के जनता के तीन सिद्धान्त—“राष्ट्रीयता, अर्थशास्त्र और समाजवाद”

^१ डिप्टिफण्डेशन ऑफ इन्फोर्मेशन लैनिंग पृष्ठ ४१

^२ अस्तित्व धर्म संज्ञा पृष्ठ ४२

घट्टे मने। वास्तव में हमारा संयोजन राष्ट्र की अपनी संस्कृति और सम्बन्ध पर ही आधारित होना चाहिए। उसका प्रथम और प्रगति भी किसी प्राचीन के शरीर प्रवर्धन पीढ़ी के विकास के समान (स्वाभाविक और प्रकृत से ही) होनी चाहिए। और यह सबकुछ थोड़े-थोड़े बूने हुए लोगों के स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि समस्त राष्ट्र के कल्याण और सुख के लिए हो। मुझे सबता है कि हमारा जो भी प्राथमिक संयोजन हो उसका सबसे पहला सिद्धान्त यही होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि हमारे संयोजन में जनता के साथ छोटी-छोटी बातों की बेरबारी—रेजिमेंटेशन—न हो। अपने सामाजिक, प्राथमिक और राजनैतिक जीवन में जनता के लिए जितनी आवाजी का होना उचित और जरूरी है उसका प्रत्यक्ष प्रयोग हो। सत्ता के सम्पूर्ण केन्द्रिकरण की दृष्टि से नहीं बल्कि लोकतन्त्र की दृष्टि से और लोकतन्त्र को अपना सदैव मानकर हम संयोजन करें। एक सत्य और सच्ची बीड़ी योजना जनता पर लागू कर हम उसका जीवन-स्तर ऊँचा उठाने में सफल कामयाब हो जाय परन्तु ऐसा करने में यदि लोग अपनी आत्मा प्रार्थना स्वाधीनता और स्वशासन की दृष्टि को ही जो बँटते हैं तो ऐसी नीतिगत समृद्धि भी किस काम की? इसलिए प्राथमिक संयोजन में राज्य के नियन्त्रण और अवरोधों की बजाय कम-से-कम हो। कहा भी है कि सबसे अच्छा शासन वही है, जिसे अपनी सत्ता का उपयोग कम-से-कम करना पड़े। परन्तु मैं इससे भी एक कदम आगे जाता चाहता हूँ। संयोजन का काम लोक-सत्ता की केवल रक्षा करना ही नहीं है, बल्कि उसे अधिक वास्तविक और स्थायी बनाकर उसे पुष्ट एवं प्रगतिशील बनाना भी है। इतना भी काफी नहीं होना। हमें केवल अपनी ही रीति में लोक-सत्ता की रक्षा और संवर्धन करके संतोष नहीं मान लेना चाहिए, बल्कि यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करने में हम कहीं दूसरे अधिकृत दलों की आवाजी और लोक-सत्ता का प्रत्यक्ष तो नहीं कर रहे हैं? प्राध्यापक रॉबिन्स ने अपने 'प्राथमिक संयोजन और अन्तर्राष्ट्रीय सुव्यवस्था' (इकॉनॉमिक प्लैनिंग एण्ड इंटरनेशनल ऑर्डर) नामक पुस्तक में ठीक ही लिखा है कि अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम में हम कहीं अपनी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि को न तो हँ यह ध्यान

रहे क्योंकि यदि बाहर लोक-सत्ता की हानि होती है तो उसके परिणाम स्वरूप "हमारे देश की लोकसत्ता भी ध्वस्त हो किन्तु धायगी।"

हमें भूलना नहीं चाहिए कि धार्मिक समानता के बगैर राजनैतिक लोकसत्ता प्रबला प्रजातन्त्र असम्भव है। प्राप्यापन मास्की का कथन है कि "वह राजनैतिक समानता वास्तविक समानता हो ही नहीं सकती जब तक उसके साथ सच्ची धार्मिक समानता भी न हो। यदि धार्मिक समानता नहीं है तो राजनैतिक सत्ता धार्मिक सत्ता की बामी होगी।"^१ इसीलिए तो पूंजीवाद और प्रजातन्त्र कभी एक साथ नहीं रह सकते क्योंकि पूंजीवारी समाज में बनबानों और गिराबारी के बीच सदा एक बहुत बड़ी काई होगी है। इसीलिए एक धम्मे राष्ट्र को चाहिए कि वह अपने नागरिकों की आमदमी में कभी बारी विषमता न पैदा होने दे नही तो बहा सामन-सत्ता घाने-बीछे धवश्य ही बनबानों के हाथ बली जायगी। सम्भव है, एक भादमी ही राजा बन बैठे।

संयोजन का तीसरा सिद्धान्त यह हो कि राष्ट्र के हर नागरिक को सम्मानपूर्वक और न्यायपूर्वक अपनी रोजी कमाने का अधिकार है। उसे काम करने और ईमानदारी के साथ किए गये काम का उचित पारिश्रमिक पाने का अन्तर्निहित अधिकार है, जिसे कोई छीन नहीं सकता। रोजी का धर्म हल या बेकारी का भत्ता (अनएम्प्लायमेंट बोन) नहीं है, ये दोनों एकदम भिन्न चीजें हैं। एक का धर्म है काम और जीवन बून्दे का धर्म है बढ़ना और मरना। बेकारी की धर्मात् रोजो की समस्या को हम तभी सन्तोषजनक रीति से हल कर सकते जब हम समझ लेंगे कि हमारा लक्ष्य केवल इतना ही नहीं है—न होना भी चाहिए—कि कम-से-कम धर्म में और रोजी के साथ काम करनेवाले यत्नों की सहायता में हम जैसे-जैसे प्रबला उत्पादन बढ़ा दें। अपने धार्मिक जीवन के मानवीय पहलु की उपेक्षा करके हम कभी अपना मत नहीं कर सकते। यत्नों और भौतिक सम्पत्ति की उपेक्षा मनुष्य का मूल्य कहीं अधिक है। धार्मिक उत्पादन करके राष्ट्र की सम्पत्ति धार्मिक मनुष्यों को बुल नहीं बुल पहुँचाने के लिए ही तो हम बढ़ाना चाहते हैं। मैं तो समझता हूँ कि डॉ॰ सन वाट मेन के 'बनता के

तीन सिद्धान्तों का सही अर्थ यही है। संयोजन की बात है कि एशिया के एक दूसरे महान लोकनायक महात्मा गांधी ने भी यही बात कही है। हाँ उनके शब्द दूसरे हैं। जब मैं उन तमाम गांधीवादी और समाजवादी मोक्ष मार्गों का परीक्षण करना और देखना चाहता हूँ कि संयोजन के ऊपर बताये तीन बड़ी सिद्धान्तों का उनमें कहाँ तक पावन होता है।

१

पिछले कुछ दशकों में संसार ने अपनी उत्पादन-शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली है—केवल उद्योगों में ही नहीं, खेती में भी। जनसंख्या भी बेशक बढ़ रही है, परन्तु वह उत्पादन-शक्ति हर जगह जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात से कहीं आगे बढ़ गई है। बाहिर है कि इतना उत्पादन बढ़ जाने के फलस्वरूप संसार को अधिक समृद्ध स्वस्थ और खुशी होना चाहिए था और नदीबी की समस्या अपने-आप हल हो जानी चाहिए थी। परन्तु इसके विपरीत आज हम संसार में क्या देखते हैं? संसार में आज भयंकर आर्थिक मन्दी फैली है, जैसी कि पहले कभी नहीं देखी गई थी। इसके कारण संसार बेहद परेशान है। शासकों और कच्चे माल के पर्वतकार संघर्ष पड़े हुए हैं, बिनके लीकें नहीं मिल रहे हैं। करोड़ों लोग बेकार पड़े हैं क्योंकि उनके लिए कारखानों में काम नहीं, यहाँ कारखानेदार जो माल पैदा करते हैं मुनाफ़ा देकर उसके लीकेंनेवाले उन्हें नहीं मिलते। इस प्रकार जितनी भी वह उत्पादन-शक्ति बढ़ती जाती है, संसार उतना ही उसका उपयोग करने में कम समर्थ बनता जा रहा है। कोम ने ठीक ही कहा है

“यदि मनुष्य की उत्पादन—निर्माण—शक्ति बढ़ाने से लोग उलटे बेकार और खुशी होते हैं तो ऐसी शक्ति बढ़ाने से क्या फायदा? विज्ञान शास्त्री क्यों यह बेकार का भय करते हैं? इस प्रकार परिश्रम को हमला करने में क्या लाभ है यदि ऐसा करने से अधिकारिण लोग बेकार होकर रोबी के बंधित होते हैं? कैसा बर्माना या गया है जो आज किसान बोटे समय भूमिदान से ज़िन्दा नज़राना करता है कि उसकी फसल विपन्न प्रायः नहीं तो बहु मन्दी के संकट में फँस जायगा। बड़ा बुरा समय है, परन्तु इसमें

प्रादुर्भाव की बात भी क्या है ? ^१

जीर्ण पैदा करने की मौखिक शक्ति हमने इसनी बड़ा भी है कि हम इनका पूरा उपयोग भी नहीं कर पाते । संसार में पैसी हुई व्यापक बेकारी हुआ और लोगों का आर्थिक तथा मानसिक पतन इसीका परिणाम है । "हमारे सामने एक घबराह समस्या है । कारखानों में मान इतनी तेजी से पैदा होता जाता है और उसके डेर लगते जाते हैं कि उसकी माँग ही मरती जा रही है । " इसनी अधिक समृद्धि और विपुलता के बीच भी प्रादमी पड़ि हो और मूलों मरे, यह सचमुच ऐसी बात है कि इसपर किसीको बिश्वास नहीं होगा हैसी धावेनी । केव मे लिखा है—समृद्धि मुस्कराती है, परन्तु हाम । केवम मुद्दीमर आदमियोंके लिए ही । खेत तो केवम बेखर्त रहें उनके लिए वह नहीं है । वे तो ज़ानों में मरनेवाले उन धनार्थों के समान हैं जिनके पासपास ऊपर-नीचे संपत्ति-ही-संपत्ति है, किन्तु जो उनकी शक्तिता को बूना हुआबायी बना बेसी है । ^२

मलबता यह तो स्पष्ट है कि हमारी मुसीबतों का कारण यह उत्पादन की विपुलता नहीं है, बल्कि हमारी आर्थिक रचना का दोष और उसके गलत प्रादुर्भाव है । पूँजीवाद अपने साथ केवल दोषध और बेकारी ही नहीं लाया बल्कि उसने तो मनुष्य को निरा एक बड़ मन्त्र और बलिदान का पशु बना दिया है । बीरे-बीरे, परन्तु निश्चित पति से उसने प्रजातन्त्र को घन्धर से खोजता कर दिया है, जो अब केवम हाथा-माज रह गया है । मान बता को उसने अपने मार्ग से हटा दिया है । अब तो संसार में सोने और चासों का राज्य है । पूँजीवाद को मूठमूठ की स्वतन्त्रता का सबादा वह नामे का सज्जाजनक प्रयास व्यर्थ ही किया जा रहा है । न्याय और प्रजातन्त्र की बीगे हाँकी जा रही हैं जबकि हर प्रादमी अब जानता है कि मल

^१ 'री इन्वेस्टिगेट मैन्ड गवर्न नु कर्न्ड कबीस', पृ. ६२

^२ 'कर्म, वेल्थ एण्ड डीनैस ऑफ़ डेमोक्रेटिज'—पृ. ११३

^३ When plenty smiles — alas she smiles for few
And those who taste not yet behold her store
Are as the slaves dig the ore
The wealth around them makes them doubly poor

मल के बस्ताने के धम्बर सोहे का पंजा बिपा हुआ है, क्योंकि पूजीबाद की प्रभुसत्ता को मानने से यदि कहीं इन्कार हुआ या सत्ते खरा भी सतरा मह सूस हुआ तो वह नाबीबाद या फ़सियम के रूप में अपना नमन रूप धारण कर लेता है और वैज्ञानिक भीमसत्ता के साथ बानबी क्षमि प्रकट करन लग जाता है। प्रो० नास्की ने अपनी 'हम यहाँ से कहाँ जा रहे हैं?' ब्लेमर दू बी गो कौम हीयर नामक पुस्तक में पश्चिम के धातुनिक राजनैतिक इतिहास का सिद्धान्तकोन करते हुए साफ-साफ बताया है कि पूजी बादी देशों में लोकतंत्र चल ही नहीं सकता। जहाँ प्रतिपक्ष ओरबार नहीं होता वहाँ पूजीबाद लोकतंत्र का बिसावा टिकाने रख सकता है और संघ बीय हंग का धासकीय हांचा निमावे जाता है। परन्तु जब कभी वह सतरा महसूस करता है और देखता है कि वह सुरक्षित नहीं है तो सर्वसत्ता धारणा करके राससी हिंसा का प्रयत्न करने में वह धन-धर की भी देरी नहीं करता।

लॉर्ड केनीन ने अपनी पुस्तक 'धुमे व्यापार का अन्त' (एण्ड धौब सेसा फर) में पूजीबाद के सिद्धान्त की परिभाषा करते हुए लिखा है—“मनुष्य की बन-सासता और उसकी प्राप्ति की सहज वृत्ति को कितना अधिक संतुष्ट किया जा सकता है इसपर वह धर्म-रचना निर्भर करती है। जन की इस अपार लुब्धा ने सोपन उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की पेजीबा परम्परा पैदा कर दी है, जिसका निश्चित परिणाम होता है अनुसार मुड और मनुष्यों का करनेधाम। बर्नार्ड डॉ कहता है कि ‘पूजीबाद को न बिवेक होया और न उसका अपना कोई रीथ।’ मुनाफा उसकी एकमात्र धाकाशा और पैदा उसका भगवान होता है। इसीको हम मानव-भक्ति के बजाय पैसे की भक्ति कहते हैं। अमरीका के उपराष्ट्रपति धी वीलेस ने हमें साब बान करते हुए कहा है कि ‘व्यापारी जयत के लिए तो बॉनस्ट्रीट सबों परि है राष्ट्र उसके बाह।’ प्रो० धौडी ने पैसे को धासमान की सर कराने वाला धत्ताहीन का जाबुर्द कालीन कहा है। ‘किमी समय लोग मानते थे कि पूष्पी स्मिर है और मूरज उसके धास-यास प्रमता है। सब बदि कोई कहता कि यह मलत है वास्तव में सूर्य नहीं पूष्पी सूर्य के धास-यास प्रमती है जो लोग उसे वास्तिक कहने। इसी प्रकार धाज के धर्म-विचारध से कोई

कहे कि ऐसे के लिए मनुष्य नहीं बनाया गया बल्कि मनुष्य के लिए पैसा बनाया गया है तो वह इसे नास्तिक ही नहेगा।^१

इस प्रकार ध्यान हम ऐसे के संसार में रह रहे हैं जहाँ पूँजीपति सर्व सत्ताधीश हैं जैसा कि चाकोटिन ने कहा है, “मुलाफे और ऐसे की इस पागल और घनघरत बौद्ध का फल है मानवता के साथ नीर अत्याचार। परन्तु पूँजीवाद के बिनाश के बीच उसके अन्दर ही छिपे हुए हैं क्योंकि प्रति सबकी बुरी होती है। इस प्रकार पूँजीवाद का अपार मोम घागे-पीछे उसीको से बैठेगा और उसका सर्वनाश करके रहेगा। अतः हम दूसरे के लिए बहुत खोजते हैं तो हम ही उसके अन्दर गिरे। साम्यवाद के प्रसिद्ध घोषणापत्र में लिखा है—“वर्तमान दुर्बुधा समाज में अपार उत्पादन विनिमय और बेमज के साथ नाता जोड़कर अपने लिए प्राप्त पैसा कर रही है। वह उस आदमी की तरह है, जिसने मसान को जगा लिया पर उसे अपने बच में रखना नहीं जानता। तो यह दृष्टि उपाय क्या है? विपुलता के बीच दरिद्रता और अपार उत्पादन तथा अविषाग्पूर्ण बिनाश की यह समस्या कैसे सुलझेगी? समय अपने-आप सब ठीक कर लेगा इस भाषा में हाथ-पर-हाथ रखकर निष्क्रिय तो नहीं बैठे रह सकते। “यह तो माननेवाले विगड़ बोड़े की गाड़ी में निष्क्रिय बैठे रहने जैसा होमा। आप मने ही कहें कि हम और कर ही क्या सकते हैं? परन्तु आपकी यह लाचारी आपको मानेवासी दुर्बटना से बचा नहीं सकेगी।^२

संसार के विभिन्न देशों में तीन विभिन्न प्रकार की योजनाओं के प्रयोग किये गए हैं। पहली है फासिज्म की या नाजीबाबी योजना परन्तु इसमें तो उल्टे बीमारी से उसका इलाज अधिक बुरा धारित हुआ है। स्वयं हिटलर ने सन् १९३६ के शितम्बर में स्वायसम्बन्ध की अपनी चारसाला योजना की घोषणा की। स्वायसम्बन्ध के द्वारा उसने राष्ट्रकी आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और यन्त्र-साधनों से लैस करने के उपाय किये। इनसे बेकारी निश्चय ही बहुत-कुछ घटी थी परन्तु इतना काम देने पर भी जनता का

१ ‘मरी कर्नल मैम पृ १५

२ ‘दी इन्वेस्टिगेशन बुक्स गवर्नर डू सामाजिक एब’ कैपिटलिज्म—वर्नाह रॉ
पृ ४

जीवनस्तर ऊँचा नहीं उठ पाया। इसके विपरीत उसने जो राष्ट्र को सैनिक दृष्टि से पूरा जैस बनाने पर ही सारी शक्ति लगा दी। अपने बंध-साथियों से उसने कहा "मजदूर के बचाव बन्धूक" अधिक काम की चीज है। इस प्रकार नाबी धर्म रचना वास्तव में युद्ध की धर्म-रचना साबित हुई। वह अत्यन्त बिस्फोटक की धीर शक्त में उसका बिस्फोट होकर ही रहा जिसके बमों ने समस्त सत्कार की नींव को हिला दिया। यद्यपि उसमें 'समय राज्य' (कॉरपोरेट स्टेट) के नाम पर मजदूरों को कुछ धीर शक्त करने के बल हुए, फिर भी बात तो बड़े-बड़े उद्योगपतियों की ही बसती रही। सत्ता उन्हींके हाथों में बेलती रही। वास्तव में फासिज्म का जन्म ही मरयोग्य पुजीवाद की कोख से हुआ था और बुझते हुए पीये की व्याप्ति जिस प्रकार अधिक बढ़ी हो जाती है उसी प्रकार अपने विनाश के समय पुजीवाद भी इस फासिज्म या नाजीवाद के रूप में अधिक व्यापक बन गया था। उसका उद्देश्य था साम और शोषण के उद्देश्य हुए दुर्ग को बचाना। इस फासिस्ट योजना में राज्य ने अपने हाथों में सम्पूर्ण सत्ता केन्द्रित कर ली थी और व्यक्ति की स्वाधीनता निर्ममता के साथ कुचल दी गई थी। 'राज्य को भगवान के सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया गया है। बड़ी कारण है, जो आज हम सबसे अधिक मर्यादक बुतपरस्ती के बनाने में भी रहे हैं।"^१

प्रजातन्त्र की बुनियाद है मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा और धार परन्तु सारी ताकत से उसे कुचलकर उसके स्वान पर सर्व सत्तावादी अभिवाक्यत्व (डिक्टेटोरशिप) को स्थापित किया जा रहा है। युगान का प्रसिद्ध विचारक प्रोटीयोरस कहता था कि "हर चीज को नापने का मज आधुनी इंसान हो। परन्तु आज तो सारे सिद्धान्तों की मलाई बुराई उपयोगिता बनवा निकम्मेपन को नापने का मज राज्य बन गया है। एबीनिमन धारण में मनुष्य सर्वोपरि था परन्तु फासिस्ट धर्म-रचना राज्य को सर्वोपरि माननेवाले एगार्ट के धारण की पुनारिण है।

धार्मिक संयोजन के दूसरे मसूने का प्रयोग अमेरिका के संयुक्त राज्य में किया। मेरा नवैन राष्ट्रपति रूजवेल्ट के श्रुतीत की तरफ है। सप प्रथिम

तो उसने एक व्यवस्थित योजना का रूप अभी ग्रहण नहीं किया। वह तो मुसीबत में पड़े पूँजीवाद को बचाने के लिए काम में लिये गए तात्कालिक उपायों का एक सिलसिला भर था। समाज में फैनी दुरवस्था के बहुत प्रकट कारणों को दूर करके पूँजीवाद को फिर से जिमाने का वह एक बोरदार प्रयत्न था। राष्ट्रपति कजवेस्ट अमेरिका में कोई नई धर्म रचना निर्माण नहीं करता था। उसे तो पुरानी रचना में छोटे-बड़े सुधार करके केवल उसे काम चलावे-साधक बनाने का यत्न किया। मजदूरों को काम देने की दृष्टि से उन्होंने झेलक शोक-निर्माण-कार्यवाही कर दिये ताकि बेकारी कुछ बटे और कारखानेदारों का बोझ कुछ हल्का हो। काम के बच्चे कम कर दिये मजदूरी बढ़ा दी कर प्रभासी में यहाँ-वहाँ जरूरी फर्क कर दिया बाजार की संकी को कम करने और किसानों की मदद करने के लिए सरकार ने बेटी की उपज की नीबें खरीदना शुरू कर दिया। बेटी में जो नीबें अधिक पैदा होती थीं उनका रकबा कम कर दिया ताकि बाजार में उनके भाव गिरने न पावें। धार्मिक स्थिरता को बनाये रखने के लिए वेकों का सरकार ने खत्म कर दिये। बीजों की कीमतों का नियमन करने के लिए खुले बाजार में सौदों का सेम-सेम चुक कर दिया। इन सब बदलों ने धार्मिक मन्त्री के संकट को पार करने में अमेरिका की बड़ी मदद की। परन्तु भीतर की बीमारी का यह कोई स्थायी इलाज नहीं था। यह तो बर्फ को कम करने के लिए सामाजिक चिकित्सा के रूप में किये गए तात्कालिक उपचार-मात्र थे। अमेरिका में समाजवाद की स्थापना करना 'न्यू डील' का जरा भी उद्देश्य नहीं था। वह तो अमेरिकी पूँजीवाद को फिर से कमाई करने साधन पूरी तरह से स्वस्थ बना देने का प्रयास-मात्र था।^१

सेट क्लिटेन अपनी पुरानी परम्पराओं के अनुसार संयोजन में भी प्रवाह-प्रतिष्ठ की ही नीति का पालन कर रहा है। यदि यह नहीं कि सन् १९१४ तक उसकी धार्मिक नति-विधि योजना-सूच्य भी तो पतल नहीं बल्कि छाय के बहुत निकट होया। परन्तु यह ज्ञानसंयुक्त में नहीं टिकी रह सकी। युद्ध की अवस्था में तो सरकार को व्यापार-व्यवसाय उद्योग और बेटी पर भी नियन्त्रण लगाना ही पड़ना है। हाँ युद्ध के बाद जो मन्त्री आई

उसमें दूसरों के सामान घिटेन को भी प्राथमिक संयोजन की दृष्टि में कुछ कम उठाने पड़े। परन्तु उसका सारा संयोजन टुकड़ों में हुआ है। उनमें समन्वय और सुव्यवस्था नहीं भी और जहाँतक ऊपरी विचारों से सम्बन्ध है उसके पीछे कोई निश्चित उद्देश्य भी नहीं था। उसने जो भी कुछ किया परिस्थिति से जाचार हो जाने पर सामने लड़ी मुसीबत का मुकाबला करने और के लिए किया। इस विचार में उसका सबसे ताजा कदम था 'बीबरेज योजना'। इस योजना का मुख्य उद्देश्य था 'पूरा काम' और राष्ट्र के द्वारा नागरिकों को यह धारणा बनाना कि वह उन्हें किसी भी मुसीबत में सहाय्य नहीं छोड़ देगी। इसलिए उसने उन्हें रोजी बिमानों की हामी मरी पगुता के भत्ते निर्माण किये बूझों को बरबूँठे सहायता का प्रबन्ध किया तब बम्बों के कारण बड़े हुए क्षर्भ का प्रबन्ध किया और बीमारों के उपचार की व्यवस्था की। उसका उद्देश्य था बनवानों पर कर लगाकर उन्हें कुछ नीचे लाना और इस बम की सहायता से गरीबों के लिए कुछ सहुलियतें करके उनके जीवन स्तर को कुछ ऊपर उठाने का। बिजली कहा करता था कि इन्मेंड प्रमीरों और गरीबों के प्रभव-प्रभव को राष्ट्रों में बंट गया है—परन्तु बीबरेज योजना जैसे उपचारों से डीनइमेके सम्बन्धों में कहीं तो देखें दूसरे प्रकार के 'को राष्ट्रों में बंट जाता है। एक तो कर देनेवालों का राष्ट्र और दूसरा करों में लान उठानेवालों का राष्ट्र।" यह सच है कि बेकारी से रक्षा का धारणा बनाना उसकी क्षमता नीच नहीं है बिजली शान और मिता। परन्तु हमें भानना पड़गा कि यह कोई बहुत बड़ा फल नहीं है। यह तो प्राथमिक प्राणायास के ढंग का संयोजन हुआ धर्मान् पहले तो बनवानों को लाना छोड़ दें कि बेकारी को पैट भर मूट में और फिर जहाँ बनवानों पर कर लगाकर उसकी सहायता से गरीबों के सामने मदद और सहुलियत के रूप में कुछ टुकड़े फेंक दें। यह गरी प्रणिया प्रस्थापनात्मक अपमानजनक और पर्यसाह के सिद्धान्तों के विपरीत है।

तीसरे प्रकार की योजना वह है जिसे सोवियत कम में अपनाया है। कम की पंचवर्षीय योजनाओं में सारे नमर का ध्यान अपनी तरफ प्राक-वित्त कर लिया है। सबने उन्हें सारा भी क्योंकि वे ऐसे मित्रानों पर

बनाई गई थीं जो पूंजीवादी नहीं थे। सारे संसार के लोगों ने घोषित मानवता के उद्धारक के रूप में उनका स्वागत किया। यह भी सत्य है कि यह योजना सर्वांगपूर्ण थी और उसकी मदद से सोवियत रूस अपनी जनता के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने में सफल भी हुआ। उसने पूरी सक्ती से काम लिया और पूंजीपति-वर्ग को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दिया। कस्मे घाम हुए, राष्ट्र-त्रोहियों को घरासतों में खड़ा करके उन्हें कठोर सजाएं सुनाई गईं और मैदान साफ कर दिया गया। इस प्रकार सर्वहारा वर्ग की तरफ से साम्यवादी रक्त-सर्वसत्तावादी बन गया और व्यक्ति की स्वाधीनता को कठोरता के साथ कम कर दिया गया। फिर भी प्राथमिक नव-निर्माण की दिशा में रूस का यह प्रयोग एक बहुत बड़ी चीज माना जाता है। इसलिए कि उसने पूंजीवाद को उसके ऊँचे सिंहासन से बसीटकर नीचे गिरा दिया और जनताभारत के हितों को सामने रखकर संयोजन किया। उसी कारण से और भी ठीक ठीक बाहरी व्यापार को राज्य ने अपने हाथों में ले लिया और इन सबका नियन्त्रण एवं संभालन जनता के हित में किया। इस कारण रूस की अन्तिम में संसार के बरीब घोषित और पद-वर्धित राष्ट्रों को स्वभा-वत नई भाषा से भर दिया।

परन्तु अब इसकी भी प्रतिक्रिया शुरू हो गई है। जबतक जो सोवियत रूस की अन्तिम और रूस की वर्ग-व्यवस्था की तारीफ करत थे उनका भ्रम दूर हो गया है। उनकी आँखें खुलने लगी हैं। लुई फिगर, मैक्स ईस्टमन आदि जींद और फेदा घटनी जैसे लेखक और विचारक क्यों रूस में जाकर रहे। इन्होंने रूस का प्रयोग बुनिया के सामने रखा और बड़े उत्साह के साथ बुनिया को वह समझाया भी। परन्तु रूस की यह अन्तिम जिस दिशा में आ रही है, उसे देखकर इन्हें अब बड़ी निराशा हो रही है। धारम में यह बताया गया था कि साम्यवादी समाज प्रजातन्त्री होगा उसमें वर्ग नहीं होंगे और वह अन्तर्राष्ट्रीय होमा अर्थात् राष्ट्र-राष्ट्र के बीच उसमें कोई भेद-भाव नहीं होमा। कहा गया है कि सर्वहारा प्राबिनायक-तन्त्र तो तात्कालिक संक्रमण काल की व्यवस्था-भाव है। उसके बाद स्वयं राज्य संस्था बलकर नष्ट हो जायगी। सोवियत संघ की प्रामा-बताया जाता था और अन्तिम का अन्तिम नव्य अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद

बताया जा रहा था। परन्तु आज वास्तविकता क्या है? समाज से बर्ग हटने के बजाय व्यवस्थापकों का एक नया बर्ग वहाँ निर्माण हो गया है और वह सारे समाज पर हावी हो गया है। इसके अलावा ग्रामनिर्वाहों की नियमना भी बढ़ रही है यहाँ तक कि ८०-१ का अन्तर हो गया है। व्यक्तिगत स्वाधीनता पर भी व्यक्तिों के अरु भी कम होने के चिह्न कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं और अधिनायक-तन्त्र इस हद तक पहुँच गया है कि सारा समाज सैनिक अनुशासन में बँकड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त जब देश राष्ट्रीयता की ओर फिर सीट खाता है तो उसके अनिवार्य परिणाम अर्थात् साम्राज्यवाद से बचना असम्भव हो जाता है—फिर उसकी छाप जसे ही 'समाजवादी' है।

इस रूप-परिवर्तन का सबसे कारण बहुत दूर नहीं है। वहाँ नियन्त्रण केन्द्रित और संयोजन बिखर होया निश्चय ही वहाँ व्यक्ति की स्वाधीनता कुछसी आसानी नष्ट होगी और इस परिस्थिति में निर्माण होनेवासी राजसत्ता शासकों को नीति भ्रष्ट किये बिना नहीं रहेगी—फिर वे किये ही महान् और बड़े दिनवाले क्यों न हों। प्राध्यापक बोड ने अपनी पुस्तक माइक टु बी फिनासिड्री ऑन मॉरल्स एण्ड पॉलिटिक्स—'नीति और राजकारण के तत्त्वज्ञान की मार्ग-दर्शिका'—में लिखा है—

“इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिनायक तन्त्र की प्रकृति ही ऐसी है कि ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती जाती है वह कम नहीं अधिक सत्त और आलोचना के प्रति अधिक असहिष्णु बनता जाता है। संसार की वर्तमान घटनाएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। परन्तु साम्यवाद के सिद्धान्त इतिहास के इस अनुभव के ठीक विपरीत दावा करते हैं। कहते हैं कि एक निश्चित समय पर साम्यवादी शासन के इच्छित अपना मुह फेर लेने और सत्ता का त्याग कर देने तथा अवतक लोगों को स्वतन्त्रता देने से जो इन्कार किया जाता रहा है वह वे ही जाननी। परन्तु न तो इतिहास और न मानस-शास्त्र इस नतीजे पर पहुँचाने में हमारी मदद करता है।”

यह सच है कि सोवियत रूस में उत्पादन के साधनों और मशीनों पर
य का स्वामित्व है। परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्वयं राज्य
पर किसका प्रभुत्व या स्वामित्व है? राजनैतिक और आर्थिक मामलों
केन्द्रीय शासन की सम्पूर्ण सत्ता है और इस कारण सारी सत्ता सर्वोच्च
न्यायक और उसके प्रबन्धकों की बनाई गई मीकरसाही के हाथों में
ने-साप इकट्ठी हो गई है। डॉ० लानबन्ध ने अपनी 'इंडस्ट्रियल प्रोब्लम्स
इंडिया की भूमिका में लिखा है

“हमें मानना ही पड़ेगा कि जहाँ उत्पादन की सम्पूर्ण प्रणाली पर केन्द्र
प्रबलता होती है जहाँ मनमानी होती ही और यह मनमानी स्वभा
व की सनरनाक है। यों तो अपनी प्राचीनता के लिए किसी एक
मिक का मुहताज होना भी बुरा है परन्तु इस प्रकार राज्य का मुहताज
ता तो हजार-साठ गुना बुरा है क्योंकि जहाँ काम देने-दिनाने के सारे
जन उसीके हाथों में होते हैं।”

प्राध्यापक गिन्सबर्ग ने अपनी पुस्तक 'साइकोसोसोसी ऑफ सोसाइटी' में
हा है

सत्ता का केन्द्रीकरण करनेवाले हर प्रकार के शासन में अंततः सत्ता
का सारे मूल एक हाथ में पहुँच जाते हैं। हमें कहा जाता है कि राज्य
नकर गिर जायगा परन्तु उस मूल में निश्चय ही कोई नई अल्प-संख्या
का हाथिया सेगी। इसलिये यदि पुनर्निर्माण करना है और यदि आप
ताहते हैं कि वह सच्चा पुनर्निर्माण है तो आपको बिके-रीकरण की ही
जड़ पकड़नी पड़ेगी।”

इस प्रकार जनता के तीन सिद्धांतों—राष्ट्रीयता प्रजातन्त्र और
जीविकोपार्जन—के प्रकाश में देखने पर नाजी धमरीकी और कभी तीनों
कार की योजनाएं हमें अपने धार्मिक की ओर नहीं से जा सकती। कभी
योजना जीविकोपार्जन के लक्ष्य को बहुत बड़ी हद तक पूरा करती है
परन्तु केवल जीविकोपार्जन ही काफी नहीं है। उसके साथ-साथ माजारी
की और मनुष्य के अपने व्यक्तिगत के सम्पूर्ण बिनाम की भी गुंजाह और
प्रसर का होना जरूरी है।

तब हमारे सामने क्या उपाय है? यह कि जीवन को सार्थक बनाने

बनाया जा रहा था। परन्तु धार्मिक वास्तविकता क्या है? समाज से वर्ग हटने के बजाय व्यवस्थापकों का एक नया वर्ग वहाँ निर्माण हो गया है और वह सारे समाज पर हावी हो गया है। इसके अलावा धार्मिकता की विषयता भी बढ़ रही है। यद्योक्त कि व० १ का अन्तर हो गया है। व्यक्तिगत स्वाधीनता पर सभी बन्धनों के खरा भी कम होने के विपरीत कही दिखाई नहीं दे रहे हैं और अधिनायक-तन्त्र इस हद तक पहुँच गया है कि सारा समाज सैनिक अनुशासन में ढकड़ दिया गया है। इसके प्रतिरिक्त जब देश राष्ट्रीयता की धोर फिर सौट खाता है तो उसके अनिवार्य परिणाम अर्थात् साम्राज्यवाद से बचना असम्भव हो जाता है—फिर उसकी छाप अने ही समाजवादी' हा।

इस कम-परिवर्तन का असली कारण बहुत दूर नहीं है। वहाँ नियन्त्रण केन्द्रित और संयोजन विरुद्ध होना निश्चय ही वहाँ व्यक्ति की स्वाधीनता कुचली जायगी नष्ट होगी और इस परिस्थिति में निर्माण होनेवाली राजसत्ता शासकों को नीति प्रष्ट किये बिना नहीं रहेगी—फिर वे कितने ही महान् और बड़े दिलवाले क्यों न हों। प्राध्यापक बोड ने अपनी पुस्तक यादव दू दी फिलासफ़ी ऑफ मोरल्स एण्ड पॉलिटिक्स—'नीति और राजकारण के उत्पन्नान की मार्ग-दर्शिका'—में लिखा है—

'इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिनायक तन्त्र की प्रकृति ही ऐसी है कि ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती जाती है वह कम नहीं अधिक सख्त और धार्मिकता के प्रति अधिक असहिष्णु बनता जाता है। संसार की वर्तमान बटनाएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। परन्तु साम्यवाद के सिद्धान्त इतिहास के इस अनुभव के ठीक विपरीत दावा करते हैं। कहते हैं कि एक निश्चित समय पर साम्यवादी शासन के अन्तिम अपना मुह कर बेंने और सत्ता का त्याग कर बेंने तथा अखण्ड लोगों को स्वतन्त्रता देने से जो इन्कार किया जाता रहा है, वह दे दी जायगी। परन्तु न तो इतिहास और न मानस-शास्त्र इस गतीसे पर पहुँचाने में हमारी मदद करता है।'

यह सच है कि सोवियत रूस में उत्पादन के सामनों और धोखारों पर राज्य का स्वामित्व है। परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्वयं राज्य यन्त्र पर किसका प्रभुत्व या स्वामित्व है? राजनीतिक और आर्थिक मामलों पर केन्द्रीय शासन की सम्पूर्ण सत्ता है और इस कारण सारी सत्ता सर्वोच्च प्रभिनायक और उसके प्रबन्धकों की बग़ाई यही नीकरशाही के हाथों में अपने-आप इकट्ठी हो गई है। डॉ. शालबन्द ने अपनी 'इंस्टिट्यूशन ऑफ़ मन्स प्रॉब्लम' की भूमिका में लिखा है

“हमें मानना ही पड़ेगा कि जहाँ उत्पादन की सम्पूर्ण प्रणाली पर केन्द्र की अधिकार होती है, वहाँ मनमानी होती ही और यह मनमानी स्वभावतः बड़ी बर्बरताक है। यों तो अपनी माजीबादी के लिए किसी एक मालिक का मुहताब होना भी बुरा है, परन्तु इस प्रकार राज्य का मुहताब होना तो हजार-साठ गुना बुरा है, क्योंकि वहाँ काम देने-दिमाने के सारे साधन उसीके हाथों में होते हैं।”

प्राध्यापक गिन्सबर्ग ने अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी ऑफ़ सोसाइटी' में कहा है

सत्ता का केन्द्रीकरण करनेवाले हर प्रकार के शासन में अंततोगत्वा सत्ता के सारे सूत्र एक हाथ में पहुँच जाते हैं। हमें कहा जाता है कि राज्य गनकर मिर जायगा, परन्तु उस मूरत में निदबध ही कोई नहीं बस्य-संख्या सत्ता को हथिया लेगी। इसलिए यदि पुनर्निर्माण करना है और यदि आप चाहते हैं कि वह सच्चा पुनर्निर्माण हो तो आपको विकेन्द्रीकरण की ही राह पकड़नी पड़ेगी।

इस प्रकार जनता के तीन सिद्धांतों—राष्ट्रीयता प्रभुत्व और बीबिकोपार्जन—के प्रकाश में देखने पर माजी प्रभारीकी और उसी तीनों प्रकार की योजनाएँ हमें अपने धावने की ओर नहीं ले जा सकतीं। मजी योजना बीबिकोपार्जन के लक्ष्य को बहुत बड़ी हद तक पूरा करती है, परन्तु केवल बीबिकोपार्जन ही काफी नहीं है। उसके साथ-साथ धोखारी की और मनुष्य के अपने अस्तित्व के सम्पूर्ण विकास की भी मुबादा और प्रवसर का होना जरूरी है।

तब हमारे सामने क्या सपाय है? यह कि जीवन को सदा बनाये

सत्ता और सम्पत्ति का बिकेन्द्रीकरण हो और गृहोद्योगों के क्षेत्र पर औद्योगीकरण हो। आज जबकि दूसरे उग्रमार्ग प्राथमिक सिद्धान्तों में संशेरी यत्नी में छोड़ दिया है, गांधीजी के प्राथमिक विचार असाधारण महत्व पाते जा रहे हैं। उसका कारण उनकी अनोखी दृष्टि है। एक समय का जब गांधीजी के विचार लोगों को स्वप्न सनक और असाधारणिक मामूला होते थे परन्तु उसके बाद इस देश में तथा संसार में अत्यंत अनुपम वातावरण को जो अनुभव हुए हैं उन्होंने उसे गृहोद्योगों के आधार पर बिकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के नामों और परिणामों के बारे में अधिक गहराई से विचार करने पर मजबूर कर दिया है। प्राप्तिपक्ष कोस जैसे ब्रिटेन के प्रमुख अर्थशास्त्री को यह स्वीकार करना पड़ा है कि 'सारी और गृहोद्योगों के विकास के लिए गांधीजी ने जो अभियान प्रारंभ किया है वह मूलतः को फिर से सँभलाने के लिए किया गया असाधारणिक प्रयास नहीं है, बल्कि भारत के ग्रामीणों की भयंकर गरीबी को दूर करके उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठानेवाला एक व्यावहारिक और लाभदायक कदम है।'^१ इसलिये गांधीवादी योजना सामयिक व्यावहारिक और एक बकरी चीज है, क्योंकि युद्ध-ज्वर संसार के सामने वह एक ऐसी अर्थ रचना प्रस्तुत करती है जो दार्शनिक प्रजातन्त्र और मानवी मूल्यों पर आधारित है।

३ ४ ३

समाज की प्राथमिक रचना कौसी हो इसके बारे में गांधीजी के विचार अनेक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उनका अर्थ हम विद्वत्पत्र करें। जबतक हम इन मूलमूल कल्पनाओं को नहीं समझें तबतक हम धाम्यक कहें नहीं जान पायेंगे कि वे ग्रामोद्योगों पर और बिकेन्द्रीकृत उत्पादन पर इतना जोर क्यों देते थे।

साक्षी

गांधीजी पुरातनपन्थी और प्रगति विरोधी नहीं हैं। वह पंडी के

जटे पीछे नहीं हटा रहे हैं। वास्तव में वह एक व्यापहारिक धार्मिकबादी है। इसलिये वह पहचान गये हैं कि वर्तमान सम्मता का रोग क्या है। उन्होंने इस रोग से बचने का उपाय भी बता दिया है और इसमें भी वह बचाने के पीछे नहीं भागे ही हैं। धर्म की पश्चिमी सम्मता भौतिक प्रभुत्व को बहुत चाहती है। वह चाहती है कि एक प्रभुवादी व्यक्ति या राष्ट्र इन मुक्त-साधनों और विचारों की सामग्री को बिठना भी जुटा सके जुटाये। माधीबादी ने अपने 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा भी है कि "धार्मिक सम्मता की मुख्य पहचान यह है कि इसके भक्त शरीर के मुखों को अपने जीवन का मार्ग मानते हैं।"

परन्तु भारतीय धार्मिक यह नहीं रहा है। माधीबादी कहते हैं 'मन बड़ा शक्तिशाली है। उसे जितना अधिक मिला जाता है उसका सामान्य बढ़ता ही जाता है और प्रगत उसे कभी संतोष नहीं होता।' विषयों का हम जितना सेवन करते हैं, वे बढ़त ही जाते हैं। इसलिये हमारे पूर्वजों ने इनके शोष की सीमा निश्चित कर दी। उन्होंने देखा कि मुख मन की पीठ है। मनबोध अनुपपन्न मुझी होगा ही ऐसी बात नहीं है और न यही सच है कि जिसके पास मन नहीं है वह बकर ही चुकी रहेगा। मनबोध प्रकृत बुद्धि देखे गये हैं और यही बुद्धि। यह सच देखकर और अनुभव करके हमारे पुरखों ने हमें शोष-सामग्री से दूर रहने का उपदेश दिया है। हम बच्चों का धार्मिकार नहीं कर सकते वे सो बात नहीं है परन्तु हमारे पूर्वज जानते थे कि यदि हम अपना दिमाग इन चीजों में लगावें तो हम उनके पुत्रों को बर्बाद कर देंगे और अपनी नैतिक शक्ति को खो देंगे। इसलिये बहुत पहले विचार के बाद उन्होंने यही निश्चय किया कि हम केवल यही करें, जो अपने हाथों और पाँवों से कर सकते हैं। उन्होंने देखा कि सच्चा मुख और आरोग्य अपने हाथ-पाँव और शरीर का उपयोग करने ही में है।^१

माधीबादी कहते हैं 'मैं नहीं मानता कि बकरों बचाने से और इन्हें पुरी करने के लिए यज्ञों की महायज्ञ लेने से मानव-जाति अपने धारण की तरफ एक कदम भी बढ़ सकती है। समय और दूरी को मूक करने की इस

अभिमाया को—प्राकृतिक बिकारों को बढ़ावा और उन्हें दान्त करने के लिए पृथ्वी के उस कोर तक डीढ़ समाना—में बहुत बुरा मानता है।^१

एच पी० बेल्स में एक पुस्तक लिखी है—'बिम्स टू कम'। उसमें प्योनेकोपुलस कहता है

आखिर इस प्रगति के मान क्या हैं? इससे क्या लाभ है? बस बड़े बसों बड़े बसों! पर कहाँ? हम कहते हैं एक जायो। जीवन का उद्देश्य है सुखमय शांत जीवन।

इस प्रकार प्राकृतिक सम्मता की विपुलता के प्रवाह में दूबे हुए मान कहेंगे गांधीजी के विचार तो संघासियों के-से हैं। परन्तु सच यह है कि गांधीजी ने वर्तमान धर्म्यवस्था और राजनैतिक संघर्ष की बड़ में पड़च कर देक लिया है और हमारी बुराइयों के घसमी कारण पर अपनी धंमुनी रक्त दी है। एक प्रसिद्ध अंगरेज लेखक ने लिखा है 'वास्तव में समाज शास और साम्यवाद भी मानधी पूजीवाद के ही भाईबन्द हैं।' इसका कारण यह है कि धन को और उसकी सहायता से लीची जानेवाली चीजों के समूह को दोनों सर्वोपरि महत्व प्रदान करते हैं। इसीलिए टी बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है 'यदि कभी समाजवाद आया तो वह समाज के लिए सभी सामवाक हो सकना जब वह पैस को नहीं वस्तुओं को महत्व देना और इस आदर्श पर बृष्टा के साथ चलेगा।'^२

यूनान में एक प्रति मुम्बर युवक की कहानी है, जो अपने ही रूप पर मोहित होकर खुश-खुसकर मर गया। वर्तमान धर्म्यता भी इसी प्रकार अपने वैभव और विपुलता पर मोहित है इसलिये धायद इनक भाव में भी उसी युवक की भांति अपने रूप पर मोहित होकर खुश-खुसकर मर जाना सिगा है। धन और भौतिक सम्पत्ति का पाने के लिए एक धन्वी डीढ़ मय रही है। उसने समाज को घोषण कठार साम्राज्यवाद और नर-मंहार के भंडर में डबेल दिया है। इसलिये यदि हम अपने विचारों का परीछब करके अपने आद्यों और जीवन के प्रति रक्त को नहीं बदलेंगे तो अनुर-ने अनुर संयोजन और विज्ञान-से विज्ञान धर्म्यवास्तियों की तरकीबों और मार्ग

^१ की दृष्टि—१०-११२२०

^२ 'टेलर इ. सी. ए.'

हरात भी संसार की अंतिम सर्वनाश में नहीं बचा सकेंगे। सचमुच हम बड़े खबरदस्त सांसारिक मोह में फँस गये हैं। हमारी सारी बुद्धि और खर्च वीरसत बचाने में लगी हुई है। हमने उसीको सबकुछ मान लिया है। वैसे पहले-पहल विनिमय के एक साधन के रूप में धाया। किन्तु धात तो बड़ी सम्पत्ति बन बैठा है और उसके व्यापारी शासन में सत्कार पिला जा रहा है। सोने के पीछे पागल मित्रास की कहानी हम जानते हैं जो बड़ी भार्य पूज है। समय रहते इस कहानी से हमें शिक्षा ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि यदि इस पागलपन को हमने दूर नहीं किया तो वैसे पर हम समान मानवी मूल्यों को निष्ठावर कर देंगे और अंत में हम स्वयं भी सोने की किन्तु निष्पाण मूर्ति बन जायेंगे। हमारे सारे सम्बन्धों का आधार केवल पैसा ही न हो। मानव-जीवन में सबसे अच्छी चीज यह नहीं है, जिसमें एक का लाभ और दूसरे की हानि है। राष्ट्र का सच्चा धन बड़े-बड़े धातिसाल महान भीमकाय कारखाने और विकास की सामग्री नहीं बल्कि सच्चे मेक संस्कारशील और निस्वार्थ नागरिक—स्थिर और पुष्ट—हैं। बर्तन में कहा है, 'यही होने पर भी ईमानदार आदमी राजाओं से भी अधिक इज्जत पाता है।'

एक ठगुर पूछते हैं "केवल 'जोड़ो-जोड़ो-जोड़ो' में क्या लाभ है? धात को अधिक-से-अधिक ऊँचा करने से वह कर्म-कटु—कर्मस—ही बनती है। संगीत या स्वर के संयम और उससे तालबद्ध करने में है।'

इस से कोई चारसी वर्ष पूर्व धातार्थ कौटिल्य भारत के बहुत बड़े विचारक हो गये हैं। वह अत्यन्त व्यवहार-कुशल और अनुर माने जाते हैं। अपने धर्मशास्त्र में उन्होंने लिखा है

'समस्त शास्त्रों में इन्द्रियों के संयम को सबसे ऊँचा पताया है। जिसने इन्हें अपने बच में नहीं किया जिसका जीवन इसके विपरीत है उसका मार्ग अवश्यम्भासी है चाहे वह सारी पुष्पी का स्वामी हो।'

पूर्व के लोगों को इन बचनों में पूरी-पूरी थका होती है। उनके लिए ये सूर्य के समान प्रत्यक्ष हैं। उन्हें ये अपनी माता के दूध के साथ ही मिल

जाते हैं। परन्तु पश्चिम के लोगों को ये विचार सतयुगी और हवाई लगते हैं। इन्हें वे निरी मायुकता समझते हैं। इसका कारण भी है। प्राकृतिक धर्मशास्त्र की रचना पूरी तरह से पश्चिमी भाषाओं के आधार पर हुई है। पूर्व अभी उसे अपने सिद्धान्तों और विचारों में प्रभावित नहीं कर सका है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पूर्व का भी अपना धर्मशास्त्र रहा है—यात्रा भी है और वह यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम इतना ही शास्त्राधारित है, बिना कि पश्चिमी धर्मशास्त्र। इसलिए अपने धर्मशास्त्र सम्बन्धी विचारों को बुद्धता के साथ प्रकट करने में गांधीजी ने कभी संकोच और म्बलका का अनुभव नहीं किया क्योंकि वे भारतीय धर्मशास्त्र पर आधारित हैं। गांधीवाद का सबसे पहला और मूलमूल सिद्धान्त है सादगी। गांधीजी नहीं मानते कि जीवन जितना बटिन होना उतना ही वह प्रगतिशील होगा। उसकी दृष्टि में तो प्रगतिशील धर्म-रचना यह है, जिसमें व्यक्ति और समाज का जीवन अधिक सादा और पुरुष हो।

गांधीजी के विचार में औद्योगिकता का धर्म है नैतिक सम्पत्ति के लिए अनवरत दौड़। इसमें नीति और मानवीय मूल्यों का हास ही होता है। इसीलिए उन्होंने इसके भारत में प्रवेश का बड़ी बुद्धता के साथ विरोध किया है। इस बारे में वह किसीसे समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं।

“राष्ट्रीय संयोजन के बारे में धान धानतीर पर जो विचार लोगों में पाये जाते हैं उनके मेरे विचार भिन्न हैं। मैं नहीं चाहता कि हमारा संयोजन औद्योगिकरण के रूप पर हो। मैं तो चाहता हूँ कि हमारे गांव इस रोग की मृत से दूर ही रहें।”^१

सादगी के नैतिक और मनोवैज्ञानिक मूल्य तो हैं ही। परन्तु अफसोस के लक्षों में कई तो औद्योगिकरण के द्वारा धन के पीछे ‘घाबें मूझकर’ दौड़ना दूसरे कारणों से भी बुरा है और इसलिए गांधीजी उसके विरुद्ध हैं। यदि सदा जागरूक रहकर हम अपने ही परिधम के सहारे जीते हैं तो अधिक-से-अधिक स्वायत्तता धर्मात् प्राप्त करते हैं। औद्योगिकरण द्वारा तो प्राकृतिक दुर्लभता की अंजीर में बुरी तरह जकड़ लिये जाने का खतरा होता है। इसलिए जहां तक हमारी योजनाओं की जम्हरीयों और सामाजिक

सुविधाओं का सम्बन्ध है, वह इनके केन्द्रित उत्पादन को बहुत बुरा मानते हैं और कहते हैं कि इनके बारे में ज्यादाक संभव हो हर मनुष्य को स्वतन्त्र और अपने परिश्रम पर ही निर्भर रहना चाहिए। उनका कथन है कि हमारी सारी प्रवृत्तियों और कामों का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व का विकास हो और वह आजादी के आवाहण में हो। इसीलिए उद्योगों को अपने-अपने स्वाभाविक क्षेत्रों में फँसा देने पर बेजोर देते हैं। यह सच है कि बड़ पीमाने पर उत्पादन करने से चीजें अधिक परिमाण में बनने लगेंगी और हमें बड़ी सहेलियत हो जायगी परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि हमें कष्टम-कष्टम पर बूझने का मुँह ठाकना होगा। स्वतन्त्र होने के लिए अपनी आजादी छोड़कर हम अपनी बुद्धि कर देंगे। तब सच्चे प्रजातन्त्र के कहीं दर्शन भी नहीं होंगे क्योंकि प्रजातन्त्र वहीं जिन्या रह सकता है जहाँ सबको यह कहें कि प्रजातन्त्र का अर्थ नहीं हो सकता है जहाँ अपना तब चलानेवाले प्रजातन्त्रों में से हर आदमी और और अपने जीवन का नियमन खुद करने की समता—सोम्यता—रखती है।

अहिंसा

गांधीजी के आर्थिक विचारों का दूसरा आधारभूत सिद्धान्त अहिंसा है। गांधीजी का निश्चित मत है कि हिंसा के बल पर, चाहे वह किसी प्रकार की हो कभी स्थायी शान्ति जयवा सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती। सच्चा प्रजातन्त्र और मनुष्य के व्यक्तित्व का सही-सही विकास अहिंसक समाज में ही सम्भव है। हिंसा से हिंसा बढ़ती है और बल बल को हिंसा के बल पर प्राप्त किया जाता है उसकी रस्ता के लिए और भी अधिक हिंसा की जरूरत होती है। हिंसा और सच्ची स्वतन्त्रता एकदम बेमेल चीजें हैं। हिंसा के बल पर प्राप्त की हुई आजादी जूनी ही नहीं जायगी क्योंकि “जो हाथ में तलवार पकड़ेंगे उन सबकी मोठ तलवार से ही होगी।” इसीलिए गांधीजी हिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। समाज का संयोजन अपने-आपमें कोई साम्य या धादर्थ नहीं है। वह तो एक साम्य का साधन-माध्यम है और यदि मान लें कि वह साम्य है तो भी वह नहीं मानते कि अहिंसा साम्य कभी बुरे साधनों से प्राप्त किया जा सकता है। साम्य की अहिंसा की रस्ता सभी हो सकेगी जब

उसकी प्राप्ति के साधन भी उसने ही प्रच्छेद होये। इसीलिए गांधीजी कहते हैं कि समाजवादी समाज की रचना भी अग्नी क्रान्ति के द्वारा नहीं अहिंसक उपायों के द्वारा ही की जानी चाहिए।

यह अहिंसा कोई नार्मिक सम-नियम नहीं है और अकेले गांधीजी ही इसकी अकरत और महत्त्व पर जोर नहीं दे रहे हैं। आध्यात्मिक सात्त्विक ने सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं के विकास का महाराई संश्लेषण किया है। इसके बाद उन्होंने स्वीकार किया है कि "वेप और हिंसा हमारे काम की चीज नहीं हैं। क्रान्ति तो समझ-बुझकर अर्थात् विचार-परि-वर्तन से ही जानी चाहिए, क्योंकि दूसरे उपायों में वेप अपने नार्मिक के लिए एक नामूर (कैंसर) के समान है। दूसरे की अिस प्रकृति या स्वभाव की हम निम्ना करते हैं वेप उसी को हमारे अन्दर पैदा कर देता है। अाज के अमाने में यदि अलवान पुस्य चाहता है कि अह सदा अलवान बना रहे तो उसे सच्चा और न्यायधीन भी बनना पड़ेगा। यूरोप के आध्यात्मिक जीवन का निर्माता सीअर अथवा नेपोलियन नहीं ईसा है। इसी प्रकार पूर्व की संस्कृति अनेक लां और अकअर की अयेगा अुठ द्वारा अधिक प्रभावित हुई है। अवर हम निम्ना रहना चाहते हैं तो हमें इस सत्य को समझना ही होगा। हम वेप और अातुता पर अ्रेम से ही अिअव पा सकते हैं और अातु पर अत्न ॥ अाग। नीअता अ तो नीअता ही पैदा होती है।^१

'स्ट्रैटेजी ऑफ फ्रीडम' में सात्त्विक ने अिया >

'हम मानते हैं कि जोर-अवअवस्ती से आधी गई चीज अने दिन नहीं टिकती अितनी समझ-बुझकर अस उतरी हुई टिकती है।'

पहला महामुठ "समिण अेअ अया कि अमार में अमार्तअ की रजा और स्वाधी अान्ति की स्वापना हो परन्तु अुठ में और उसके बाद भी अर्मनी को अगनी अुरी तरह अुअता अया कि उसकी अ्रतिअिया के रूप में उसने हिअसर को अगम अिया और अव अूकि अ्रिअसर को उसी प्रकार अ्रिअ से अुअन अिया गया है तो इस अ्रिअ-अमिण अान्ति के अन्दर में गिअव ही कोई और अड़ा अ्रिअसर पैदा अुग अरैर नहीं रह्या। यह कहने से काम नहीं

बलेगा कि "संसार में तो हिंसा सदा से जली आई है और युद्ध या गांधी के कहने से वह जानेवासी नहीं है। मधुप्य मूसल धातिल एक पशु ही तो है।" इस बात को धन कोई नहीं मानता। धन यह वेकार का बुद्धिबाद है कि संसार में जून-खराबी जारी ही रहनेवासी है। भारकाद और जून-खराबी से संसार में कभी सच्ची शांति भुल और समानता स्थापित नहीं हो सकती। इनका गतीबा तो मीत और सर्वनाश ही होगा। संसार की जन्माएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अतःधार्मिक चार्टर के प्रथम भी उत्तम मिलते हैं कि "वास्तविक या धार्मिकारिक्त कारण इतने बसबान हैं कि संसार के समस्त राष्ट्रों को धन धन का प्रयोग छोड़ना पड़ेगा।" इसलिये मैं तो गांधीजी की अहिंसा को कोरी मानकता नहीं मानता। उसमें ठोस वास्तविकताओं की स्वीकृति और बर्तमान निराशा की आई में से संसार के उद्धार का रामबाण उपाय है।

गांधीजी के अर्थशास्त्र को हम अहिंसा का अर्थशास्त्र कह सकते हैं, क्योंकि उसमें उनकी अहिंसा ओत-ओत है। पूजोबाद का आधार है 'अतिरिक्त मूल्य' को हड़प जाना यह सरासर हिंसा है। यह तो पूजा बाद का मुलाम-मात्र है। यह मनबुरों को हटाकर मुद्दीनर धारमियों के हाथों में संपत्ति और सत्ता को केन्द्रित कर देता है। इस प्रकार संपत्ति हिंसा की मदद से एकज की जाती है और उद्योगी मदद से उसकी रक्षा भी की जाती है। इसलिये गांधीजी बड़े-बड़े यन्त्रों और बड़े पैमाने पर उत्पादन के विरोधी रहे हैं। इनको वे संसार के वर्तमान संकटों का मूल कारण मानते हैं। यह कहते हैं

"मेरा सुझाव है कि यदि भारत को अहिंसा के जरिये अपना विकास करना है तो उसे बहुत-सी चीजों को विकेंद्रित करना होगा। जबतक पास में पर्याप्त सैन्य बल नहीं होता केन्द्रीकरण जारी नहीं रह सकता और न उसकी रक्षा ही की जा सकती है। सीधे-साधे घरों में बूखों को समझाने साधक कुछ नहीं होता। इसलिये उनकी रक्षा के लिए सम्बन्धी छापनों की भी जरूरत नहीं होती जबकि जोर हाथुओं से धनवानों के महलों की रक्षा करने के लिए पुलिस और फौज के बड़े-बड़े दलों की जरूरत होती है। यही हास बड़े-बड़े कारखानों का है। ग्रामीण सम्यता के इन

प्रतिष्ठित और पवित्रता है। वाभीवादी मानते हैं कि शरीर-धम एक प्राकृतिक नियम है और प्रायः चारों ओर जो प्राकृतिक समतुल्यता दिखाई दे रही है, उसका मूल कारण इस प्राकृतिक नियम का भंग ही है।

‘बहुत बड़े बुद्धिमान की बात है कि शायद करोड़ों लोगों ने अपने हाथों का सही उपयोग करना छोड़ दिया है। मनुष्य बनाकर प्रकृति ने हमें इन हाथों के काम में जो बहुमूल्य देन दी है, उसको बेकार करके हम प्रकृति का बड़ा अपराध कर रहे हैं जिसकी वजह हमें घुटी-घुटी सजा दे रही है।’^१

‘हमारे शरीर में प्रतिदिन सजीव शक्ति है। इनसे काम न लेकर उनके बहने निष्ठावर्धन से इस काम से रहे हैं और इस प्रकार शरीररूपी इन अनमोल बन्धों को नष्ट कर रहे हैं।’^२

मनुष्य का बचन है—“जो काम नहीं करना चाहता उसे जाने का कोई अधिकार नहीं है। और जो मनुष्य अपने हाथों से काम करता है उसकी सजा विजय है क्योंकि वह अपना भार दूसरों पर नहीं डालता। उसमें कोई अबाध समर्थ नहीं कर सकता। धीमन्समबद्धीया में कहा है—“जो मनुष्य संस्थाओं का भाव नवासे बिना पृथ्वी के फलों का उपयोग करता है वह पाप है, पापी है।”^३

वाभीवादी भी मानते हैं “कर्म—धम—एक प्रकार से व्यवधान की पूजा है और मुक्त धार्मिक के दिमाग में संन्यास का निवास होता है।”

वाभीवादी का मत है कि मनुष्य के मानसिक विकास के लिए बुद्धिबुद्ध शरीर-धम बड़ा जरूरी है और मन को संस्कारवान बनाने के लिए हाथों का काम उपयोगी होता है। प्राकृतिक मनोविज्ञान ने भी इस बात को स्वीकार किया है। वाभीवादी द्वारा बताई गई बुनियादी शिक्षा जिसका दूसरा नाम बर्बा-शिक्षा-योजना भी है इसी—काय करते-करते सीखी—सिद्धांत पर आधारित है। धमरीका के प्राप्तावरु हरे में भी शिक्षा के इसी सिद्धांत पर बड़ा जोर दिया है।

१ ‘मनः शिवा’ १०-१ १९५०

२ ‘मनः शिवा’ २० १९५२

३ ‘मनुष्य मानव’ दिवा देवा शास्त्र ने व्यवहारित।

नैतिकता प्रभाव—का मुद्रित होने का सं. ११-१२

“हस्तकारी के आधार पर ही जानेबांधी शिक्षा में दूसरी किसी भी पद्धति की अपेक्षा शिक्षा-शास्त्र के सिद्धान्त अधिक भरे पड़े हैं। उसमें सहज बुद्धि और व्यवहार—योगों के विकास के लिए स्वाभाविक प्रवृत्तियों का ध्यान रखा है।” सुन लिया और मान लिया इसमें बुद्धि का विकास नहीं होता।

टॉल्स्टाय ने अनुभव से यह सीखा कि शरीर-श्रम मानसिक—बौद्धिक—काम में बाधक होने के बजाय न केवल उसके गुणों को बढ़ाता है बल्कि उसे अधिक प्रवृत्त बनाने में मददगार होता है। इसलिए वह उसे अधिक प्राय समझने के बजाय ध्यान-धर्म की वस्तु मानने लगे क्योंकि वह मनुष्य को अधिक स्वस्थ अधिक मानविय काम करने के लिए अधिक योग्य और अधिक दयाशील बना देता है। शरीर-श्रम को वह मनुष्य की धान पवित्र कर्तव्य और समाज के प्रति एक ज्ञान प्रदान देता है। सैन्टुएन स्माइल्स ने कहा है ‘शरीर-श्रम एक बोझ और सजा के समान जैसे ही सजे परन्तु वह एक सम्मान और उत्कर्ष देनेवाली वस्तु है। प्रिन्स अपेपार्टकिन ने ‘अमार किस्ट कम्पुनिज्म’ में लिखा है “हमारे लिए तो काम एक मनोरंजन की वस्तु है और निष्प्राप्त कृषि विकास।

कुरसत का प्रलोभन

इसलिए जब लोग अधिकाधिक कुरसत के लिए प्रायज उद्यते हैं तो बांधीबांधी इसे अस्वाभाविक और खतरनाक समझते हैं।

‘कुरसत केवल एक हव तक ही जकरी और घबड़ी होती है। मगवान ने मनुष्य को इसलिए बनाया कि वह अपने घरे पसीने की रोटी खाये और जब कोई कहता है कि हम अपनी जकरी की लारी नीचे—टोपी भी—धातु की सफड़ी धुमाकर बना सकते हैं तो मुझे इसमें बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है। मैं घर से कापता हूँ।”^१

और भी

“याम सीखिय कि घमरीका से कुछ करोड़पति यहाँ पाते हैं और कहते हैं कि हम आपके योजना की लारी नीचे घमरीका से भेज दिया करेंगे और वे हमसे अनुरोध करें कि आप कुछ भी काम न करें, हमारी धानसीमता को

काम करने का मौका देने की कृपा करें तो मैं समझा यह उबार नाम सेने से साफ इन्कार कर दूंगा खास तौर पर इसमिए कि यह हमारे जीवन के बुनियादी कानून पर ही कुठाराघात करता है।”^१

कुरसत की इस समस्या पर बर्नार्ड सा ने अपने ‘इन्वेसिमेंट मुमिंस माइंड टु सोशलिज्म एण्ड कैपिटलिज्म’ में कुछ बिलचस्प बातें कही हैं।

‘जो लोग जीवन को एक मज्जी छुट्टी बना देना चाहते हैं वे भी मनुष्य करने समते हैं कि इससे भी छुट्टी पाने की जरूरत है। काम न होना बड़ी अस्वामाधिक बात है। उससे भी खारमी उठ जाता है। कुरसतमन्द मन मान लगातार ऐसे निरुत्तम काम करते रहते हैं जो उन्हें मफा देते हैं।’

बर्नार्ड सा ने यह भी कहा है ‘जिन्हें काम कुरसत होती है वे कुछ न करने के बजाय सदा ऐसे कामों में लगे रहते हैं जो उन्हें कुछ न करने के मायक बनाय रखें।’ अपने अग्रतिम डग में यह कहते हैं, ‘गरक की सभने मज्जी परिमापा है सदा की छुट्टी।’

असम में जोम साधारण परिषद को नहीं लेकिन भाजकम के कारखानों में जिस प्रकार का आत्मनाशक, एक-सा और कठोर परिषद करना पड़ता है, उसे कुछ जानते हैं। भाजकम के इन काम में कोई आनन्द नहीं होता है। इसीलिए कारों और कुरसत के लिए पुरार उठती रहती है। यह कुरसत का प्रलोभन गांधीजी को एक जयंकर नैतिक आस-सा सपना है, क्योंकि कुरसत पाना बहुत मुश्किल नहीं है। मुश्किल है उसका मज्जा उप बाय करना क्योंकि यदि पुरा काम नहीं होगा तो पारैरिक आनसिक और नैतिक पठन का कतरा सदा मानव-समाज में सामने बना रहेगा। इसमिए यह सदा कहते रहने कि कारों के कम पोटनेवाय बन्द कारखानों की प्रपक्षा गांधीजी की सुभी हवा में और नीध-नादे धोंपड़ों में किया जाने वाला काम बहुत मज्जा होता है।

राटीर-जन की गांधीजी बेबस नैतिक और मनोवैज्ञानिक कारकों से ही उठती और मज्जा नहीं मानते। यह कहते हैं कि हर मनुष्य की जिनगी भी सम्भव हो स्वावलम्बी होना चाहिए। इसने धोरण की वह न

जायगी। धान की धर्म-व्यवस्था में दूसरों के परिश्रम को धन्यायपूर्वक बुराया जा रहा है। इसका परिणाम धान हम यह देखते हैं कि एक घोर तो वे काहिल बनवाते हैं, जो कुछ भी धरीर-भ्रम नहीं कर रहे हैं और दूसरी घोर मजबूर हैं जो धात्विक मेहनत के कारण पिसे जा रहे हैं और जिन्हें फुर सत—विश्राम—की धात्विक आवश्यकता है। इसके लिये हम ऐसे धानीय समाज की रचना करें, जिसके अन्तर्गत हर पुरुष और स्त्री सहकारिता की पद्धति पर अपनी धानीयता के लिए काम किया करे तो वहां धोष के लिए कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रहे जायगी और बीच का मुनाफ़ा जानेवाला नर्म अपने-आप बीरे-बीरे समाप्त हो जायगा। यह बात मुझे टैमोर को समझते हुए गांधीजी ने कहा “मुझे स्वयं अपना पेट भरने के लिए काम करने की जरूरत नहीं है। तब मैं क्यों बरखा पलाता हूँ? इस प्रकार का प्रश्न कोई कर सकता है। तो मैं कहता हूँ कि इसलिए कि जो मेरा कमाया हुआ नहीं है वह मैं खा रहा हूँ। मैं अपने बेस-माइनों के परिश्रम पर जी रहा हूँ। अपनी जेब में पड़े हुए एक-एक पैसे का ह्यान कीजिये और सोचिये कि यह वहां से आया है। तब आप मेरी बात की सचाई को जान जायेंगे।”

इसके जवाब में कोई कह सकता है कि समाजवादी समाज में ऐसा धोष नहीं हो सकता। इसके लिए धादिकाधीन समाज-रचना की धार मौट बनने की कोई जरूरत नहीं है। परन्तु जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, इस प्रकार का समाजवादी संयोजन तभी सम्भव होगा जब केन्द्र का कठोर नियन्त्रण होगा। उसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त होकर मनुष्य के ध्यक्षित्व का विकास रुक जाता है। इसके अलावा इसमार्गी समाज की रचना हिंसा के बीरे सम्भव ही नहीं जिसे गांधीजी बरा भी बर दास्त नहीं कर सकते। इसलिए जनता के लिए अधिक परिधान में उत्साहन करने के बजाय गांधीजी चाहते हैं कि कारखानों में जनता अपनी जरूरत के लिए खुद ही उत्पादन कर लिया करे। वह कहते हैं “मेरी पद्धति में तो धातु का धिकड़ा नहीं, धर्म नरक धिकड़ा होगा। जो भी धातवी उस धिकड़े का उपयोग कर सकेगा, वह जनमान कहलायेगा। वह इससे कपड़ा बना सकता

है और धनात्म भी पैदा कर सकता है। मान लीजिये कि मनुष्य को वैरा-
ग्य सेन की जरूरत है। इसे वह बना नहीं सकता। तो वह अपने पाप
के धनात्म के घर में से कुछ धनात्म लेकर उसे खरीद लगा। यह धन का मुक्त
विनिमय है—स्वतन्त्र व्यापार और समान शर्तों पर। इसलिए इसमें कूट
नसोड नहीं है। आप कहेंगे यह तो पुरानी प्रसंग्य स्थिति को सीट जाना हुआ।
परन्तु क्या सारा प्रसंग्य राष्ट्रीय व्यापार इसी पद्धति से नहीं चल रहा है ?^१

रोटी के लिए खरीद-व्यय गांधीजी के लिए एक जीवन-सिद्धांत है।
उनका मान्य है कि प्रत्येक समाज में प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रतिदिन घाट
घंटे का धन करने की व्यवस्था होनी चाहिए। घाट घंटे काम घाट घंटे
विभाग और घाट घंटे अन्य सामाजिक सांस्कृतिक कार्य। उनकी दृष्टि में
य समय का यह घाट घंटे विभाजन है।

मानवीय मूल्य

गांधीजी के अर्थशास्त्र में जीवा मूलमूल सिद्धांत यह है कि जीवन के
वर्तमान मूल्य ही बदल देन की जरूरत है। प्रचलित अर्थशास्त्र में धन और
भौतिक सम्पत्ति को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है और नैतिक तथा
मानवीय मूल्यों को उसमें कहीं स्थान ही नहीं है। परन्तु हम वेग रहे हैं कि
अब इस वैसा-संधी मनुष्य के ही वर्ष पूरे होने को आ गये और अब प्राकृतिक
मूल्यों में संयोजन करने का समय आ पहुंचा है। फ्रांस के अर्थशास्त्री तिम
मोंट्यी की भांति गांधीजी भी मानते हैं कि अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र को
अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जीवन को उसकी सम्पूर्णता में ही
देखकर उसके बारे में विचार किया जाना चाहिए।

“मुझे स्वीकार कर लेना होगा कि अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बीच
में बहुत क्या जरा भी जग नहीं करता है। जो अर्थशास्त्र व्यक्ति या राष्ट्र के
चरित्र के लिए हानिकार है वह अनैतिक और पापपूर्ण है। इसलिए जो अर्थ
शास्त्र दूसरे देश को आगे बढ़ का विचार—मुसाम—बनाने की प्रवृत्ति
देता है वह अनैतिकपूर्ण है। जिन वस्तुओं के निर्माण में मजदूरों का उनके
परिचय का पूरा ध्यान नहीं दिया जाता ऐसी वस्तुओं का उपयोग और
उपयोग पाप है। मेरा पड़ोसी धनात्म का व्यापारी बाहकों के समार में

भूखों मरे धीर मैं घमरीका का घमाज साऊँ यह भी पाप है। इसी प्रकार यदि मैं जानता हूँ कि अपने पड़ोस में रहनेवासे कातनेवालों धीर बुमकरी के बनाये बपड़े मैं पहनूँ तो मेरा धीर उनका धीर भी कुछ बायगा धीर फिर भी मैं रीजेंट स्ट्रीट की नई-से-नई फैशन के बपड़े पहनता रहूँ तो यह भी पाप है।^१

किसी उद्योग या कारखाने का मूल्य मापने का तरीका यह नहीं होना चाहिए कि वह अपने प्रकर्मण्य हिस्सेदारों को कितना मुनाफ़ा बांटता है बल्कि यह हो कि उसमें काम करनेवासे मनुष्यों के धीर, मन धीर धारमा पर उमका क्या असर होता है। वह बपड़ा मंहसा है जो खरीदार की कुछ पैसों की बचत करता है परन्तु जो बम्बई की चामों में रहनेवासे पुरुषों स्त्रियों धीर बच्चों के जीवन को सस्ता बना देता है।^२

मानवीय मूल्यों के महत्त्व पर जोर देना गांधीजी के स्वदेशी-सम्बन्धी भावनों की धारमा है। धार्मिक धर्मशास्त्रियों का सिद्धान्त है कि मनुष्य को धरती-से-धरती बीज सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर खरीदनी चाहिए, परन्तु गांधीजी को इन धर्मशास्त्रियों के धर्म सिद्धान्तों में यह सबसे अधिक प्रमानवीय लक्ष्यता है।

रस्किन ने भी 'स बन्धना की बड़ी तीव्र धानोचना की है। वह लिखते हैं

'राष्ट्रों के धर्मशास्त्र में यह सिद्धान्त बड़ा प्रख्यात माना जाता है कि किसी भी बीज को सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर खरीदो धीर मह्ये-से-मह्ये चामों पर बेचो। परन्तु जहाँ तक मुझ पता है मनुष्य की बुद्धि के धर्म-पान की इनकी बुरी मिसाल इतिहास में कहीं बूढ़े भी नहीं मिलेगी। सस्ते-से-सस्ते भावों में धान खरीदना चाहते हैं? धरती परन्तु यह तो बताइये कि उम बीज का सस्ता किसन बनाया? धान के मकान में धान लग जाने पर जसी हुई लकड़ी का बीयसा सस्ता हो सकता है धरती किसी भूचाल में मकानों के गिर जाने पर इन्हें भी सस्ते भावों पर मिस सकती हैं परन्तु इन कारण धान धीर भूचाल राष्ट्र में उपभारकर्ता नहीं मान जा सकते। इसी प्रकार

^१ कां १ दिव्य २३ १ १९२१

^२ बग १ दिव्य ६ ४ १९२२

महंते-मे-महंते मार्बा को सीजिये । आपकी बीजों को महंयी किसने किया ? आपने सस्ती बीमत पर रोटी बेचकर घण्टी कमाई की परन्तु आपको पता है आपने वह रोटी एक ऐसे मरते हुए घादमी को बेची है जो घर भूमरी बार रोटी नहीं खरीब सकेया ।”^१

परन्तु परिचय में केवल ऐसे और मुताफे का ही विचार किया जाता है । इसीलिए वहां निर्मज्ज सोपन दुषबायी बेकारी और आनसेबा मजदूरी के दुष दिखार्ई देते हैं । श्री रे० सी० कुमारणा न टीक ही मिला है ।

‘कारखानों में काम करनेवाले मजदूरी के हाथ-पांव कटकर तरकारी बन जाने फिर भी सिकाना के मास बेचनेवाले कारखानेशर मजदूरों की जान बचाने के लिए अपने कारखाना की मशीनों को नहीं रोकेंगे ।’^२

गांधीजी की दृष्टि में मनुष्य का महत्व सबसे अधिक है । उनकी मजूरों में वैने की अपेक्षा जान अधिक कीमती है । वह लिखत है “हमारे माता-पिता बहुत बड़े हा गये हैं अब वे कुछ भी काम नहीं कर सकते, परिवार के लिए एक बाध हैं उन्हें मार डालने में ही लाभ है इसी प्रकार छोटे-छोटे बच्चे भी बेकार हैं कुछ भी नहीं कमाते घरमें उनकी पर बरिदा करनी पड़ती है हमने ता उनको मार डालना मन्ना पड़ेबा । परन्तु क्या हम अपने माता-पिता को और बच्चों को मार बाधते हैं ? नहीं हमने उन्हें प्रेम से निभाने और उनकी सेवा करने में हम एक प्रकार के धान्य और वीरक का अनुभव करते हैं भले ही हमके लिए हमें विनयी ही तब सीक ही और तर्क उठाना पड़े ।”^३

धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में अपने विचारों का समझाउ हुए गांधीजी लिखते हैं

‘भाषारण प्रचलित धर्मशास्त्र से ग्यारी बा धर्मशास्त्र एकदम मिला है । जहां वह मानवीय मूल्यों का महत्व देता है वहां प्रचलित धर्मशास्त्र

१ ‘कल्लु रिम लाध’

२ ‘गार् दि वि १३ मूमेंट १’ १ ।

३ हरिकन १०-१२ १९८८

मका स्वातंत्र्य नहीं करता।^१

‘आदी-आधना का धर्म है पृथ्वी के हर मनुष्य के साथ सहानुभूति।
समें उन सारी चीजों का त्याग है जिनसे हमारे भाइयों को—आदिमात्र
—जगत् भी हानि पहुंचने की सम्भावना है।’^२

‘आदी मानवीय मूल्यों की धीर मिस का बपका भातु के दुकड़ी का
ठीक है।’^३

इस प्रकार सादगी पहिना धम-धर्म की पवित्रता और मानवीय मूल्य
नचार सिद्धांतों पर गांधीजी ने धपन स्वातंत्र्यवादी ग्रामीण समाज
गठन की धीर बिकेन्द्रित आदर्श गृहउद्योग-धनाशी की रचना की है।

आगे धब हम बिकेन्द्रीकरण के आचार्य और उसकी महान सम्ना
ताओं का बिस्तृत परीक्षण करेंगे आस गीर पर भारतीय परिस्थितियों
के ध्यान में रखते हुए।

५.

भारत भूतारिकाम से ग्राम-पंचायतों का देश रहा है। कहा जाता है
के इस भंखा का भारभूत सबसे पहले राजा पृथु ने किया जब उसने गंगा
मनु के दोभावा को आबाव किया। महाभारत के आदिपर्व में और मनु
स्मृति में ग्राम-पंचायतों के बिबिध उल्लेख पाये जाते हैं। कौटिल्य ईसा के
चार सौ बर्य पूर्व हुए। उनके धर्मशास्त्र में भी ग्राम-पंचायतों का बर्णन है।
वास्मीकि रामायण में जनपदों का उल्लेख है। ये धायर धनेक ग्राम-पंचायतों
के संघ रहे होंगे। निरुधय ही सिबन्ध की बकाई के समय ग्राम-पंचायत
इस देश में व्यापक रूप से फैली हुई थी। मैक्सवुड ने इनको ‘पेंटाइस
कहा है। यह पंचायत का धपधर्म प्रतीत होता है और इनका बर्णन उसने
बिस्तार में किया है। इनके बाब चीनी यात्री हुएनसांग और फाहियान
पाये। उन्होंने धपने संस्मरणों में सिना है कि भारत ‘बड़ा उपजाऊ है और
‘यहां के लोग इतने बैमबधानी और सुखी हैं कि जिनकी तुलना नहीं हो

^१ हरिजन १६-७-१९३१

^२ ‘मम इतिहा’ २२-६-१९७७

^३ हरिजन ६-७-१९३४

सकती।" मध्यकाल में पंचायतों की स्थिति क्या थी इसका वर्णन हमें मुन्नाचार्य के 'नीतिशास्त्र' में मिल जाता है।

भारतीय ग्रामीण समाज

भारत की ग्रामपंचायत स्वयं-शासित प्रजातंत्री संस्थाएँ थीं। वे नारे देर में पैनी हुई थी थीर हिम्मुषों थीर मुसलमानों के शासन-काल में वे पूरु तरफकी पर थी। राजवंसों थीर साम्राज्यों के उत्पान-वतनों का इन पर कोई असर नहीं पड़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कम्पिनी घोंब सीकमी ने अपने बलिबेदन में लिखा है

"हस नीचे-साह स्वायत्त नागरिक शासन के नीचे वनादिकाल में नार भुन से रह्य थाये हैं।

"राज्यों के उत्पान-वतनों की ये लोग चिन्ता नहीं करते। नाब घपने-घापमें स्वय-पूर्व होते हैं। इनलिए लोग इस बात की चर भी परवा नहीं करते कि व किसक राज्य में हैं वा किम राज्य को सीप दिवे पण हैं क्योंकि इनसे उनकी बीतरी व्यवस्था में कोई अंतर नहीं पड़ता।

सर चार्ल्स ट्रेवेलीन ने लिखा है "भारत पर एक के बार दूसरा इन तरह घनेक बाहरी धाकमज हुआ। परन्तु ये ग्रामपंचायत कुन घान की तरह जमीन में घपनी जड़ जमाये रहीं। सर चार्ल्स नेटकाफ कुछ समय भारत के कार्यवाहक वक्लर बनरस रहे थे। उन्होंने सन् १९३० में अपने प्रतिबेदन में इन ग्राम-पंचायतों को छोटे-छोटे स्वायत्त प्रजातन्त्र बनाया। जिनके पाम मयममजब साधन थे थीर जिनका बाहर किसीमें कोई गान मरोकार नहीं था। उन्होंने लिखा है

"जहां थीर कुछ नहीं बच सका वहां ये ग्राम-पंचायतें गिरी हुई हैं। ग्रामीण समाज के ये छोटे-छोटे मंच हैं। प्रत्येक घपने घापमें एक स्वतन्त्र छोटा-सा राज्य है। भारत में इनमें कंठ-बदन थीर नाभिमां घाई। इन सबके बीच में भारत की जमता को बचा ले जाने का सबसे अधिक भय इन्हीं संस्थाओं को है। इन्होंने लोगों को मुन्नी रक्खा है थीर एक हर एक उनकी धाजारी की रक्षा भी की है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इन ग्रामीण संस्थाओं को नहीं रोका जाय। मैं उन समान बीजों में चरता हूँ जो इनका भाग करना चाहती हैं।"

परन्तु होनहार कुछ धीरे ही थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी चाहती थी कि जमीन के मगान से उसे अधिक-से-अधिक प्राय हो। सो धनतक जो बसूनी ग्राम-पंचायतों की मारफ़्त होती थी उस बन्द करके उसने कारनकार से सीधे मगान लेना शुरू कर दिया। इसी प्रकार प्रदेस सरकार को मगा कि न्यायदान धीरे-धीरे प्रबन्ध का भी सारा काम स्वयं उसके अपने हाथों में ही हो यह अनुचित था। परन्तु फिर भी उसने पंचायतों के दिए सब अधिकार भी अपने हाथों में ले लिये जो पनादिकान से उनके हाथों में थे। इस प्रकार ये छोटे छोटे प्रजासत्त बौरे-बौरे नष्ट हो गये। जैसाकि श्री रमेशचन्द्र दत्त ने अपने 'भारत के प्रायिक इतिहास' में लिखा है—“भारत में प्रदेसी राज्य के बुरे परिणामों में सबसे अधिक दुःखायी यह था कि गाँवों में अपना शासन खुद कर लेने की जो प्रथा संसार में सबसे पहल बिखरित हो गई थी धीरे-धीरे अधिक-से-अधिक समय तक जारी रही उसका इस राज्य ने नामा-निदान मिटा दिया।”

मज की बात तो यह है कि भारत के इन छोटे-छोटे प्रजासत्तों ने कार्ल मार्क्स का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। अपने 'बास कैपिटल' में वह लिखते हैं

“भारत ने प्रति प्राचीन काल में एक प्रकार की ग्राम-पंचायतों का विकास किया है जो आज भी वहीं-वहीं हैं। ये इस सिद्धान्त पर आधारित हैं कि सारे ग्राम की जमीनों की वे स्वामिनी हों और ज़ेमी श्रमिकों तथा अन्य प्रकार के श्रम का प्रबन्ध भी वे करें। वहाँ-वहाँ ऐसी समस्याएँ बनें सिने में स्थापित होती हैं वहाँ श्रम-विभाजन के निश्चित सिद्धान्त के आधार पर इन सब कार्यों का बंटवारा कर दिया जाता है। अपने परिधम से उत्पादन करनेवाले वे स्वामिनी समाज होते हैं। इनके पास ही एक से लेकर हजारों एकड़ जमीन होती है। वे प्रायः अपनी ज़रूरतों के लिए ही उत्पादन करते हैं बेचने के लिए नहीं। वहाँ उत्पादन श्रम-विभाजन के आधार पर नहीं हाता बीजों की बदला-बदली के कारण वहाँ धरने-प्राप श्रम-विभाजन भी हो जाता है। ..भारत में प्रसंग-प्रसंग भागों में हम मंस्था के प्रसंग-प्रसंग का हैं। उसका सबसे सीधा-सादा रूप यह है कि जमीन का सारा लाभ मिलकर आगता है और जो वेशवार होता है उसे

गांधीवादी संसार में के भिन्नता

सब राष्ट्रिय प्रापस में बात में है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार में तथा एक उद्योग के रूप में नतीजा सुनाई, इत्यादि होती रहती है। उत्पादन की यह पद्धति इन स्वायत्त स्थापनाओं की सफलता और विस्थापित का रहस्य है। एशिया में इन राज्य और इन साम्राज्य बदलते रहे फिर भी य मस्वाएँ ज्यों-की-त्यों कायम हैं। इसका कारण यही है। राजनैतिक जगत में बाहे किन्तु ही उच्चम-गुणम होती रहे समाज के धार्मिक उत्थानों पर हमका कोई परिधान नहीं होता।

सर हेनरी मॉन म अपनी 'विसेज कम्युनिटीज इन दि ईस्ट एंड वेस्ट' में लिखा है "भारत की ग्राम-मस्वाएँ मरी हुई नहीं जीवित मस्वाएँ थीं। और वह कि 'यूरोप की प्राचीन ग्राम-मस्वाएँ और य भारतीय ग्राम मस्वाएँ समान एक-सी थी। सर हेनरी ने ग्राम लिखा है 'ग्राम देन की बात है कि ईसाई के जो लोग पहले-पहल और मस्वाएँ में जाकर बस उन्होंने भी मेली के लिए इसी प्रकार के ग्राम-मस्वाएँ बनाये थे। प्रिन्स फोफोटकिन ने अपनी अन्तर्गत किताब 'म्यूचुअल एंड' में ग्राम और मासतौर पर इस अर्थ की फास और विवदजस्त में इन मस्वाओं के ऐतिहासिक अध्ययन पर काफी विस्तार में लिखा है। वह कहते हैं कि ये मस्वाएँ इन देश में अपने-आप उन्मूलन की प्रक्रिया में मर गईं हुई बल्कि स्वार्थी लाभ में इन्हें बहुत सोच-नमस्कर बाजना बनाकर मर दिया है।

"मॉन ने यह कहना कि ये ग्राम-मस्वाएँ अन्तर्गत के स्वायत्त नियमों के अनुसार अपनी स्वायत्तिक मोन मरी है एक ऐसा ही निर्बंध मस्वाएँ हाना जैसे यह कहना कि कुछ के मंदान म कटे वेनिश अपनी स्वायत्तिक मोन मरे है।"

भारत के धार्मिक-विज्ञान का विमूर्ति अध्ययन किया है बल्कि अन्तर्गत जानते हैं कि प्रिन्स फोफोटकिन के ये मस्वाएँ वित्तन मस्वाएँ हैं। भारत के गांधी ने एक तरह का ग्राम मस्वाएँ और दूसरी तरह पूरी तरह का केन्द्रिय नियंत्रण इन दोनों मस्वाओं का बाह्य एक अनुचित धार्मिक और राजनैतिक नीति का विधान कर लिया था। उन्होंने अपनी

घोर उद्यमों की एक ऐसी धारण सहकारी पद्धति विकसित कर ली थी कि जिसके ध्वज पर धनवानों द्वारा मरीचा के धावन की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती थी। जैसाकि गांधीजी ने लिखा है, "तब उत्पादन वितरण और उपभोग सब समग्र साथ-साथ चलते थे और वे के धर्मशास्त्र का पुष्कल पैदा नहीं हुआ था। उत्पादन दूर के बाजारों के लिए नहीं स्थानीय और तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता था। सारी समाज रचना धर्मिक और आनु-आज पर आधारित थी। इसीलिए तो यात्री-परी इतने जोर से प्राचीन इंग की ग्राम-पंचायतों के पुनरुज्जीवन का आग्रह कर रहे हैं जिनके मानवत सम्बन्धी बेटी होती थी और विकेंद्रित कलापूर्ण दल कारिया तथा छोटी-छोटी सहकारी संस्थाएं समाज की सेवा करती रहती थी।"

आदर्श प्रजातन्त्र

राजनैतिक संगठन की दृष्टि से ये ग्राम-पंचायत एक प्रकार से आदर्श इंग की प्रजातन्त्र थी। जॉन स्टुअर्ट मिल्स ने लिखा है "समाजवादी राष्ट्र की सारी जरूरतों की पूर्ति केवल बड़ी शासन पद्धति कर सकती है जिसके ध्वज पर संपूर्ण जनता भाग लेती है।" सच्चा प्रजातन्त्र की यह धार प्राचीन यूनान के नगर-राज्यों में बहुत बड़ी हद तक पूरी हो जाती थी जिनके ध्वज पर नगर के समस्त नागरिक एक समा के रूप में भाग लेते थे। जॉर्ज ग्रोस ने लिखा है "नागरिकों की यह समा संघ सरकार और प्रभुत्व करनेवाला प्रभुत्व सबकुछ बुरा ही थी। बड़ी बानून बनानेवाली मजदूरी और न्यायदान भी बड़ी करती थी। यूनान के ये राज्य बहुत छोटे-छोटे थे। नगर के प्रभुत्व के बारे में राय इन का जिन-जिनको अधिकार हुआ वे सब आसानी से एक समा के रूप में एकत्र हो सकते थे जिसमें आसानी की आवाज इतनी दूर से उस छोटे तक बड़ी आसानी से सुनी जा सकती थी। हमने नेतृत्व या अधिकार को जगहों के लिए जा भी उम्मीदवार होने उनके मुनासिबता का प्रत्यक्ष परिचय पाने का सबको अवसर मिलता रहता था।" प्राचीन यूनान के इन नगर राज्यों की भांति प्राचीन भारत की ग्राम पंचायत भी अपना भीतरी प्रभुत्व बहुत अच्छी तरह और धार्मिक के साथ

सिखा है 'यन्त्रीकरण और धर्म विभाजन की प्रति के कारण काम में से मनुष्य के व्यक्तित्व का लोप हो जाता है और इससे मजदूर अपने काम में सन्तोष का अनुभव नहीं कर सकता। वह स्वयं भी यन्त्र का एक पुर्जा बन जाता है।' १ धर्म 'दास कैपिटल' में मार्क्स ने लिखा है कि 'प्राधुनिक उत्पादन-शक्ति न मनुष्य को पंख और धमामयी बना दिया है।' २ इसके विपरीत जब मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ काम करता है तब उसकी ज्ञान-शक्ति और मज्जा-शक्ति का भी विकास होता रहता है। प्रिंसिपल केपाटकिन ने लिखा है 'भारीयरी और कुसमता का सब धर्म के लिए बिना हो गई। पहले मनुष्य को अपने हाथ में जीव बनने समय कलाकृति के निर्माण से या एक प्रकार का आनन्द होना या वह बना गया। अब तो मनुष्य एक बड़ यन्त्र का बसा हुआ बड़ गुस्सा बन गया है।' ३ मरी सुदरसेड कहती है 'आजकल के कारखानों में काम करना एक शक्ति काप है। उससे मनुष्य की सारी सृजन-शक्ति मर जाती है और उसके धर्म केवल इतने प्राण रह जाते हैं कि यन्त्र की सहायता से या भी मर-रंजन हो जाय उससे सन्तोष कर न। इसका कारण केवल कारखानों का आटावरण और परिस्थितियां नहीं हैं बल्कि काम का प्रत्यक्ष स्वयं भी है।' ४

आन्विष्य केन बनती हैं इसका एक मर्म सिद्ध के जमाने से इतिहास बताते हुए बर्नार्ड या न धर्म 'इंटेनिगेट यूमन माइंड टु सोसलिज्म एण्ड कैपिटलिज्म' में लिखा है

"कहते हैं आर्यी एक दिन में पांच हजार आन्विष्य बनाते तब मया इस कारण पिन और बहुत सम्पत्ति हो गई। तब समझने लग गये कि हमारा बेग बनकाम बन मया क्योंकि हमारा पास आन्विष्य के हर तब गय। परन्तु हमने तो योग्य आन्विष्य को जड़ यन्त्र बना दिया और वही दिमान के जनका काम करन रहन है। हा जनवर्षों के पास पड़े बेकार आन्विष्य

✓ क्यूंकर मैत्रिण्डो

१ 'यन्त्र' कैपिटलिज्म के कारण

२ 'दरिद्र' का मत है - इन्टरम

जबकि उन्हें कुछ काम के लिए मिल जाता है जिस प्रकार इजिप्ट में गांधीजी कामना पड़ता है। इसीलिए तो कवि गोस्वामिध ने कहा है, धन के डेर समाले जा रहे हैं और धारणी मर रहे हैं। यह निरा कवि कहा बुराई की धर्मशास्त्री भी था।

प्राध्यापक श्रीरुद्र में अपनी 'इकोनॉमिक धर्म इन्स्टिट्यूट ऑर गैनाइजिंग नाम की पुस्तक में साफ तौर पर लिख कर दिया है कि वैज्ञानिक रीति से प्रबन्ध करने की प्राकृतिक पद्धतियों से काम करके जल्दी और अधिक होना है परन्तु 'एक सीमा से अधिक धन न बढ़ जाय' अथवा मजदूर को प्रत्यक्ष बकायत न हो जाय इसकी कोई निश्चित और यथार्थ के सामने रोक उसमें नहीं है। 'यन्त्रों द्वारा किया जानेवाला सारा काम परिपूर्णता के साथ हो यह वृत्ति बढ़ती जा रही है। इससे मजदूर की विचारधारा स्वतन्त्र बुद्धि, सर्वजनिक वस्तुओं और काम में मिलनेवाला प्रान्त्य, इन सबसे मनुष्य द्वारा धोखा खा रहा है। यन्त्रों द्वारा बड़े पैमाने के साथ मशीनबान की दृष्टि से कहते हैं।

"हमारे जमाने में धर्म का कुछ धर्मिक रूप में विकसित हो रहा है। यह कारीगरों को निरर्थक बनाने देती है। पुराने जमाने में एक कारीगर अपना सारा काम घर पर या बुकान में बैठकर कर लिया करता था और उसे अपनी प्रत्येक कृति पर एक प्रकार का धर्म होता था परन्तु कारीगरों में धन के धारण पर अब तो यह विचार बन गया है। लोग भी सामान्य उसे नाम से नहीं रक्खा है ही पहचान है।

वर्तमान मनुष्य-पद्धतियों में ये बुराईयाँ धर्मिक हैं। केवल समाजवाद के धर्म में ये बुराई नहीं होंगी। मार्क्स मार्क्स ने इनको बहुत साफ ढंगों में स्वीकार किया है और उसे धारणा थी कि साम्यवादी धर्म में ये नहीं रहेंगी परन्तु मजदूरों का काम करने की दृष्टि से यन्त्रों में जितने अधिक सुधार होंगे मनुष्य के धर्म, मन और चरित्र पर उनका बुरा प्रभाव पड़े बिना हरगिज न रहेगा फिर धर्म की पद्धति पूँजीवादी हा या समाजवादी। अपनी पुस्तक 'द्वितीय धर्म सिद्धिवादी धर्म' में बारम्बार म लिखा है।

मिला है। 'यन्त्रीकरण और धर्म विभाजन की शक्ति के कारण काम में मनुष्य की व्यक्तिगतता का लोप हो जाता है और इससे मजबूर अपने काम में मनुष्य का अनुभव नहीं कर सकता। वह स्वयं भी यन्त्र का एक पुर्वा बन जाता है।' १ अपने 'वास कैपिटल' में मार्क्स ने लिखा है कि 'आधुनिक उत्पादन-पद्धति ने मनुष्य को पशु और सामाजिक बना दिया है।' 'इसके विपरीत जब मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक मजदूर काम करता है तो उसकी ज्ञान-दृष्टि और सकल्प-शक्ति का भी विकास होता रहता है। त्रिस्तरीय कोषाटकिन में लिखा है 'काँटीगरी और कुशलता तो सब उसी के लिए बिना ही गई। पहले मनुष्य को अपने हाथ में जीर्ण बनाते समय कलाकृति के निर्माण में का एक प्रकार का आनन्द होता था वह जाता गया। अब तो मनुष्य एक जड़ वस्तु का वैसा ही जड़ पुस्तान बन गया है। मेरी सुझावें कहती हैं 'आयोजन के कारखानों में काम करना एक प्रतिपाद है। उससे मनुष्य की सारी सृजन-शक्ति मर जाती है और उसके अन्तर केवल इतने प्राण रह जाते हैं कि मजदूरी की सहायता में का भी मनो रंजन हो जाय उससे मनुष्य कर म। इसका कारण केवल कारखानों का आनाबरण और परिस्थितियाँ नहीं हैं। बल्कि काम का प्रत्यक्ष स्वभाव भी है।' २

आसक्ति कम बनती है इसका तीव्र स्मरण के समाने से इतिहास बताते हुए बर्नाई छा ने अपने 'इतिहास बुद्धिवाद दु सोसियलिज्म एंड कैपिटलिज्म' में लिखा है।

"बहुते हैं आसक्ति एक दिन में पाँच हजार आसक्ति बनाने में गया इस कारण दिन और बहुत आसक्ति हो गई। लोग समझने में सब दि हमारा दिन धनधान बन गया क्योंकि हमारे पास आसक्ति के दर सब मय। परन्तु हमने तो आसक्ति आसक्ति को जड़ मजदूर बना दिया जो बर्बर विभाग के उनका काम करना रहते हैं। हाँ धनवानों के पास पड़ बेजार आसक्ति

✓ क्यू'नर वैब'करो

'न' वैब'करो न'करो

३ दिहा जो वैब'करो

जहर उन्हें कुछ लाभ के लिए मिला जाता है जिस प्रकार इंसान में वा-गानी कामना पड़ती है। इसीलिए तो कवि गोस्वस्मिन् ने कहा है, घन के डेर मगाते जा रह हैं और घाबरी सब रहे हैं। वह निरा कवि बड़ा बुराहीं अर्थसास्त्री भी था।

प्राध्यापक श्रीरुद्र ने अपनी 'इकोन्यूशन ऑफ इन्डस्ट्रियल ऑरगनाइजेशन' नाम की पुस्तक में साफ तौर पर लिख कर दिया है कि वैज्ञानिक रीति में काम करने की प्राबुलिक पद्धतियों से काम जबर बन्धी और अधिक होता है परन्तु 'एक सीमा से अधिक घागे गति न बढ़ जाय' यथवा मजदूर की प्रत्यक्ष बकायत न आ जाय इसकी कोई निश्चित और भरोसे के सामक रोक उसमें नहीं है। "यहो द्वारा किया जानेवाला सारा काम परि पूर्वता के साथ हो यह कृति बढ़ती आ रही है। इससे मजदूर की बिचार गति स्वतन्त्र बुद्धि, सर्वजनशील कल्पना और काम में मिलनेवाला धामन्य, इन सबसे मनुष्य हाथ धोना आ रहा है। अनसुष्ट हृष्ट बड़ बर्ब के साथ मनोबिज्ञान की दृष्टि से कहते हैं

'हमारे बमाने में सकल का कुछ प्रतीय बंग में बिकास हो रहा है। वह कारीगरों को निरे बड़ यत्न बना देती है। पुराने बमान में एक कारी पर अपना सारा काम कर पर या बूकाल में बैठकर कर लिया करना था और उसे अपनी प्रत्येक कृति पर एक प्रकार का बर्ब होना था परन्तु कार बाने में आ बाने पर अब तो वह सिफर बन गया है। लाग भी शायद उसे नाम से नहीं संक्या से ही पहचानते हैं।

वर्तमान यन्त्र-पद्धतियों में ये बुराईयां अनिवार्य हैं। केवल समाजवाद के आन से ये दूर नहीं होंगी। कार्म मार्कस ने इनको बहुत साफ शब्दों में स्वीकार किया है और उसे छोड़ा भी कि साम्यवादी शासन में ये नहीं रहेगी परन्तु मजदूरों को काम करने की दृष्टि से यन्त्रों में बिलने अधिक मुबार हाग मनुष्य के शरीर, मन और चरित्र पर इनका बुरा असर पड़े बिना हरगिज न रहेगा फिर शासन की पद्धति पूंजीवादी हो या समाजवादी। अपनी पुस्तक 'दिव अगसी सिविलाइजेशन' में बारम्बारी न लिखा है

मिला है। “यन्त्रीकरण और भ्रम-विभाजन की शक्ति के कारण काम में मनुष्य के व्यक्तित्व का भंग हो जाता है और इससे मजदूर अपने काम में संतोष का अनुभव नहीं कर सकता। वह स्वयं ही यन्त्र का एक पूर्ण बन जाता है।”^१ अपने ‘वास कैपिटल’ में मार्क्स ने लिखा है कि “आधुनिक उत्पादन-प्रणालि में मनुष्य को पंगु और समानवीच बना दिया है। “इसके विपरीत जब मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ काम करता है तो उसकी ज्ञान-बुद्धि और संकल्प-शक्ति का भी विकास होता रहता है। प्रिन्स ओपाटकिन ने लिखा है ‘भारीगरी और कुसहाहा का प्रबल हथ के लिए दिया जा गई। पहले मनुष्य को अपने हाथ में जीर्ण बनाते समय कलाकृति के निर्माण से जो एक प्रकार का आनन्द होता था वह बना गया। अब तो मनुष्य एक बड़बड़ का बैसाही बड़ बुलाम बन गया है।’^२ मेरी सुझाव यह है कि ‘आजकल के कारखानों में काम करना एक प्रतिपाद है। इससे मनुष्य की सारी सुख-शक्ति मर जाती है और उसके अन्दर केवल इतना शक्ति रह जाता है कि यन्त्र की सहायता से जो भी मजदूर बन हो भाव उससे संतोष करे। इसका कारण केवल कारखानों का आवागमन और परिस्थिति नहीं है बल्कि काम का प्रत्यक्ष स्वभाव भी है।’^३

आसपिन्ड कम बनती है। हमका एहम शिब के अमान से इतिहास बताते हुए बताई जा ने अपने ‘इंग्लिशमन्ट बुमस बाह’ टोपमिगम एण्ड कैपिटलिज्म’ में लिखा है

“बहुते हैं आसपिन्ड एक दिन में पांच हजार आसपिन्ड बनाते सन बहा। इस कारण दिन और बहुत समी हो गई। साथ सनमने लय गव दि भाग देन धनदान बन गया। क्योंकि हमारे पास आसपिन्ड के हर सन मये। परन्तु हमने तो साथ आसपिन्डों को बड़ बड़ा बना दिया जो बड़े दिमाग के उनका काम करन रहन है। हा धनवानों के पास पड़ बैराग धनान

१. मार्क्स, मैजिस्ट्रेशन

२. टोपमिगम एण्ड कैपिटलिज्म

३. रिचर्ड आर. टोपमिगम

जकर उन्हें कुछ खाने के लिए मिल जाता है जिस प्रकार इबिन म ना-गानी कामना पड़ता है। इसीलिए तो कवि गोस्वामिध ने कहा है वन के डेर लगाठ जा रहे हैं और घावमी सब रहे हैं। वह निरा कवि बड़ा दूरदर्शी धर्मशास्त्री भी था।

प्राध्यापक श्रीरुद्रस न अपनी 'इकोन्यूमिक धर्म इन्स्टिट्यूट ऑफ गैरीनाइज्ड एज माम की पुस्तक मसाला और पर मित्र कर दिया है कि वैज्ञानिक रीति म प्रबंध करने की प्राकृतिक पद्धतियों से काम जकर जल्दी और अधिक होगा है परन्तु 'एक सीमा से अधिक घाने मणि न बड़ जाय घबरा मजदूर का प्रत्यक्षिक बकाब न घा जाय इसकी कोई निश्चित और भरोसे के साथक रोक उसमें नहीं है। "यनों द्वारा किया जानेवाला सारा काम परि पुनता के साथ हो यह नृति बढ़ती जा रही है। इससे मजदूर की विचार शक्ति स्वतन्त्र बुद्धि, सर्वजमीन कल्याण और काम में मिलनवाला धानन्द, इन सबसे मनुष्य हाथ भोठा जा रहा है। अनैस्ट हष्ट बड़ रव के साथ मनोविज्ञान की बुद्धि में कहन हैं

"हमारे जमाने में शक्ति का कुछ मजबूत श्रम न विकास हो रहा है। वह कारीगरों को निरे जड़ यन्त्र बना देती है। पुराने जमाने म एक कारी गर अपना सारा काम घर पर या दूकान में बैठकर कर लिया करता था और उसे अपनी प्रत्येक कृति पर एक प्रकार का गव होता था परन्तु कार जाने में घा जाने पर अब तो वह मिफर बन गया है। लोय मी शायद उसे नाम से नहीं संख्या से ही पहचानने हैं।

वर्तमान यन्त्र-पद्धतियों में ये कुराहियां धनिवाय हैं। वैद्यक समाजवाद का धान म ये दूर नहीं होंगी। कार्ल मार्क्स ने इनको बहुत साफ भावों में स्वीकार किया है और उसे घाधा भी कि साम्यवादी धामन में ये नहीं रहेंगी परन्तु मजदूरों को कम करने की बुद्धि म यन्त्रों म मिलन अधिक मुबारहोने मनुष्य के घरीर, मन और चरित्र पर इनका बुरा धमर पड़ बिना हरबिब न रहेगा फिर धामन की पद्धति पुंजीवादी हो या समाजवादी। अपनी पुस्तक 'दिस घगसी सिबिन्नाइजेशन' म बारमादी न मिछा है

‘उत्पादन और वितरण के ऊपर स आगामी स्वामित्व को हटाकर खोपण को मिटाने से भी इस बुराई की बड़ कटनेवाली नहीं है। कारखाना में कुछ बुनियादी बुराइयाँ हैं और वे मानवता को कष्ट देती रहेंगी। कारखानों पर समाज का स्वामित्व हो जाने पर से या कारखाने के प्रत्येक बिम्बाय को स्वयंसे बना देने में भी सततयुव मानवाता नहीं है जिसके लिए कुछ आदर्शवादी यत्नशील हैं। समाजवाद बुराई की बड़ में प्रहार नहीं करता। इसलिए वह सफल नहीं हो सकेगा। आज तो मानवता पर बोड़े से-बोड़े समय में अधिक-से-अधिक पैसाबार बढ़ाने का भूत सवार है। जब तक यह भूत नहीं उठरेगा तब तक मानव मुन्ही नहीं होगा और इस वृत्त की बजा समाजवाद के पास नहीं है।

महारमाजी का यही विचार था।

“परिचित तरह यन्त्रीकरण चाहते हैं क्योंकि उनका रयास है कि यदि कारखानों को राष्ट्र की सम्पत्ति बना दिया जायगा तो उनमें फिर से पूंजीवाद की बुराईयाँ नहीं रहेंगी। परन्तु मेरी धपमी राय यह है कि वे बुराईयाँ यन्त्रों में स्वाभाविक और जन्मजात हैं। इन्हें राष्ट्र की या समाज की सम्पत्ति बना देने से वे दूर नहीं होंगी।”

यन्त्रों के प्रति गांधीजी का दृष्ट

एक बात साफ़तीर ग समझ सने की जरूरत है कि गांधीजी दम-मात्र के विरोधी नहीं हैं। वह कहते हैं “मे यन्त्रों का दुश्मन नहीं हूँ। बल्कि मुझे भी तो एक कीमती यन्त्र है। उनका विराज है यन्त्रों के ‘पागलपन’ से और उनके ‘अध्याधुन्य उपयोग और प्रचार’ से। नीतिज्ञ वह यन्त्रों को नष्ट नहीं करना चाहते बल्कि उनके उपयोग पर कुछ मर्यादा लगा देना चाहते हैं। वह तब यन्त्रों का बड़ी सृष्टी से स्वागत करेंगे जो मर्तों में रहनेवाले कराड़ों आदिमियों के परिधम का हलका करम में मदद कर सकें। परन्तु हाँ तब तमाम यन्त्रों के वे जरूर उनके विरोधी हैं जो मनुष्य का उन्हीक गमान बढ़ बना देते या समाज में वैवासी फैलाने हैं।

अहा पर्याप्त सख्या में आदिमियों की बहुत कमी हो बड़ा यन्त्र म नाम गला घच्छा है परन्तु अहा भारत के गमान जन्म में अधिष्ठ आदिमी हा

वही यत्न हानिकर है। आज हमारे सामने प्रश्न यह नहीं है कि भारत के गाँवों में रहनेवाले करोड़ों धारमियों को बिघालि देंगे हैं। बर्य में तम मम सः महीने के बेकार रहते हैं।”

“भारत के छान भाष गाँवों में बसनेवाले इन जीने-जायते यन्त्रों के मुकाबले में जब निर्जीव यन्त्रों को नहीं लड़ा करना चाहिए। इसी प्रकार करोड़ों को नुकसान पहुँचाकर मुट्ठीभर धारमियों का घर भरनेवाले यन्त्रों के भी बह विरोधी है।”

बैज्ञानिक आविष्कारों और यन्त्रों में सुधार करने के बह विरोधी नहीं हैं। ‘सर्वसाधारण का जिसमें भला होता है ऐसे हर यन्त्र को तो मैं इनाम दूँगा। मान लीजिये कि एक छोटा-सा यन्त्र है जिसे एक धारमी अपने घर पर बैठे-बैठे बसाकर आविष्कार प्राप्त करता है। ऐसे मुहो छोपों के काम में आनेवाले छोटे-से यन्त्र में कोई धन्यता-सा सुधार कर दे जिससे कम परिश्रम में अधिक काम होने लग जाय तो बह ससका स्वागत करने परन्तु आज के बकारी पैमानेवाले यन्त्रों को बह धन्यता नहीं मम मने।

‘सोम मजदूरों को कम करने पर तुले हैं और इतर हजारों धारमी बेकार होकर भूखों मर रहे हैं। मैं मुट्ठीभर धारमियों का नहीं सब मनुष्यों का—मनुष्यमात्र का—समय और परिश्रम बचाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि जन-सम्पत्ति बड़े यन्त्रों केवल कुछ धारमियों के घर में नहीं बर-भर में सबके यहाँ बड़े। आज यन्त्रों की महायन्त्र ने कुछ धारमी करोड़ों के घर पर सुधार हो गये हैं। इसके पीछे श्रम बचाने की परमार्थ वृत्ति नहीं जन की मान्यता है। अपनी मारी ताकत के साथ मैं इन कुप्रवृत्ति के विनाश मड रहा हूँ।”

बेकारी

यूरोप और अमरीका में यन्त्र एक आवश्यक वस्तु थी क्योंकि वहाँ सम्पत्ति बहुत है और मजदूरों की कमी है। अपने देश की प्राकृतिक सम्पत्ति को प्राप्त करने और उसे विवसित करने के लिए उन्हें यन्त्रों की मदद लेनी

पर काम कर रहे हैं। यद्यपि पिछले तीस वर्षों में भारत में कारखानों की संख्या चौमुनी बढ़ गई है, तथापि कारखानों में काम करनेवालों की संख्या जनसंख्या के अनुपात में बराबर गिरती जा रही है।

वर्ष	प्रतिशत
१९११	५५
१९२१	६९
१९३१	६३
१९४१	४२

इन आँकों से स्पष्ट है कि देश में बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारखाने बढ़ाने में बकायी की समस्या हल नहीं होयी फिर इन कारखानों का संभालन चाहे पूँजीवादी पद्धति में हो या समाजवादी पद्धति में। पश्चिम की पद्धति पर औद्योगिकीकरण के बिना गांधीजी क्यों हैं उसका एक मुख्य कारण यह भी है।

वितरण की समस्या

गांधीजी गृह उद्योग के विस्तार पर जो अधिक जोर देते हैं उसका कारण बेकारी के प्रमाणा वितरण का प्रश्न भी है।

'सब मर के मिट जायेंगे कि मनुष्योत्पादन से देश की सारी जरूरतें पूरी हो जाती हैं परन्तु इससे उत्पादन केवल कुछ भागों में केन्द्रित हो जायगा और फिर वितरण का अटल प्रश्न रह जायगा। इसके विपरीत जहाँ चीजों की जरूरत है, वहाँ उनके उत्पादन की व्यवस्था कर दी जाय तो वितरण अपने-आप वहाँ आसानी से हो जायगा और ठीक तथा सट्टे के लिए कोई प्रयत्न नहीं रह जायगा।' गांधीजी कहते हैं—'यदि उत्पादन नहीं हो जाता है तो वितरण अपने आप समाप्त हो जाता है अर्थात् उत्पादन के साथ साथ वितरण भी हो जाता है।

समाजवादी ढंग के वितरण को गांधीजी पसन्द नहीं करने। वह कहते हैं 'आप चाहते हैं कि सोवियत रूस में जिन प्रकार का उत्पादन और वितरण राज्य के नियंत्रण में चल रहा है इस पद्धति पर मैं अपनी राय दूँ। अच्छा भुनिक। अभी यह प्रयोग बिनाकृत गया है। अन्त में जाकर यह विम

हमारी कुछ कारबाई ही भूमत गलत हैं। सामाजिक दृष्टि से देखें तो औद्योगीकरण अत्यन्त महंगा है। इसके कारण मजदूरों को पत्नी बस्तियों में पशुओं की तरह रहना पड़ता है। सरासर बगलों में काम करना पड़ता है। इससे उनके अपने नैतिक व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का अंश इतना बिगड़ जाता है कि वह असह्य हो जाता है और कभी तो टूट भी जाता है। समाज में खोरखार उपद्रव फूट पड़ते हैं। यह सब कारखानों के उत्पादन का ही परिणाम है। यह कीमत कारखानेदारों को नहीं समाज को चुकानी पड़ती है और वह बहुत भारी कीमत है।" वह धाने मिलाते हैं।

"और महापुरुषों के आर्थिक कार्यों की जांच करेंगे तो उनमें होने वाला जन-जन का अपार संहार भी कारखानों के उत्पादन के नाम पर ही सिखा जायगा।"

मध्य प्रदेस और बरार के औद्योगिक सर्वेक्षण-सम्बन्धी घने प्रतिवेदन में डॉ॰ कुमारप्पा लिखते हैं

केन्द्रित उत्पादन में दूर-दूर से माल मंगाना पड़ता है और उत्पादन को एक जगह केन्द्रित करना पड़ता है। इसके लिए परिवहन (मान गी पदावार होने) और उसके साधनों पर भी नियन्त्रण रखना जरूरी हो जाता है। इसका अर्थ है पूँजियों के जीवन और व्यवहारों पर संयुक्त। यह काम सामग्री व्यक्तियों के हाथ में नहीं दिया जा सकता। ऐसे निष्पक्ष के अर्थों में पैसे पर उत्पादन हुआ ही नहीं सकता। इसलिए यदि इन पद्धति में माल का उत्पादन करने में कोई संस्थापन है तो उसका कारण यह है कि ये संस्थानिर्माण करने का बोझ और पचास समाज पर डाला जाता है। इसलिए यह मानना भूलता है कि बड़े कारखानों में बना माल मम्ता है।

इसी कारण वपड़े के उद्योग का उत्पादन भिन्न गांधीवादी रहते हैं। "एक-एक बज की दृष्टि से देखेंगे तो जरूर मिलीं के कपड़ों की तुलना में सादी महंगी मनेगी। परन्तु यदि कुल मिलाकर और माँहों के दिन की दृष्टि से विचार करेंगे तो सादी के मुकाबले में दूसरी कोई चीज ठीक ही नहीं चलती इसी सामवायक और व्यावहारिक बात है।" इन्हीं प्राण

मिलों में साफ़ किये जायेवाले बाबलों के मुकाबल में हाथकुटे बाबल महत्व समझे पर मिलों के बाबलों से मनुष्य के शरीर को जो भुक्तान होता है उसका भी यदि हिसाब जोड़ा जाय तो हाथकुटे बाबल बहुत सामर्थ्यशाली साबित होंगे। मिलों के ठेकदार बानी के ठेक की बात भी ऐसी ही है। इसके प्रतिरिक्त बड़े कारखानों में बना मांस सस्ता पड़ता है उसका कारण केवल भीतरी और बाह्यी किरायतों या कमखर्ची नहीं है जो एक ही कमरू मांस बनाने से सम्भव है। इसके दूसरे घनेक कारण और सहूलियतें हैं जो राज्य और समाज द्वारा कारखानों को मिलती हैं और जो ग्रामीणों को नहीं दी जाती या मिल पाती। उत्पादन के लिए, कारखानों के लिए कच्चा मांस बड़ी तादाद में थोक-के-थोक खरीदा जाता है। इसी प्रकार तैयार मांस के थोक-के-थोक बेचे जाते हैं। इसमें नि मन्देह बड़ी सहूलियत और किरायत भी होती है। फिर पूंजी ऐस द्वारा किरायती दरों पर मांस का भेजा जामा सरकारी महावठाएँ, जो कारखानों को दी जाती हैं वे ग्रामीणों को नहीं दी जाती। परन्तु यदि सरकार ग्रामीणों को विज्ञान की मदद देकर व्यवस्थित रीति से संवर्धित करे और उन्हें भी इस प्रकार सारी सहूलियतें दे तो निश्चय ही वे बड़े उद्योगों का मुकाबला कर सकेंगे। सर बिक्टर सेमूय कपड़ा-उद्योग की पृथ्वी परिपक्ष के अध्ययन से। बर-बर में जलनेवाले करणों को बिजली की मदद पकचा दी जाय तो इस उद्योग का बहुत विकास हो सकता है, यह बताते हुए उन्होंने अपने अध्ययनीय भाषण में कहा था—

छोटे-छोटे (बिजली के) मोटरों से जलनेवाले हुलके बरणों के उद्योग के लिए इस देश में बड़ा भण्डार खोज है। एक छोटा-सा पूंजीपति इन तरह के कुछ करण और मोटर आसानी से खरीद सकता है और यदि सहका रिया के सिद्धान्त पर इन उद्योग को संवर्धित किया जाय तो मांस की कीमत और गुण दोनों बातों में यह जितनी भी देश को टक्कर दे सकता है।”

सर बिक्टर ने हममें पूंजीवाद के ढंग पर इन उद्योग को संगठित करने की बात कही है। यह ठीक नहीं। चीन की भांति बिजेन्ट्रीकरण की पद्धति में करण-उद्योग का सहकारी संगठन बनाया जा सकता है परन्तु सर बिक्टर ने कहा है कि बड़े उद्योगों की तुलना में इन छोटे मकानों द्वारा

बनाया गया मास कीमत और गुण में भी बराबर टिक सकता है। यह बड़े मार्के की बात है। हेनरी फोर्ड इस युग के बड़े-से-बड़े उद्योगपतियों में से एक रहे हैं। उन्होंने भी कहा है कि "आम तौर पर बड़ा बंध साम्राज्य नहीं होता।" जनता की सेवा और हित मुख्य बात है। यदि यह स्वीकार है तो बड़े-बड़े उद्योगों को इस प्रकार सारे देश में फैल जाना चाहिए कि जिससे उत्पादन में कीमत भी कम सगे और धन का बिखरन भी अधिक-से-अधिक लोगों में हो सके। इस प्रश्न के बंध-सम्बन्धी और अर्थ-सम्बन्धी पहलुओं पर श्री रिचर्ड वेग ने अपनी 'इकनॉमिक्स ऑन साइर' नामक पुस्तक में विस्तार से विचार किया है।

प्राणि-शास्त्र का प्रमाण

प्राणि-शास्त्र की दृष्टि से भी ग्रामीण समाज का पुनरुज्जीवन बहुत प्रतीत है। मास्बस को जनसंख्या की प्रतिबृद्धि का बड़ा डर था। परन्तु इन युग के प्राणि-शास्त्रियों और समाज-शास्त्रियों को भय है कि कहीं मनुष्य-जाति ही समाप्त न हो जाय क्योंकि पिछले कुछ दशकों से कई देशों की आबादी बराबर बढ़ती जा रही है। यह एक मानी हुई बात है कि शहरों में रहनेवाले जनमानसों की प्रजनन-शक्ति गाँवों के गरीब लोगों की अपेक्षा बहुत कम होती है। स्वयं एडम स्मिथ ने अपनी 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' पुस्तक में लिखा है 'संपत्ति जहाँ बिलासियों के काम-बिकार की बढ़ाती है वहाँ उनकी प्रजनन-शक्ति को वह सामान्यतया बढ़ाती है और अन्ततः मरने तक कर देती है। इसके कई कारण होते हैं। सबसे बड़ा कारण तो शहरों की बनी आबादी है। दूसरा कारण है मनी-रंजन के धन साधन। प्रत्येक बार ये काम-बिकार को रोकने का नाम कर जाते हैं। फिर शहरों में समाज का बाँधा बद्ध जाता है। कुछ उरका भी घनर होता है। वास्तविक उत्पादन मनुष्य-जीवन की भी धर्मों से-बाँध देता है जिससे काम-बिकार भी कुछ कमजोर हो जाता है। इंग्लैंड के विख्यात प्राणि-शास्त्री प्राध्यापक मास्बस हॉबसेन ने इस प्रवृत्ति का बड़ा गहन विश्लेषण किया है।

“गाँवों में बच्चे स्वाभाविक—प्राकृतिक वातावरण में रहते हैं। वहाँ

प्राणिमों और पौधों में ऽक्रमण की क्रियाएं देखते रहते हैं और वे उनके तत्त्वस्थानात्मिक प्राकृतिक घटनाएं बन जाती हैं। यह सब तो यह स्थानात्मिक और दैनिक जीवन से कुछ भिन्न व्यवस्था की एक घटना बन गई है। यंत्रों का प्रयोग और पावन-पोषण से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। यह सब के तमन-व्यवहारों पर इनका भी धर होता है।”^१

कुछ समाजशास्त्रियों पर मास्वस के विचारों का बड़ा प्रभाव है। वे मानते हैं कि यदि पूँजीवाद को नष्ट कर दिया जा सके तो जनसंख्या की समस्या कुछ-ब-कुछ हल हो जायगी। परन्तु जीता कि प्राध्यापक हाँगवेन कहते हैं केवल पूँजीपतियों के ही कम बच्चे नहीं होते। यह तो प्राकृतिक प्रौद्योगिकरण और उससे जुड़ी घनेक बुराइयों का परिणाम है। इसलिए स्वयं मनुष्य-जाति को मरने से बचाने के लिए प्राणि-शास्त्री अब 'गाँवों में नये बस्ती की योजना उठाने लगे हैं।

छेती और ग्रामीण जीवन

छेती और ग्रामीण जीवन की दृष्टि से छोटे-छोटे स्वायत्त ग्रामीण समार्यों की रचना करना कठिन नहीं है। पिछले दिनों छेती की कमा का अधाधारक विकास और प्रगति हो गई है। इसलिए अब सभी देश घनेक प्रकार की फसलें पैदा कर सकते हैं। जिनके लिए पहले उन्हें दूसरे देशों का मुह तकता पड़ता था। यही नहीं अब या एक ही देश के अन्दर उसके अलग अलग भाग भी वे फसलें उगाकर स्वायत्त हो सकते हैं। उन्हें अपने ही देश के दूसरे भागों का मुह नहीं देखना पड़ेगा। कमीफोनिया के प्राध्यापक गैरिक ने बताया है कि बीर मिट्टी के भी छेती हो सकती है। ग्रामीण बहु कोष प्रयोगा व्यवस्था में ही है, परन्तु यदि यह प्रयोग सफल हो गया तो छेती के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी क्रांति हो जायगी। उसके द्वारा कम परिश्रम से काफी-सी ग्रामीण में बहुत अधिक फल पैदा किया जा सकेगा। इस प्रश्न के अधिक अध्ययन के लिए पाठक डॉ॰ विमकोनम की 'नेशनल बैंड सिवेट होम' पुस्तक पढ़ें।

अमरीका के प्रसिद्ध समाज-शास्त्री मैक्स मरफर्ड अपनी 'टेकनिस्स एंड सिविलाइजेशन' और 'अन्धकार और सिटीज' नामक पुस्तकों में इसी

मतीजे पर पहुँचते हैं कि बड़ी-बड़ी धीर घनी आबादीवाले शहर अब पुराने धीरे घनाबस्त्यक होयेंगे। वे तो मानते हैं कि विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि अब हम चारे बेल में बाग-बगीचेवाले छोटे-छोटे शहर बना सकते हैं। उनमें छोटी-छोटी कारखाने-मुमा कुकानें हों जिनमें हर तरह की चीजें बनाई जा सकती हैं। ऐसे छोटे-छोटे कारखाने धीरे शहर समाज की दृष्टि से प्राबल्य आरोग्यदायक तथा उत्पादन की दृष्टि से बहुत लाभदायक सिद्ध होंगे। ग्रिन्थ ओपाटकिन ने भी अपनी 'कान्सेप्ट ऑफ़ वीड' और 'फील्ड पैक्टरीज एण्ड वर्कशॉप्स' नामक पुस्तकों में यही बात दसियों वर्ष पहले बड़े अध्ययन और खोज के बाद लिखी है।

अन्तर्राष्ट्रीय शांति

प्राणि-शास्त्र और समाज-शास्त्र के घनावा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की दृष्टि से भी उद्योगों का सहकारिता के सिद्धांतों पर विकसित पद्धति से संचालन जरूरी है क्योंकि बड़े पैमाने पर केन्द्रीकरण की पद्धति पर आसित कारखाने निश्चित रूप से बिदेसी बाजारों पर अधिकार करने की प्रवृत्ति पैदा करने हैं फिर इन्हें व्यक्ति बनाये या राज्य। इसमें राष्ट्रों के बीच अन्धानुन्ध हाड़ पैदा होती है जिसका नतीजा घावे-सीसे होता है महानाशकारी युद्ध। विद्युत् की सवियों का यही गुणदाई अनुभव है। पहले तथा दूसरे महायुद्ध का मूल कारण मुनाफे की यह अनियमित तुम्हा ही था। विद्यालय रूप के केंद्रीकरण में यह वृत्ति स्वाभाविक रूप से रहती है। सोवियत संघ का वर्तमान य जो अनुभव हुआ रहा है वह भी बड़ा चिन्ताजनक है। राष्ट्रसंघ में भी जाही बाजारों के बारे में सदस्य राष्ट्रों के बीच बड़ा गरम विवाद लगे हो गये हैं। स्वयं ब्रिटेन की भोक्तृता में भीतविरोध राष्ट्रों के बाजारों के बारे में हुई बहल जिस-जिसने पड़ी हागी उसकी घानें मूल गर् होयी। इमीतिंग गांधीजी अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-व्यवस्था के लगे विरोधी हैं। असाकि पहले ही बताया जा चुका है वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विरुद्ध नहीं है यदि वह इन राष्ट्रों की समीचीन करतों की पूर्ति करता हो और उनके पारम्परिक किर्तों का पोषक हो। परन्तु साम्राज्यों के वर्तमान संपत्तों के बीच यह तो समझद ही है। इमीतिंग गांधीजी

चाहते हैं कि भारत अपनी आर्थिक योजनाएं सान्ति और स्वावलंबन के सिद्धान्तों के आधार पर बनाये और अपने मांस के लिए संसार के बाजार पाने की आशा न रखे। 'जया प्राप साफ़ और पर नहीं बेच रहे हैं कि यदि भारत का औद्योगिकरण हो जाय तो इसके मांस की आपाने के लिए नये-नये मोर्कों में बाजार खोजने के लिए जाने कितने नाबिस्ताहों की हमें जरूरत होगी ? और इसमें हमें इंसैंड आपान घमरीका और इटली के बरिवाई बेहों और फौबों की होड़ में उठरना होगा। इससे हमारे बीच जो ईर्ष्या और द्वेष जागेंगे उनकी कल्पना-भाव से मेरा तो सिर चकच खाता है।' राष्ट्रीय संयोजन-समिति ने भी अपने उद्देश्यों की परिमाणा करते हुए लिखा है कि हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाना है और इस प्रयत्न में अपना आर्थिक साम्राज्य स्थापित करने के चक्कर में हमें नहीं पड़ना है। चीन के औद्योगिक सहकारिता-धाम्बोलन के साम बताते हुए निम्न वेस्स ने लिखा है—“यह जाह रसना बड़ा जरूरी है कि चीन स्वयं कहीं साम्राज्यवादी न बन जाय जबवा जापान के साम्राज्यवाद का शोबार। हाँ यदि उसका विकास प्रजातांत्रिक सहकारिता-पद्धति पर हो सका तो वह जतप टन जायगा। यदि वहाँ उद्योगों का विकास इस प्रकार स्वस्थ और संतुलित रीति से किया जा सके तो वह अपने देश के बाहर प्रतिस्पर्धा निर्माण न करते हुए अपनी खरीदने की शक्ति को बढ़ाकर अपने मांस के लिए घर में और बाहर भी मानता के आधार पर काफी विस्तार बाजार बना लेगा।”

अन्य प्रमाण-पत्र

इस प्रकार वृहोद्योगों पर आधारित आर्थिक साम्यवाद मांभीबायी की निरी शक्त नहीं है बल्कि अनेक दृष्टियों से वह एक वैज्ञानिक और व्यावहारिक नीति-दर्शन है। पिछले वर्षों में पश्चिम के अनेक महत्वपूर्ण घंटाकारों और विचारकों ने प्रत्यक्ष जपवा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सराहना और समर्थन किया है। ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा-योजना के प्रसिद्ध अनेता सर बिंलियम बीबरेज ने भारत के लिए भी इसी प्रकार की एक योजना की सिफारिश करते हुए लिखा है—“भारत के उद्योगों का भी पद्धति विकास हो सकेगा परन्तु ध्यान रहे कि उनकी सारे देश में फैला

इनका नेता या रेबी घोषी। जहाँ-जहाँ भी इन्हें मौका मिला सहकारिता के भावों पर इन्होंने छोटे-छोटे गुरीया उद्योगों का संयोजन शुरू कर दिया। पात्र में सहकारी संस्थाएं भी न थीं और भीर भीर मिथि बन गई हैं। इन्होंने भी न केवल बुद्धिमानों के धारणाओं के निरुद्ध प्रवेश रक्षा-अभियोगों का काम किया है बल्कि जब जर्मों की मार से देश की सारी धर्म-व्यवस्था टूटकर ढेर हो गई थी ऐसे समय में उपयोग की जरूरी चीजों के प्रवाह को जारी रखकर इन्होंने राष्ट्र के प्राण बचाये हैं। सारे भीर में इस समय हजारों छोटी-छोटी सहकारी संस्थाएं लगी हैं जो धार्मिक बुद्धि से स्वतन्त्र और स्वयंसेवक हैं और छोटे-छोटे यंत्रों की सहायता से अनेक प्रकार की ज्ञान चीजें कपड़े कानून सार्वजनिक सेवा सार्वजनिक इन्फ्रस्ट्रक्चर कोड़े की चीजें यंत्रों के भाग और औजार, जमड़े की चीजें इमारतों के काम की चीजें और फरनीचर धारि से बनाती हैं। ये औद्योगिक सहकारी समितियाँ बाल-मंदिर दिन और रात्रि की पाठ-शाखाएं, दवाखाने और खेल-कूद की संस्थाएं भी बनाती हैं। इन समितियों के बारे में सबसे धार्मिक-जनक बात है उनका मासिक उत्पादन। बताया गया है कि इन उद्योग-समितियों में जो पूजा लगी है उसके मुकाबले में इनका मासिक उत्पादन जो गया अधिक है। इसका कारण साफ़ कुछ है। फिर भी यह धार्मिक-जनक है। वे सहकारी संयोजन भीर के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं केवल कुछ के कारण नहीं बल्कि देश के प्राचीन औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी। जिस बेस्स मित्रता है— बहुत धर्म्यता और सोच-विचार के बाद भीर के उद्योग-धार्मिक हम लगीं पर पहुँचे हैं और ब्रिटेन तथा अमेरिका के बिचारकों की भी यही राय है कि ये औद्योगिक सहकारी समितियाँ भीर की उत्पत्ति के लिए न केवल प्राण बल्कि अधिष्ठा में भी अत्यन्त उपयोगी और व्यावहारिक साधन सिद्ध होंगी। "भीर में जल रही ये प्राणधान संस्थाएं इन कुछ और सामाजिक उत्पन्न-मुक्त के युग में बहुत महत्व का काम कर रही हैं। इनमें बिनाम की लूट मुआदम है। देश में जहाँ और जहाँ कुछ की मारकाट चल रही हो प्रजासत्ता की पद्धति की ऐसी संस्थाएं कायम करना अपने प्राण एक बहुत बड़ी बहादुरी का नाम है। सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन चाहनेवालों तथा भीर के

मनिय में दिलचस्पी रखनेवाले सेकड़ों विचारकों को यह देखकर बड़ा कौतूहल होता है।

चीन के इन 'थोरीमा उद्योगों' के बारे में मई १९४४ के 'एशिया और प्रमरीका' में एडगर स्नो ने यही राय प्रकट की है।

"ये संस्थाएँ न केवल युद्ध के अन्तिम दौर में चीन को सफलता दिला सकती हैं अपितु यदि उन्हें पूरा मौका दिया जाय तो वे अपने प्रयत्नों की आशा-अपेक्षा भी पूरी कर सकती हैं—अर्थात् चीनी समाज के लिए एक अच्छी आर्थिक नींव बना सकती हैं, जिसपर आन्तिमय तरीकों से भावी चीन के प्रजातन्त्र की इमारत खड़ी की जा सकती है।"

चीन की यह सहकारी प्रणाली भारत के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद और मूल्यवान है। निम्न वेब्स की इस पुस्तक की भूमिका यी अब्राहमसाल नेहरू ने लिखी है। उसमें इस विषय में कुछ लिखते हैं।

"चीन की भांति भारत के पास भी बहुत-सा मनुष्य-बल है। पूरी तरह और आब बिकार भोग भी बहुत है। हमें अपने देश की तुलना यूरोप के छोटे-छोटे देशों से नहीं करनी चाहिए। उनकी आबादियाँ तो बहुत कम हैं। वे बड़ भी रही हों तो भी ग़ज़ा हुआ उनका औद्योगीकरण बहुत कठिन नहीं है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसी कोई योजना सफल नहीं हो सकती जिसके कारण बेकारी फैलती हो या लोगों की शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग न होता हो। मनुष्यों के बारे में हम न भी विचार करें केवल पैसे का ही विचार करें, तो भी हमें ऐसी ही योजनाएँ बनानी चाहिए, जिनमें अधिक आदमियों को काम मिल सके और जिनमें बहुत उसम्मानभरे यन्त्र न हों। लोगों को एकदम बेकार रखने के बजाय उन्हें कुछ कम मजदूरी देनेवाला काम भी दिया जा सके तो वह नहीं से अच्छा है। कुछ बड़े कारखानों के उत्पादन की अपेक्षा बहुत-से छोटे-छोटे कारखाने बहुत अधिक सम्पत्ति पैदा कर सकते हैं।

आपान में

हम सब जानते हैं कि आपान में भी छोटे छोटे गृहोद्योग बहुत हैं। वहाँ ज़िन्म-जिन्म आकार के उद्योगों की स्थिति क्या है, इसके बारे में गुम्बर

इनका नेता या ऐसी आँसी। जहाँ-जहाँ भी इन्हें मौका मिला सहकारिता के आधार पर इन्होंने छोटे छोटे गुरीमा उद्योगों का संगठन शुरू कर दिया। आज ये सहकारी संस्थाएँ चीन का बीरब धीर निधि बन गई हैं। इन्होंने चीन के लिए न केवल कुम्हनों के प्राक्मणों के बिरुद्ध प्रयत्न रखा-यशस्वी का काम किया है बल्कि जब जर्मों की मार से देश की सारी धर्म-व्यवस्था टूटकर ढेर हो गई थी ऐसे समय में उपभोग की जरूरी चीजों के प्रवाह को जारी रखकर इन्होंने राष्ट्र के प्राण बचाए हैं। सारे चीन में इस समय हजारों छोटी-छोटी सहकारी संस्थाएँ जड़ी हैं, जो आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और स्वशासित हैं और छोटे-छोटे श्रमों की सहायता से अनेक प्रकार की खाद्य चीजें कपड़े कागज साबुन सेस काँच रासायनिक द्रव्य बनाए, मोहे की चीजें श्रमों के भाग और बीमार, कमड़े की चीजें दवाखानों के काम की चीजें और फरमी चर घादि वे बनाती हैं। ये औद्योगिक सहकारी समितियाँ जाल-अंधिर, दिन और राति की पाठ-सालाएँ, दवाखाने और खेल-कूद की संस्थाएँ भी बनाती हैं। इन समितियों के बारे में सबसे प्राथमिकतः बात है उनका आर्थिक उत्पादन। बताया गया है कि इन उद्योग-समितियों में जो पूँजी सबी है उसके मुकाबले में इनका आर्थिक उत्पादन तो बूना अधिक है। इसका कारण धायब मुक्त हो। फिर भी यह प्राथमिकतः है। ये सहकारी संगठन चीन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं केवल मुक्त के कारण नहीं बल्कि देश के मावी औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी। निम्न वेत्स लिखती हैं— 'अधुन प्रथमयन और सोव-विचार के बाद चीन के उद्योग-शास्त्री इस गतीजे पर पहुँचे हैं और ब्रिटेन तथा अमरीका के विचारकों की भी यही राय है कि ये औद्योगिक सहकारी समितियाँ चीन की उन्नति के लिए न केवल धायब बल्कि अविष्य में भी अत्यन्त उपयोगी और व्यावहारिक साधन सिद्ध होंगी। चीन में भस रही ये प्राणबाल संस्थाएँ इस मुक्त और सामाजिक उद्यम-पुषन के युग में बहुत महत्व का काम कर रही हैं। इनमें विकास की बूब गुजारण है। देश में चारों ओर जब मुक्त की गारकाट चल रही हो प्रजाउत्त की पद्धति की ऐसी संस्थाएँ कायम करना अपने-आपमें एक बहुत बड़ी बहादुरी का काम है। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन चाहनेवालों तथा चीन के

महिष्य में दित्तपत्नी रखनेवाले सैकड़ों विचारकों को यह देखकर बड़ा कींगुह्य होता है।”

चीन के इन 'थोरीला उद्योग' के बारे में मई १९४४ के 'एशिया और प्रमरीका' में एडमर स्लो ने यही राय प्रकट की है

“ये संस्थाएँ न केवल युद्ध के अन्तिम दौर में चीन को सफलता दिला सकती हैं अपितु यदि इन्हें पूरा मौका दिया जाय तो वे अपने प्रवर्तकों की आशा-अपभ्राण भी पूरी कर सकती हैं—घर्बाएँ चीनी समाज के लिए एक प्रबुद्ध आर्थिक नींव बना सकती हैं जिसपर आन्तिमय तरीकों से भावी चीन के प्रजातन्त्र की इमारत खड़ी की जा सकती है।”

चीन की यह सहकारी प्रणाली भारत के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद और मूल्यवान है। निम्न वेस्त की इस पुस्तक की प्रमिका भी जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। उसमें इस विषय में यह लिखते हैं

“चीन की भांति भारत के पास भी बहुत-सा मनुष्य-बल है। पूरी तरह और मात्र बेकार लोग भी बहुत हैं। हमें अपने देश की तुलना मूराप के छोटे-छोटे देशों से नहीं करनी चाहिए। उनकी आबादियाँ तो बहुत कम हैं। वे बड़ भी रही हों तो भी ग़ज़ा हुआ उनका औद्योगीकरण बहुत कठिन नहीं है। परन्तु हमारे यहाँ ऐसी कोई योजना सफल नहीं हो सकती जिसके कारण बेकारी फैलती हो या लोगों की शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग न होना हो। मनुष्यों के बारे में हम न भी विचार करें, केवल पैसे का ही विचार करें तो भी हमें ऐसी ही योजनाएँ बनानी चाहिए, जिनमें अधिक आय-मियों को काम मिल सके और जिनमें बहुत उन्नततमरे यत्न न हों। लोगों को एकदम बेकार रखने के बजाय उन्हें कुछ कम मजदूरी देना काम भी दिया जा सके तो वह नहीं स अचढ़ा है। कुछ बड़ कारखानों के उत्पादन की अपेक्षा बहुत-से छोटे-छोटे कारखाने बहुत अधिक सम्पत्ति पैदा कर सकते हैं।

जापान में

हम सब जानते हैं कि जापान में भी छोटे-छोटे गृहाद्योग बहुत हैं। वही भिन्न-भिन्न आकार के उद्योगों की स्थिति क्या है इनके बारे में मुम्बर

रुगीन ने अपनी पुस्तक 'येड इन जापान' में नीचे मिली तालिका दी है

सबसे छोटे उद्योग	१० प्रतिशत
उनमें कुछ बड़े उद्योग	२६
मध्यम कोटि के उद्योग	३५ "
बड़े उद्योग	२९ "

ये चीने कारखाने केवल उपभोग्य वस्तुएं ही नहीं बल्कि मात्र भी बनाते हैं। यह भी कहा जाता है कि जापान में उन यन्त्रों में से केवल १४ प्रतिशत यन्त्र बड़े कारखानों में बनते हैं। प्राध्यापक ऐसन अपनी पुस्तक 'जापान्स इन्डस्ट्री इन्स रिमेन्ट डबलपमेंट एण्ड कन्डीशन' में लिखते हैं

'इस प्रकार हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि जापान के उद्योगों में छोटे-छोटे यन्त्रों की बहुलता इस देश की मासिक वृद्धि का चिह्न नहीं है, बल्कि वे जापानियों की बुद्धिमत्ता को प्रकट करते हैं। अपने देश की वर्तमान परिस्थिति में किस प्रकार के यन्त्र लाभदायक हो सकते हैं, यह वे खूब जानते हैं। उस देश में पूंजी की कमी है और उसकी तुलना में उद्योगों में काम करनेवाले मजदूर अधिक हैं। मजदूरी की दरें भी कम हैं।

भारत में भी यही स्थिति है, परन्तु जापान में एक बात अच्छी नहीं है। चीन की भांति वे सबसेम जापान में सहकारिता के उत्थन पर नहीं चलावे जाते। वे बिजली के पूंजीपतियों के हाथों में है। वह कुरा है, क्योंकि वे कारीगर स्वयं मालिक नहीं बल्कि पूंजीपतियों के कब्जे में हैं और इनका वहां बुरी तरह शोषण हो रहा है।

दूसरे देश

मासिक-उत्पादकों की सहकारी संस्थाएं जस में भी है। इन्हें वहां इन्कोप कहते हैं। इन्होंने भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। सिडनी और बीट्रिक देश ने अपनी पुस्तक 'सोवियत कम्युनिज्म एन्ड सिमिलाइजेशन' में बताया है कि जून १९१६ से लेकर धीरे जासकर सन् १९३२ के बाद वहां का रीगर-मालिकों को जिस प्रकार पुन बिनाया और बढ़ाया गया है।

'इन सबस्यों को उनका है या मजदूरी नहीं दी जाती। अथवा में यह न ठेका है, न किसी प्रकार की नीकरी। कारीगर अपने मालिकों या यन्त्रों के भी

मानिक हैं और उनकी सहामता से वीरा किये जानेवाले माल के भी या तो भ्रमेने या सम्मिश्रित रूप से भाषिक होते हैं।

इंग्लैंड में भी सहकारी बंध के स्वयं चालित कारखानों को मोप अधिकधिक ऐसख करने लगे हैं। मर्का के दिनों में इस प्रकार के स्वधा सित विकेन्द्रित उद्योग-संस्थानों की उपयोगिता और लाभ की लोगों ने खूब देख लिया। इस प्रकार की मजदूर-संस्थाएं बेवड़ी भासानी से स्थापित कर लेते हैं और उन्हें सफलतापूर्वक बना ले जाते हैं। उनमें माल भी अधिक बनता है और वे बुधमनों के बमों की सिकार भी भासानी से नहीं हो सकतीं। जैसा कि निम वेस्स बताती है संयुक्त राज्य अमरीका में भी सह कारिता का आलाभन प्रगति कर रहा है। वहां केवल उपभोक्ताओं के ही सहकारी मण्डार और कर्ज देनेवासी सहकारी बैंक नहीं हैं, बल्कि वहां तो उत्पादकों ने भी अपने माल को बेचन के लिए सहकारी संस्थान बना लिए हैं। यही नहीं सहकारी केत सहकारी आरोग्य सदन और सहकारी बीमा संस्थाएं भी वहां काम कर रही हैं। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में बुद्धकामीन संकट की स्थिति का मुखाबसा करने के लिए सहकारी उद्योगों की मदद से रहे हैं। कहते हैं जर्मनी में बेकारी को कम करने के लिए हितकर को भी कितने ही गृहोद्योग शुरू करने पड़े थे।

उपसंहार

इस प्रकार सारे संसार का एक विकेन्द्रीकरण और गृहोद्योग और प्राचीन समाज-रचना की ओर हो रहा है। भारत में यह पद्धति बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थी। निश्चय ही उसे पुनरुज्जीवित करके उसमें प्राधु निक युग के अनुरूप आबंशक सुधार करके उसे फिर से जारी करने की जरूरत है। हमें पवित्रम की मकस नहीं करनी चाहिए। पिछले कई वर्षों से यह जो कांटे के बीज बोती रही है उनकी पूरी फसल अब बाड़ी है। भारत को अपने प्राधु निक विकास की योजना ऐसी बनानी चाहिए, जो उसकी प्रकृति और संस्कृति के अनुरूप हो। इससे दूसरे देशों को भी लाभ होगा। भीमती ऐनी बेसन्ट ने जो 'नॉमनवेस्य बाँव इण्डिया जिल' बनाया था उसमें इस प्रकार की एक योजना की रूपरेखा थी। गांधीजी भी इसी प्रकार की योजना चाहते थे, जिसका आधार प्रायोद्योग और प्राचीन समाज-रचना हो।

खण्ड २

योजना का विवेचन

गांधीबादी धर्म-रचना के आधारभूत सिद्धांतों का अब मैं विवर करना चाहता हूँ परन्तु इससे पहले यह उचित होना कि उस संबंध में जो आलोचनाएं हुई हैं उनपर विचार कर लें। स्पष्ट ही आलोचनाएं दोनों प्रकार की हैं—अनुकूल भी और प्रतिकूल भी। धार्मिक संयोजन का विषय ही ऐसा है। फिर इस पुस्तक में गांधीजी के विचारों की दृष्टि से संयोजन पर विचार किया गया है। यह विचार एकदम नया है इसलिए अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है। अर्थात् इसने कोई निश्चित रूप नहीं ग्रहण किया है बल्कि उसका सम्यक्तार विकास हो रहा है। धार्मिक नव निर्माण की योजना के रूप में गांधीजी के विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की विद्या में 'गांधीबादी योजना' शायद पहला ही प्रयत्न था। उसने बहुत-से लोगों के—बुद्धिमान लोगों के—विचारों को भी प्रेरणा दी है और उन लोगों को भी इसका अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जो अब तक गांधीजी और उनके विचारों से अपन-आपको दूर ही रखते हुए थे। इस प्रकार "यह पुस्तक एक विचारोत्तेजक धर्म का विषय बन गई।" ^१ डॉ॰ राजा कुमुद मुखर्जी ने लिखा है—“पिछले कई युगों से भारत में परिस्थितियों में से गुजर रहा है तथा आज उसकी जो स्थिति है, और उसकी जो जरूरतें हैं, उनको देखते हुए 'गांधीबादी योजना' से बढ़कर उसके लिए कोई योजना नहीं हो सकती। दूसरी योजनाएं भी हैं बहर परन्तु उनमें भारतीय परिस्थिति का सही आकलन नहीं है। इसलिए यहाँ की कठोर धार्मिक वास्त

विक्रताओं को वे स्वयं तक नहीं कर पातीं। कोई भी आर्थिक योजना तब तक पड़े देव धीर समाज की घसपी स्थिति को समझ लेना चाहिए। इसकी उपेक्षा करके दूसरे गलत धारारों को लेकर चलने से—दूसरों को नुकसान करने से—काम नहीं चल सकता यह सफल नहीं है। सफ़्टी प्री० एन० भी ऐसा ने तो इस योजना की प्रशंसा में एक छोटी-सी पुस्तिका ही मिल जाती। नाम है—“भारतरोड़ कारीगरों द्वारा गांधीवादी योजना का स्वागत। अपनी पुस्तिका के अन्त में यह मिलते हैं

‘बम्बई-योजना तो निरी एक पूँजीवादी योजना है जिसमें पसी बहानेवाले धनजीवियों का केवल शोषण और अपमान जरा पड़ा है। किसी योजना में केंद्रीकरण, केंद्रीय उत्पादन और मुद्राभर आश्वासियों द्वारा ही संचालन है उसका बाँचा साम्यवादी हो या पूँजीवादी उसके फल करोड़ों को गुलामी में डालनेवाले पिछारों का निवास है। गांधीवादी योजना ही एक ऐसी वस्तु है जो मुनाफ़ाखोरी से मुक्त हमारी बची-खुची शौचालिक स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र को बचाने के लिए बनाई गई है। विशाल जनता को समाजवादी धर्म-रचना की ओर ले जाने की भाँति जिसमें है। इसलिए तब तक व्यापक समर्थन प्राप्त है। इस महान धर्मवादी गांधीवादी योजना में जनता की जो यत्ना है, उसे कोई सरकार मिटा सकती संयोजन-समिति भी नहीं।

गांधीवाद और संयोजन

कुछ भालोचकों ने यह धारणा की है कि गांधीवाद का आधार विकेंद्रीकरण है जबकि संयोजन की धारणा तो केंद्रीकरण है। तब गांधीवाद और केंद्रीकरण कैसे साथ-साथ चल सकते हैं? इस धारणा के निराकरण के लिए सबसे भण्डा ला यही होगा कि स्वयं गांधीजी ने इसका जो जवाब दिया है वही मैं प्रस्तुत कर दूँ

“‘योजना’ शब्द के प्रयोग पर आपकी धारणा एक तरह से सही परन्तु मेरा क्या है कि उसमें कोई सार नहीं है। मैं नहीं मानता कि या किसी की धारणा केंद्रीकरण है। केंद्रीकरण की भाँति विवैक्यिकरण भी संयोजन में क्यों मददगार नहीं हो सकता ? ^१

गांधीवाद और राष्ट्रीयकरण

गांधीवादी योजना की मुख्य परीक्षा पर दूसरी प्राप्ति यह उब्जाई जाती है कि गांधीवाद के दो मुख्य सिद्धांत हैं—विदेशीकरण और राज्य का नियंत्रण कम-से कम। परन्तु उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के साथ इनका मेल नहीं बैठता क्योंकि राष्ट्रीयकरण में तो केन्द्रीकरण और राज्य द्वारा कठोर नियंत्रण अनिवार्य रूप से आवश्यक है। प्राध्यापक अचार्य मिश्रते हैं—
 “राष्ट्रीयकरण को गांधीवाद में का स्थान दिया गया है वह तो गांधीजी के अनुयायियों में जो समाजवादी या नये हैं उनके लिए रिमावत है। परन्तु इससे तो गांधीवादी सिद्धांतों का भंग होता है। चाप या तो राष्ट्रीयकरण अर्थात् समाजवाद का पूरी तरह विरोध कर सकते हैं या उसका स्वीकार कर सकते हैं। स्वीकार और विरोध दोनों एक साथ नहीं कर सकते।”
 इस प्राप्ति पर मैं गांधीजी का ही जवाब उद्धृत करता हूँ

भारत के गांधी के लिए जो उद्योग और दस्तकारियाँ प्राथमिक दृष्टि में सामंशिक हैं उनका अधिक-से अधिक विदेशीकरण हो और सारे देश के हित की दृष्टि से बड़े-बड़े और महत्वपूर्ण उद्योगों का केन्द्रीकरण अर्थात् राष्ट्रीयकरण हो। मेरा तो क्याल है कि इन दो कक्षों में जरा भी परस्पर विरोध नहीं है। आचार्य भीमभासायण ने जो जवाब दिया है वे वर्तमान काल के हैं। परन्तु जब हम समाजवादी आचार्य जब आज की भाँति सारी उद्योगों का महत्व बट जायगा और सामाजिकों का महत्व बहुत अधिक बढ़ जायगा तब माताकरण बहुत अधिक साफ हो जायगा और जिन बातों को आज आचार्य भीमभासायण और हम अन्धवीर तरह देख नहीं पाते हैं उन्हें हम तब स्वयं बहुत अन्धवीर तरह और साफ तीर पर देख सकेंगे। मुझे तो घाया है कि वह दिन बहुत दूर नहीं है। हम और चाप उसे अवश्य देख सकेंगे। आज तो इस विदेशी राज्य ने हर चीज पर रोक लगा रखी है परन्तु कल राज्य पर जनता का अधिकार हो जायगा—और वह एक बहुत बड़ी बात होगी जिसका असर हर चीज पर पड़ेगा। तब यदि आचार्य भीमभासायण की योजना (इस शब्द के प्रयोग के लिए काम करें) पर अमल होता है तो राज्य का नियंत्रण

पीछे में बहुत बड़ा भालूम होने पर भी वास्तव में वह बहुत कम—कम से कम—होगा। जरा कल्पना कीजिये कि इस देश के सात सात पाँच जागृत हो जाते हैं वे अपना भला-बुरा समझने लग जाते हैं और वे केन्द्रीय शासन का संभालन कर रहे हैं तब क्या स्थिति होगी? सहर तो बहुत कम है।^१

मैं इतना और जोड़ूँ कि गांधीजी के अर्थशास्त्र-सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन पश्चिमी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। वह तो पुराण-वन्धी और टकसाजी है। गांधीजी हमको एक नया और अधिक प्रच्छन्न रास्ता बता रहे हैं। उसकी आवश्यकता हम भारतवासी नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

क्या यह विचार मध्ययुगीन है?

गांधीजी के अर्थशास्त्र-सम्बन्धी विचारों की एक और आलोचना होती है जो बिंसी-पिटी है। कुछ लोग कहते हैं कि ये विचार पुराण-वन्धी और अर्थज्ञानिक हैं। गांधीजी तो हमें बीसवीं सदी से हमारे पुरखों के जमाने में वापस ले जाना चाहते हैं।^२ इस दलील का जवाब मैं गांधीवादी योजना में पहले ही दे चुका हूँ। परन्तु मैं फिर कहूँगा कि यदि भारी भारी शक्ति संघालित यन्त्रों की सहायता से बहुत बड़े पैमाने पर माल बनाने का नाम है। उसी वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रगति है—बाहेर वह पूँजीवादी पद्धति से किया जाय या साम्यवादी पद्धति से—तो मैं कहता हूँ इस प्रगति और विकास को दूर से ही हमारा लक्ष्य है, क्योंकि इससे तो समस्त संसार की जड़ ही हिल जायगी। गांधीजी न तो उनकी ये और न जिसे स्वयं-मुट्टा। वह तो विस्फुल्ल ध्यावहारिक आवश्यकता है। संसार के महापुरुषों में उन्होंने धायब सबसे कम पड़ा था परन्तु अपने देश की माड़ी को पहचानकर उसकी बीमारी पर सही औपनि की योजना करने की अग्रिम शक्ति उनमें थी। वह बहुत विद्वान नहीं थे। पश्चिम के अर्थशास्त्रियों के लिये अन्य उन्होंने धायब ही पड़े होने। परन्तु धायब जो

^१ 'दि हिन्दू' २० जून, १९४३

^२ 'कॉमर्स' १ फरवरी १९४३

समस्याएं संसार को इतना परेशान कर रही हैं। उनके लिए उन्होंने जो उपाय सुझाये हैं, वे प्रात्यक्ष व्यावहारिक हैं। यह कहना भूल है कि गांधीजी का सर्वप्रधान संसार को फिर से मध्यमवर्ग में ले जाने वाला है या हवा की बिजली में किस्ती से जाने जैसा कठिन है। मुई फिखर ने तो अपने अन्तर का यह दर्शन से कहा है 'आज संसार बीराहे पर लड़ा है और गांधी बत रहा है कि फिखर जाने में उसका कसबा है। वह कहता है कि 'अपने दिलों के अन्दर सर्पसाइत की रोशनी फैककर देखिये। तब हम देखेंगे कि गांधी के बताये मार्ग से ही हम एक इंसान को सोमा देने लायक स्वतन्त्रता और शांति प्राप्त कर सकते हैं।' और वह बिस्मृत नहीं है मुझे तो बरा भी लगने नहीं कि गांधीजी जमाने से पीछे नहीं बल्कि उसके अग्रगण्य हैं। यह भी सम्भव है कि पश्चिम के राष्ट्र गांधीजी के सावधानीपूर्वक आहिंसा और विकेंद्रीकरण के आदर्शों को पूर्व के राष्ट्रों की अपेक्षा अत्यंत अपना लें क्योंकि अब पश्चिम की सम्प्रदाय से उनका पेट भर गया है और वे उससे ऊब गए हैं। यदि ऐसा हुआ तो मेरे विचार में यह एक बहुत बड़ा दुःख की बात होगी परन्तु मोग कहते हैं कि वेस्मर का मान अपने देश में नहीं होता। वह कायद इस माफ़ोस्ति की ही एक मिसाल बन जाय।

हमसे कहा जाता है कि गांधीजी की दृष्टि वैज्ञानिक नहीं है। इसका हवाई जहाजों के इस युग में वह बैलगाड़ीवाली बातें करते हैं। डॉ. मेननार साहू राष्ट्रीय संयोजन समिति के अध्यक्ष और रॉयल सोसायटी के फ़ेलो हैं। उन्होंने कस की एक समारंभ भाषण देते हुए कहा कि विज्ञान सांख्यिकों से कहा था 'हमारी नजरों में गांधीजी के विचारों का उत्तम ही महत्व है, जितना आपकी नजरों में टॉस्टॉम का।'^१ परन्तु वे वैज्ञानिक भाषा जिस समाज-रचना की तरफ़ बीड़े खा रहे हैं उसका प्रतिनिधि एंठम बन है। उसकी अपेक्षा गांधीजी की बैलगाड़ीवाली सम्प्रदाय अन्त में जाकर मनुष्य-जाति के लिए अधिक नस्यागकारी सिद्ध होनेवाली है इस बात को वह भूल रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विज्ञान अपने आपमें कोई साम्य नहीं है। वह तो हमारे अन्तिम साध्य का एक साधन

^१ 'अपी एंड स्टैजिय' पृ. १४७

^२ 'गैर कन्सिडरिण्ग्स इन सोसियल रीमिड' पृ. ४४

मात्र है। अगर उस साम्य की प्राप्ति में वह सहायक नहीं हो रहा है तो उसका यह सारा विनाश हमारे किस काम का ? हमें याद रखना चाहिए कि केवल आकार-प्रकार और दिखावे में ही विज्ञान नहीं है। घमरीका के प्रसिद्ध यन्त्रशास्त्री और योथी-विचार के धर्मोदासी भी रिचर्ड प्रेग लिखते हैं—

“बाद्री में विज्ञान का निपट नहीं है बल्कि इसमें तो विज्ञान के एक बड़े प्रसिद्ध सिद्धान्त को सर्वशास्त्र के साथ बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक जोड़ दिया गया है जिसे वैज्ञानिक ‘सेकण्ड सो ऑफ थर्मोडायनैमिक्स’ के नाम से जानते हैं। हाथ-बरकी बुनकी बरबा और हाथ-करवा बहुत सीधे-सादे यन्त्र हैं और भारत की आज वैसी स्थिति है उसमें घुसरे यन्त्रों की अपेक्षा ये बड़े उपयोगी हैं। आप का इंजिन बमलेमो और घुसरे यन्त्र निःसन्देह अपने ढंग की अच्छी चीजें हैं परन्तु इनके गुणों की प्रशंसा करते-करते हमें ॥॥ नहीं भूल जाना चाहिए कि स्वयं मनुष्य-शरीर भी एक उत्पन्न आश्चर्यजनक और अप्रतिम यन्त्र है। उसमें बहुत शक्ति भरी पड़ी है। कुछ यन्त्र आकार प्रकार में बहुत बड़े होते हैं डेरों उत्पादन भी करते हैं। निःसन्देह इनका बड़ा भंडार होता है। उनके निर्माताओं के प्रति और उनके द्वारा जो इतना सारा काम हो जाता है उसके प्रति आदर भी है परन्तु ये एक बड़ी कठोर आनाज के समान हैं। एक जंदमी आदमी की भांति हम मनाही और कुसंस्कारी तो नहीं हैं जो इन्हें बेककर मारे डर के अपने आपको भूल जाता है। आखिर मनुष्य का दिम और आत्मा अधिक महत्व रखते हैं।”

इस अमाने में बड़े-बड़े पचासी यन्त्रों के बगैर भी हम यन्त्र-शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। यन्त्र-शक्ति को अगर खड़े पाज हम उत्पादन की बिदेगित कर सकते हैं और फिर भी उसकी संख्या कम नहीं होने पावनी। “जो लोग समझते हैं कि बड़े-बड़े यन्त्रों और कारखानों के बड़े पैमानेवाले उत्पादन के बगैर हमारा काम नहीं चल सकता वे भूलते हैं। वे विज्ञान की शक्ति को नहीं जानते।”^१ जेविस यमफोर्ड घमरीका के एक महान्

^१ इकोनॉमिक्स ऑफ़ यारर १९०५

^२ ऐंतिविक्स ऑफ़ यारर—अ बी० कृपावानी १ ११

समाज-शास्त्री हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक 'टेक्निकल एण्ड सिबिलिजेशन' तथा 'कम्प्लर रॉब सिटीज' में लिखते हैं कि ये बड़े-बड़े कारखानोंवाले सहर अब पुराने हो गये हैं। प्राधुनिक विज्ञान की दृष्टि से ये निकम्मे और हानिकर हैं। अब तो विज्ञान इतना आगे बढ़ गया है कि सारे देश में छोटे-छोटे सहर बगीचों के बीच में बस सकते हैं और वहां छोटे-छोटे कारखानों में सारे काम हो सकते हैं। उनमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने पायगी और "उद्योग तथा समाज के सार्वत्रिक और वैश्विक धारोप्य की दृष्टि से भी ये स्थान उत्तम होंगे।

फिर यह स्वातंत्र्य बना मेला भी बड़ा बलवत् है कि गांधीजी यन्त्र-आज के विरोधी थे। उनके विचारों को ग्रहण करने से जिनके स्वाधों को थोड़ा पहुंचने का अवकाश है सावधाने भोग जान-बूझकर उन्हें यन्त्र रूप में पैदा करते हैं। गांधीजी कहते हैं "यन्त्र-आज से मेरा कोई विरोध नहीं है। सर्व सामारण के 'साम के लिए बनाये जानेवाले हुए यन्त्र का मैं तो स्वागत करता हूँ। आज जो मजदूरी की बचत करनेवाले यन्त्रों की शोख का पापल पन सवार है उसके वह जकर विरोधी हूँ। जोपकों में रखनेवाले करोड़ों गरीबों के काम के बोझ को हल्का करनेवाले यन्त्र तो वह बुरा चाहते हैं। फिर गांधीजी ने यह भी बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया है कि राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण बड़े उद्योगों के यन्त्रीकरण और केन्द्रीकरण के भी वह विरोधी नहीं हैं। इतने पर भी सेवा के लिए बैलगाड़ीवाली समाज-रचना का और मध्ययुगीन धर्मनात्मिक सम्प्रदाय के हिमायती के रूप में उन्हें पेश करना सिवा बौद्धिक बेईमानी के—यह शक्य भी बहुत सीम्प है—और झूठ नहीं है।

असल में गांधीजी भारत के प्राचीन विकेन्द्रित अधोदीकरण में विश्वास करते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारी पुरानी वस्तु कारियों ने सर्वत्र में बड़ी पूर्णता प्राप्त कर ली थी। मसालों में सुरक्षित मिला के सब महीन-से-महीन भारतीय मलमल में अपेक्षित मिले हैं। रोम के सम्राटों के दरबारियों की बुहगिबा भारतीय रोम के अप्रतिम रोमवाले वस्त्रों से अपने सरीरों को सजाने में गौरव अनुभव करती थीं। टेक्निकल एक फरासीसी पर्यटक था। सनहरी सरी में वह कई बार भारत आया था।

उन दिनों ईरान का कोई मुहम्मदशही बेग भारत में ईरान के शाह का राजदूत था। इस बेग का एक किस्सा टैबनियर ने लिखते हुए कहा है कि बेग जब भारत से अपने देश को लौट रहा था तब मुगल बादशाह ने ईरान के शाह के पास भेट के रूप में सुतुरमूर्त के लोहे के भाकार का एक मारियम भेजा था, जिसके ऊपर जबाहरात बड़े हुए थे। शाह सेफ ने जब उसे कुस बाया तो उसके अन्दर एक पक्की रखी गिरी जो साठ हाथ लम्बी थी। इसकी मसमस हतनी महीन थी कि घापको पता ही नहीं लग सकता था कि घापके हाथ में कुछ है। विज्ञान के क्षेत्र में भी बातु के तथा रासायनिक पदार्थों के निर्माण में और वस्तुकारियों में भारतीयों ने आश्चर्यजनक प्रगति कर ली थी। भारत में वह इस्पात तैयार होता था जिससे इमिडगी चाकू, छुरियाँ तमबारे बनती थी। बिस्वी का प्रसिद्ध लोहे का स्तम्भ भी इसी इस्पात का बना हुआ है और डेढ़ हजार वर्ष पुराना है। अलौक-स्तम्भों की समक धीरे बिगनाहट को देखकर आश्चर्य के काटीमर भी ईरान हो जाते हैं। भारत का सारा निर्यात व्यापार भारतीय बहानों में ही होता था। इस प्रकार भारत की प्रगति धीरे कुससता के धीरे भी धनेक जबाहरात विनाश हो सकते हैं। परन्तु यह विषयान्तर होना। हमारा प्रस्तुत विषय तो यह है कि विकेशित सामोसोग धीरे विज्ञान तथा प्रगति में—जिसपर आज की बुनिया को इतना नाश है—कोई फरक नहीं है।

स्वावलम्बन क्यों ?

आजकल हम 'विवश सरकार' के सपने देख रहे हैं। इसलिए कहा जाता है कि आधिकार के लोगों की जाति हमें संकुचित दृष्टिबाना नहीं बन जाना चाहिए। यह तो पीछे से बानेबाना कदम है। वास्तव में अधि-से-अधिक स्वावलम्बन गांधीजी के स्वदेशीवाले सिद्धान्त का एक धर्म है। उनके इस स्वदेशी धर्म का अभिप्राय यह है कि हमें पहले उन्हीं चीजों और उन्हीं लोगों से सेवा लनी बेनी चाहिए, जो हमारे पासपास और नजदीक हैं। दूर के लोगों और चीजों की बात बाद में करें। गांधीजी के इस विचार की बड़ में मनुष्यता का विचार है। वे पड़ोसी की सेवा द्वारा देश की सेवा करने के पक्षपाती हैं। पहले उनकी बगार्द चीजें हन लीयें। सामाजिक

सम्बन्ध भी कायम करने हैं तो पहले उनकी सेवा करें। इसमें दोनों का कल्याण है और यों गहराई से देखना चाहें तो इसमें बड़ा बड़ा धर्म शास्त्र भी बराबर है। इस प्रकार के स्वावलम्बन और स्वदेशी धर्म के मात्तम से बेकारी की उलझनों से हम अपने-आप बच पाते हैं और परिवहन मृदा विनिमय वितरण व्यापक होकर करें का शोक कम-से-कम हो जाता है। विपुल धार्मिक दृष्टि से देखें तो स्वामीय स्वावलम्बन का सिद्धान्त स्वामीय बच्चे मात का और धर्म का वहींपर उपयोग कर लेने का प्रयास है। इससे हर चीज का व्यापक-से-व्यापक धर्म में अच्छे-से-अच्छा उपयोग हो जाता है। उपभोग्य वस्तुओं को दूर के बाजारों के लिए नहीं बल्कि स्वामीय बकरतों के लिए ही यदि हम पैदा करते हैं तो इससे उत्पादक व्यापारी और बाह्य किसीको किसी प्रकार का नुकसान नहीं हो सकता। वितरण व्यापक हो जाता है अकरत-मन्त्रों को काम के लिए मारे-मारे नहीं भटकना पड़ता और सबके बीच में अपने-आप सहकारिता पा जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि धर्म-विभाजन और उद्योगों को एक जगह ही केन्द्रित करना सामयिक होता है। स्वावलम्बन का सिद्धान्त इसके विरुद्ध जाता है। यह सच है कि सब उद्योग एक ही जगह रहे इसमें कारखाने के ध्वज और बाहर भी कई लाभ हैं। परन्तु हमें भूलना नहीं चाहिए कि इसमें अनेक बुराइयाँ भी हैं—जैसे इस्पात मजदूर-बस्तियों की गन्दगी बनी आबादी रोजी की प्रति शिष्टता (प्रिकेरिक्स इक्वीमिप्रियम ऑब एम्प्लॉयमेंट) और परिवहन के साधनों की असाधारण खींचतान। कुछेक अकाल प्राचीन और अनाब-सम्बन्धी नीति की समेटी की सिफारिशों में भी यही कहा गया है कि बार-बार अकालों से बचना है तो स्वामीय स्वावलम्बन की पद्धति ही अच्छी है। फिर स्वामीय स्वावलम्बन की दृष्टि से आखानों का बोना सामयिक है, व्यापार की चीजें और जन कमानेवाली फसलें बोना अच्छा नहीं क्योंकि यह अमाना हवाई धाकधनों का है। इसलिए आजकल तो अन्न वस्त्र और मकानों के सामान से सम्बन्ध रखनेवाले कारखानों को एक ही जगह में एकत्र कर देना समझवारी नहीं है। यदि उपभोग्य वस्तुओं के कारखाने कुछ इने-गिने पहरों में ही केन्द्रित कर दिये जाते हैं तो कोई

सब सारे देश की सर्व-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकते हैं। राजनैतिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से भी गांधीजी इस तरह कारखानों का कुछ विनती के सहरो में केन्द्रित कर देना परम्परा नहीं करते। इससे लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं के बारे में जाहूँक राज्य के मुहताब हो जाते हैं। मीका पड़ने पर सत्ता भी इसका बुरायोग कर सकती है—चाहे वह लोकतन्त्री हो या अधिनायकतन्त्रवादी परन्तु इस बारे में गांधीजी का बहुत आग्रह भी नहीं है। वह नहीं चाहते कि ये इतनी दूर-दूर भी हों कि आपस में सहयोग भी न कर सकें। गांधी में और उत्पादन-केन्द्रों में भी परस्पर सहयोग—समन्वय—तो होना ही चाहिए।

स्वामीय स्वावलम्बन में भी विवेक तो रखना ही होगा। जैसा कि मैंने गांधीवादी योजना में बताया है स्वावलम्बन के क्षेत्र प्रत्येक उद्योग के लिए अलग-अलग छोटे-बड़े होंगे। कुछ उद्योगों के लिए यह क्षेत्र केवल एक दो या चार ही गांव का होगा तो कोई उद्योग ऐसा भी हो सकता है जिसका क्षेत्र एक तहसील जिला या एक छोटे-से प्रान्त जितना बड़ा हो। अन्न बस्त्र या मकान के जरूरी सामान से सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग के क्षेत्र स्वभावतः छोटे होंगे। परन्तु मीक-यौक और आराम की चीजों के बारे में स्वावलम्बन का क्षेत्र चाहे प्रान्त हो या सारा देश।

हम अंतर्राष्ट्रीयता और विश्व-सरकार के बारे में बहुत बड़-बड़कर बातें करते हैं और गांधीजी के ग्राम-स्वावलम्बन को कबीलों की असम्यक्स्था का अवरोध कहकर उसकी विस्ती उड़ाते हैं, परन्तु पश्चिमी सभ्यता के प्रति अपने उस्ताह के प्रतिरेक में हम एक बात भूल जाते हैं। वह यह कि प्राथमिक क्षम में गांधीजी स्वावलम्बन की जो बात करते हैं, सो इसलिए कि लोक-धार्मिक और राजनैतिक मामलों में किसीके मुहताब न रहें और उनका शोषण न हो। परन्तु दूसरे प्रकार से उनके विचार बहुत व्यापक हैं। अंतर्राष्ट्रीयता से वह नहीं भागे हैं। केवल अपने गांव के ही नहीं बल्कि प्रान्त देश और समस्त संसार के मनुष्यों को आई समझन के लिए वह हमें कहते हैं। समस्त विश्व के साथ हमारा तात्कालिक हो। उस अनन्त के साथ तात्कालिक अनुभव करने के लिए यह जरूरी नहीं कि हम हमारी जहाजों में समासार उड़ते रहे। गांधीजी मानते हैं कि ग्राम और विश्व दोनों को हम

एकसाथ प्रेम कर सकते हैं। इनमें कोई विरोध नहीं है। संक्षेप में गांधीजी का आशय यह है कि आर्थिक बाधों में हमारा व्यवहार-सूत्र स्वामीय स्वायत्त सम्बन्ध हो किन्तु सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से हम 'नमुर्येव कुटुंबकम्' के आदर्श पर ही चलें।


आर्थिक दृष्ट्यता

गांधीजी के धर्मशास्त्र के विरुद्ध एक यह भी आपत्ति उठाई जाती है कि 'उद्योग के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ देश संसार के सक्ति-संतुलन को सहा बिगाड़ता रहेगा। अधिक विकसित देशों की आक्रमणकारी नृत्तियों के के लिए वह हमेशा एक प्रलोभन का काम करेगा।' उन्हे धर्म है कि विकेंद्रित धर्म-व्यवस्था से "बेध छाभी-छाभी-सा मयेबा और यह बाहर की विकसित औद्योगिक शक्तियों के लिए एक अवरुद्ध आकषण बन जायगा।"^१ इस व्यवस्था की रक्षा के लिए आप करों की सीवार बढ़ी कर सकते हैं, पर वह टिकेगी नहीं। तब "गांधीजी की धर्म-व्यवस्था की रक्षा के लिए आपको टेक हवाई जहाज और पनडुब्बियों की मदद लेनी पड़ेगी। मेरी गमनाय है कि गांधीजी के विचारों को समझने में वहां बुनियादी भूल हो रही है और इसीके कारण ऐसी-ऐसी आपत्तियां और अंकाएँ उठाई जाती हैं। गांधीजी ने यह कभी नहीं कहा कि हम उद्योगों में पिछड़े हुए रहें। इस मुद्दे को पहले एक बार में स्पष्ट कर चुका हूँ। वास्तव में यह है कि हम उत्पादन किस प्रकार बढ़ाना चाहते हैं? बड़े-बड़े बन्नों और कारखानों की मदद से डेरों चीजें बनाकर या इस प्रकार कि छोटे-छोटे धन्य घर-घर में फैल जाय और सारे देश के लोग काम करें और उत्पादन का डेर लगा दें? गांधीजी ने यह भी बहुत साफ तौर पर कहा कि देश में राष्ट्रीय महत्व के कुछ उद्योगों में बड़े यंत्रों से काम लिया जाय और उनमें बड़े पैमाने पर उत्पादन हो और राष्ट्रीय विकास के लिए वे आवश्यक हों। तो उसपर उन्हें कोई आपत्ति नहीं परंतु अर्थात्क रोज मर्ग की जरूरत की चीजें बनानेवासी दूसरे उद्योगों की बात है, वे तो सारे देश में फैले हुए हों और उन्हें सहकारी गृहोद्योगों के तौर पर

^१ 'वित्कनरी चीज व किता', पृ ५६

^२ 'जैमिना और जैमिनी' पृ ५१

ही बनाया जाय। मैं तो समझता हूँ कि इससे अधिक अच्छी और वैज्ञानिक दूसरी कोई पद्धति हो ही नहीं सकती। हम क्यों भुला बैठे हैं कि जापान तो यूरोपियों का घर ही है। देश के सम्पूर्ण औद्योगिक उत्पादन का ७४ प्रतिशत निर्माण वहाँ इन छोटे-छोटे और बीच के उद्योगों से ही होता है। क्या इन उद्योगों में जापान में कोई श्रम्यता पैदा कर बी और पश्चिम की शक्तियों ने उसे घर बनोया है? नहीं वहाँ तो इससे उल्टा ही हुआ है। विकेंद्रित उद्योगों ने वहाँ जादू का-सा काम किया और उसने दूसरे देशों के बाजारों को अपने मान से पाट दिया है। श्रम्यता जापान में नहीं पश्चिम के उन देशों में पैदा हो गई। जिनमें पारंपरिक औद्योगीकरण हो गया था। इसका कारण यह बोझिली और कर्चीली धर्म-व्यवस्था है, जिसका यूरोप और अमेरिका को इतना शोक है।

परन्तु जापानी हंग की विकेंद्रित धर्म-व्यवस्था में और गांधीजी के ग्रामोद्योग के सिद्धान्त में एक बुनियादी अन्तर है। जापान के छोटे-छोटे उद्योग वहाँ के प्रभावशाली पूँजीपतियों के हाथों में थे और सस्ती मजदूरी तथा कम पूँजी में काम बन जाता है, इस क्वाण से उन्होंने इन उद्योगों को गाँवों में फैला दिया था। इस पूँजीवादी औद्योगिक संयोजन ने व्यापारिक क्षेत्र में ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा को पैदा किया जिसमें ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ा हो गया। गांधीजी नहीं चाहते कि उनके इस ग्रामोद्योगों के संयोजन के द्वारा ऐसी हिंसक और धाकड़णकारी प्रवृत्तियाँ आँ। वह चाहते हैं कि यह औद्योगिक संयोजन ग्राम-समाजों के हाथों में रहे और वे स्थानीय स्वायत्त संयोजन के आदर्श को सामने रखकर इनका संयोजन सहकारी पद्धति से करें। इससे स्पष्ट है कि यह धर्म-व्यवस्था न तो देश में कोई प्राबिक श्रम्यता पैदा करेगी और न उसका  यह है कि अधिकतम देशों में घुसकर कोई वहाँ अपना साम्राज्य कायम करें।

राष्ट्र की रक्षा की दृष्टि से देखें तो भी गांधीजी की बताई धर्म-व्यवस्था में पश्चिमी हंग की केन्द्रित धर्म-व्यवस्था की अपेक्षा कम नय है और इस बात को ये राष्ट्र जब भी घब दूसरे महायुद्ध के बाद अनुभव करने लगे हैं। परन्तु हममें पहले उन्हें कितनी जबरदस्त हानि उठानी पड़ी रही जानते हैं। चीन का दशावस्था भी हमारे सामने है ही। जापान के आक्रमणों का

सामना करने में सहकारिता पर आधारित उसके छोटे-छोटे औद्योगिक संगठनों ने उसकी बड़ी सहायता की है। ये उसकी दूसरी रक्षा-यंत्रित बन गये थे। यदि वहाँ व्यापक रूप से यह विकेंद्रित संगठन नहीं होता तो चीन का सुरक्षा-संगठन ताश के महस की भांति हवा में कहीं-का-कहीं उड़ जाता। इसलिए गांधीजी की धर्म-व्यवस्था की रक्षा के लिए ठेक हुआई बहाज और पनकुम्भियां बुनाने की बिन्ता दयालु मित्रों को नहीं करनी चाहिए, बल्कि हमने यह तो कल्पना नहीं की है कि स्वतंत्र भारत को सदात्म फौजों की जरूरत ही नहीं होगी। गांधीजी नहीं चाहते कि भारत किसी भी देश का प्राधिक उपोपन करे। इसी प्रकार वह यह भी नहीं सह सकते कि कोई दूसरा देश भारत का प्राधिक उपोपन करे। अनुचित बाहरी प्रतिस्पर्धा से भारत के उद्योगों की जरूर रक्षा की जायगी। यही क्यों जब देश के घनत्व भी कारखानों में बने माल की अनुचित स्पर्धा से कामोद्योगों की रक्षा उसे करनी ही होगी। मुक्त व्यापारवाला सिद्धान्त अब पुष्पमा और इसलिए निकम्मा हो गया है। उसे गांधीजी नहीं चाहते। आज सबसे महत्वपूर्ण बात है संयोजन। वह बहुत सोच-समझकर बुद्धिमत्ता के साथ किया जाना चाहिए।

ग्राम-व्यवस्था 'अयोग्य' हैं।

कुछ लोगों का क्वास है कि ग्राम-व्यवस्थाएँ अभी इस समय नहीं हैं कि वे प्राथमिक राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से ग्रामों का विकास धक्की धरह कर उन्हें क्योंकि गाँवों में राज-शेप और आपसी भेदावे बहुत हैं। वहाँ तो अपनी बिम्बेदारियों का क्वास भी पैदा नहीं हुआ है। इसलिए वे आलोचक मानते हैं कि उद्योगों का विकेंद्रीकरण करने से बड़ी व्यवस्था पैदा हो जायगी और कुछ भी प्रकट नहीं हो पायगी। परन्तु इसका जवाब बहुत सीधा-सादा है। गाँवोंकी अपनी ह्रासत की जानकारी बिना गांधीजी को है उतनी और किसी को नहीं है। उन्हें इन लोगों का पता न हो ऐसी बात नहीं है। परन्तु अपनी समझ तो यह है कि हम देश का निर्माण ठेक नीचे से करना चाहते हैं या अपनी सारी योजनाएँ समाज पर केवल ऊपर से लादना और कोपना चाहते हैं। यदि हम लोकतन्त्र को बचाना चाहते हैं

तो हमें उसे अधिक-से-अधिक विवेक्षित करके छोटे-छोटे लोगों में स्वाय-
सम्भी बनाना होगा। केवल दो बातों का ध्यान रहे—राष्ट्र की सुरक्षा में
आप न आने और सामाजिक जीवन असम्भव न हो पाय। लोकतन्त्री
समाज का आधारभूत सिद्धान्त यही है कि उसमें व्यक्ति और समाज दोनों
का दारिद्रिक बौद्धिक माननात्मक और आध्यात्मिक विकास पूरी-पूरी तरह
हो। समाज की छोटी-छोटी इकाइयों के हाथों में सत्ता छपी जायगी—
भले ही आप यह कम्पस करें—तभी उनमें नागरिक जिम्मेदारी की भावना
का विकास होगा। जबतक आर्थिक और राजनैतिक सत्ता किसीके हाथ
में नहीं होगी नागरिक जिम्मेदारी का विकास वहाँ हो ही नहीं सकता।

यह सच है कि कर्तव्यों का स्वान पहले है। कर्तव्यों के बगैर अधिकार
नहीं दिये जाने चाहिए, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि जबतक कुछ
अधिकार नहीं होंगे कर्तव्य की भावना का उदय ही नहीं होगा। अंग्रेज
हमसे क्या यही कहा करते थे कि हम अभी आजादी पाने के योग्य नहीं हैं।
परन्तु हमने इसके जबाब में उनसे यही कहा कि "सुराज्य भी स्वराज्य
की बराबरी नहीं कर सकता।" हमें भूल करने की भी आजादी होनी
चाहिए। इसके बगैर कोई स्वायी प्रगति कर ही नहीं सकता। आखिर
विश्वास करने से ही विश्वास बढ़ता है। यदि हम गाँवों का विश्वास नहीं
करेंगे तो वे भी हमारा विश्वास नहीं करेंगे और गोरों की भाँति कामे भ्रात-
मियों का बोझ होने के ठेकेदार होने का बाधा करनेवाले हम होते कौन हैं ?
इस प्राचीन युधि में रहनेवाले करोड़ों निवासियों में स्वराज्य का अर्थात्
अपना शासन-अवगुण्ड कर देने की शक्ति बीरे-बीरे पैदा करनी है तो
गाँधीजी के अग्रतिम नेतृत्व में हमने जो आर्थिक और राजनैतिक सत्ता
प्राप्त की है उसे जनता में फैलाने के सिवा इसका दूसरा कोई उपाय ही
नहीं है।

गाँधीजी की यह इच्छा कदापि नहीं थी कि भारतीय संघ-राज्य में गाँव
एक-दूसरे से बिस्कुस धन्य पड़े रहें और आपस में कोई सम्बन्ध न हो। यह
न तो सम्भव है और न इष्टकर ही है। महाभारत कौटिल्य के धर्मशास्त्र
मनुस्मृति महाभारत और शुक्नीतिसार में जिन छोटे-छोटे ग्रामीण प्रजा-
तंत्रों का उल्लेख हम पाते हैं वे एक राष्ट्रीय संघ-राज्य में परस्पर बड़ी

है। यह कहते हुए उन्हें भीतर से शायद ईर्ष्या भी हो रही होगी परन्तु गांधीजी नहीं चाहते कि भारत अपने यहाँ इस प्रकार का भौतिक विकास करे।

जैसा कि पण्डित मेहता ने कहा है—“गांधीजी नहीं पसन्द करते कि हम अपने भौतिक और साम्प्रतिक मूल्यों को छोड़कर अपने जीवन के स्तर को और विकास की सामग्रियों को इस प्रकार लगातार बढ़ाते ही जाएँ।”^१ इसीलिए तो बड़े पैमाने पर उत्पादन करनेवाले बड़े-बड़े कारखानों की वह बुद्धि नहीं चाहते फिर वे पूँजीवादी व्यवस्था में हों या साम्यवादी व्यवस्था में। वह निश्चित हैं

“मैं मानता हूँ कि स्वतन्त्र भारत मुसीबतों में पड़े हुए इस संसार के प्रति अपना कर्तव्य एक ही प्रकार से प्रकाश कर सकता है। वह इस तरह कि वह अपना जीवन सादा और उच्च बनावे किसीसे झगड़ा न करे, शान्ति से रहे और अपने भोपड़ों के जीवन को ही विकसित करे। संतान की पूजामनुष्य को बेगवान बन्नों का मुनाम बना देती है। फिर विभाव में उच्च विचार था ही नहीं सकते। जीवन को उच्च बनाने से ही उसमें कुछ सोमा और सौंदर्य आ सकता है।”^२

संक्षेप में कहें तो गांधीजी केवल रहन-सहन को ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष जीवन को ऊँचा उठाना चाहते हैं। एक मनुष्य के पास अपार सम्पत्ति है परन्तु वह बुद्धि-सूय है और आत्मा को जानता ही नहीं तो उनके राम-राज्य में उसे कोई नहीं पूँकेगा क्योंकि वह कभी समझ नहीं देगा कि तीनों लोकों के राज्य के लिए भी कोई अपनी आत्मा को छो दे। प्राध्यापक कुमारप्पा जय भी पसन्द नहीं करते वे कि किसी जीवन-स्तर को ऊँचा और किसीको नीचा कहा जाय। भौतिक साधनों पर आधारित जीवन के लिए ऊँचा और नीचा नहीं बल्कि ‘सादा’ और ‘अटिल’ शब्दों का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा। ‘ऊँचा’ और ‘नीचा’ शब्दों का प्रयोग जीवन के लिए करना अधिक सही होगा।

पश्चिम के प्रगतिवाद की दृष्टि से इस प्रश्न को देखें तो भी एक सीमा से अधिक जन को एकत्र करना जन के उपयोगिता-ह्रास-नियम के (जो ग्राम

१ ‘दिल्लीसी जॉर्न इल्यूमिनेट’ फरवरी संस्करण पृ० ४८५

२ ‘हरिकल १ सितम्बर १९४४

निर्मित (यूटिलिटी) के अनुसार धन का इस्तेमाल और हानिकार होता। एक ही देश में और अन्य देशों के बीच भी धार्यों का असमान होना धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों (जो धर्म ईश्वरमानिष यूटिलिटी) के अनुसार अनिष्ट और अवेधानिक है। इसी प्रकार समाज के हित में भी यह उचित नहीं कि लोग अपनी जरूरतों और बिलास-सामग्री को सवाटार बढ़ाते रहें और उसपर कोई नियन्त्रण न करें। इसलिए कुछ धर्मशास्त्र की दृष्टि से भी हमारा धार्य भी होना चाहिए कि “जबतक सबकी जरूरतों की पूर्ति नहीं हो जाती कोई बिलास की सामग्री की इच्छा न करे। यह नियम केवल एक देश या राष्ट्र के लिए नहीं बल्कि संसार के समस्त राष्ट्रों के लिए लागू होना चाहिए। यदि हम इस नियम को स्वीकार कर लें तो गांधीजी का साधे जीवन का धार्य बहुत आवश्यक और उपयोगी सिद्ध होता।

गांधीजी की इच्छा यह कदापि नहीं कि भारत या दूसरा कोई भी देश दरिद्रता या अभाव का जीवन बिताये। अपने देश के साधे पैट और मंगे निवासियों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करने के लिए वह कुछ जरूर कर एक पंचा पहनकर रहते हैं। परन्तु सारा देश हमेशा पंचा पहनकर रहे और अपने जीवन को इसी प्रकार काम से यह उनकी अपेक्षा नहीं है। वह तो चाहते हैं कि हर मनुष्य को संतुलित और पोषक जीवन शरीर की रक्षा के लिए पर्याप्त कपड़े और रहने के लिए स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद और हवादार मकान प्रदाय मिलें। एक दिन हम चर्चा कर रहे थे कि उनकी कल्पना के स्वराज्य में मनुष्य का न्यूनतम जीवन-स्तर कैसा होगा। तब उन्होंने कहा था, दूसरी योजनाबारी में इस बारे में जो कल्पना की है उससे मैं तब भर भी कम नहीं चाहूंगा। परन्तु वह नहीं मानते कि ऐसा जीवन-स्तर हमारे संयोजन का धार्य हो। मनुष्य के पुन विकास के लिए वह एक साधन-मात्र माना जायेगा। साधु का धर्म धारस्य दरिद्रता और नैकापन नहीं। उसका धर्म तो है धर्म प्रकार के विचार और जीवन की एक दृष्टि। अपने कल्पनामय भारत का गांव कैसा होगा इसका विचार भी करते हुए वह निश्चिंत हैं।

“जब हमारे गांव पूरी तरह से निश्चित हो जायेंगे तब तबमें क्या

जब चारों तरफ राजनैतिक सफल-पुनर्जनन मचती थीर प्रस्थिरता या शांति उस समाज इन संस्थाओं के संरक्षण में अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को रक्षा करता हुआ शान्ति से रह सकता था।^१ राजा इन पंचायतों से केवल जमीन का नयान और राज्य-कर वसूल कर लिया करते और तमाम स्थानीय बातों के प्रबन्ध में वे संस्थाएँ स्वतन्त्र होती थीं। सर जार्ज बर्नार्ड्स ने लिखा है—
 “भारत जितनी न्यायिक और राजनैतिक कान्तियों में से युद्धरा है उतना संसार का कोई देश नहीं गुजरता है। परन्तु इन सबके बीच ग्राम-पंचायतें अपनी पूरी शक्ति से काम करती रही हैं। जमीन के मार्ग से सीनिबब सीक, सारमेन अफगान युनक और मराठों ने धाकर अपने राज्य वहाँ कायम किये। इसी प्रकार समुद्र के मार्ग से पुर्तगीज जब अंगरेज फ्रांसीसी और डेन एक के बाद एक आये और उन्होंने भी अपने राज वहाँ कायम किये। परन्तु इनके आने-जाने का इन पंचायतों के कार्य पर कोई असर नहीं हुआ। समुद्र में आने-जाने के ज्वार-भाटे से अप्रभावित बहानों की तरह वे प्रविचलित रही।”^२

परन्तु विधि की दृष्टि कुछ और ही थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रति और विवेकपूर्ण जालन ने इन ग्राम-पंचायतों को बीरे-बीरे छोड़ दिया। पूरे गाँवों से इकट्ठा जगान लेने के स्थान पर अपने रैबतबाटी—हुर किछान से सवान लेने की पद्धति—विचारपूर्वक जारी कर दी। पंचायत प्रथा पर यह बचाव था। इसके साथ-साथ न्यायदान और शासन-प्रबन्ध से सम्बन्धित सारे अधिकार भी पंचायतों से छीन लिये गए। फलतः पंचायतें पूरी तरह निष्प्रभाव कर दी गईं।

सर हेनरी मेन ने अपनी पुस्तक ‘विभिन्न कम्युनिटीज इन दि ईस्ट एंड दि वेस्ट’ में लिखा है— ‘भारत की ग्राम-पंचायतें मृत नहीं जीवित संस्थाएँ थीं।’ बेडन पंडित ने ‘इंडियन विमेज कम्युनिटी’ में इनका विस्तृत विवरण दिया है। प्राध्यापक अजितेकर ने ‘हिस्ट्री ऑफ विभिन्न कम्युनिटीज इन वेस्टर्न इंडिया’ पुस्तक में हमारी पंचायतों की कार्यपद्धति का भीमती विवरण है। परन्तु इस विषय का सबसे ज़रतम ज्ञान तो डॉ॰ राजाजुमुव मुन्शी

^१ ‘कोल्ड गलैड इन कन्टिनेंट इंडिया’—राजपुस्तक मुन्शी ५ ।

^२ ‘इण्डियन विमेज कम्युनिटीज’ पृ० ३३३

का 'डेमोक्रेसीज ऑफ दि ईस्ट' कहा जायगा।

भारत के इन ग्रामीण जनतन्त्रों के संगठन का सविस्तर वर्णन करना इस पुस्तक में सम्भव नहीं। मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि स्वायत्त शासन की इस ग्रामीण संस्था का विभाष विविध शासन के बुरे-से-बुरे कामों में से एक है। प्रंगरेजों ने यहाँ अपने हथ का स्वायत्त शासन स्थापित करने का यत्न करके दिया है, परन्तु वह भीज विधेयी है, भारतीय नहीं। इसी कारण वह कुरी तरह असफल रही। जैसा कि डॉ० ऐनी बेसेन्ट ने लिखा है, "अधिकारी पुराने नामों का रहने बैठे हैं। परन्तु पुरानी पंचायतों का चुनाव तो स्वयं गाँवों के बृहत्तर करते थे और पंचायतों गाँव की जनता के प्रति जिम्मेदार थीं। परन्तु इन नई पंचायतों के पंच तो सरकारी अधिकारियों के प्रति जिम्मेदार होते हैं। पहले की तरह लोगों के प्रति नहीं। अब तो इन प्रमुखों को कुछ रखना इनके लिए धार्मिक सामवायक होता है।"

हम मानते हैं कि प्राचीन ग्राम-पंचायतें एकदम निरर्थक नहीं थीं फिर भी स्वायत्त शासन और सच्चे प्रजातन्त्र की दिशा में यह एक घनूठा प्रयोग था। राज्यकम जो एक ही स्वाम पर सत्ता का धारणिक केन्द्रीकरण हो गया है उसके कारण नीचे सामाजिक जीवन नाम की वस्तु ही नहीं रह गई है और इसके बहो का राजनैतिक जीवन निष्फल और मन्त्रबत बन बन गया है। फिर व्यक्ति और समाज घबरा राज्य के हित बचन-पर-कदम टकराने लग गये हैं। लेकिन भारत की पंचायत-व्यवस्था में इन परस्पर-विरोधी हितों में सफलतापूर्वक समरसता प्रदान कर दी गई और स्थानीय सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन को मातृवीय और निर्माणकारी बना दिया गया। जैसा कि आचार्य विनोबा भावे ने लिखा है, "इन ग्राम-सभाओं में हर आदमी अपने मन का राजा था और फिर भी अपने राज्य ग्राम भाइयों के साथ वह घटूट बन्धन में बंधा हुआ था।" इसमें जहाँ हर व्यक्ति को अपना पूरा विकास करने की स्वतन्त्रता थी वहाँ वह इस छोटे-से राज्य का

१ 'दि इन्स्टिट्यूट इन्स्टीट्यूट्स एंड एथीक ऑफ दि ईस्ट' में था बी के. सरकार ने लिखा है कि मध्यम में ग्राम-सभाओं को 'पंचायतों' कहा गया था।

२ 'इतिहास : भारत और बी' पृ. २४

३ 'ग्राम-सभा' (मिरी) पृ. ४७

एक जिम्मेदार और उपयोगी सदस्य भी होता था। ग्राम-सभायतों में राजनैतिक सत्ता का जो विकेंद्रीकरण होता था वह स्वभावतः पश्चिम के विकेंद्रीकरण और सत्ता के विभाजन से विस्तृत दूसरी प्रकार का था। भारतीय विकेंद्रीकरण में काम का तथा प्रवेश की बात का भी क्याल होता था जिससे समाज में संतोष और राजनैतिक जीवन में प्रेरणा बनी रहती थी।

भारत की प्राचीन ग्राम-सभायतों उन बहुत-से लोगों से भी मुक्त होती थी जो प्राधुनिक प्रजातन्त्री सरकारों में पाये जाते हैं। प्राधिक प्रत्येक वंश ही नहीं हो पाया था। इसलिए रिस्वतजोरी और भ्रष्टाचार के लिए नहीं समयम कोई नुजाइश नहीं थी। संगठित और आकांक्षक पूंजीवाद भी पैदा नहीं हुआ था इसलिए इस लोकतन्त्र के उसका मुक्तम बम बाने का बहुत ही पैदा नहीं हुआ था। चुनाव-क्षेत्र छोटे-छोटे थे। इसलिए चुनाव प्रायः सर्व-सम्मति से और बड़ी स्वामयिकता से हो जाते थे। गांव के बिम बड़े-बूढ़ों के प्रति सबके हृदय में आदर होता थे बिना किसी परेशानी के बड़ी आसानी से चुन लिये जाते थे और प्रचार में एक पाई भी लचक करने की जरूरत नहीं होती थी। विकेंद्रीकरण अत्यंत व्यापक होने के कारण और बासन स्थानीय होने के कारण ग्राम-सभायतों में काम की भीड़ भी अधिक नहीं होती थी। इस प्रकार भारत की यह प्रजातन्त्री पद्धति अत्यंत कार्यक्रम भावात्मक चक्रम और सहसक थी, जबकि प्राधुनिक लोकतन्त्र अधिकतर में अप्रत्यक्ष प्रेरणाहीन समावात्मक निष्फल और हिंसक है। इसलिए यह उचित होगा कि हम अपनी ऐसी संस्थाओं को ही पुनर्जीवित करें और उन्हें ही को स्वराज्य की सासन-पद्धति का आधार बनायें। डॉ० राजकमल मुकुर्जी ने ठीक ही कहा है कि पश्चिम की राजनैतिक पद्धतियों की नकल करने की अपेक्षा भारतीय पद्धति का विकेंद्रित लोकतन्त्र न केवल हमारे लिए अधिक अनुकूल और जीवनदायी सिद्ध होया बल्कि यह मानव-जाति के इतिहास में एक मुख्यतम वेग होगी जो आज पश्चिम की आकांक्षक सत्ताओं के और बड़े-बड़े साम्राज्यों की विभिन्न और उज्ज्वल मरी हूरकतों से परेशान है। डॉ० मुकुर्जी आगे लिखते हैं

“भारतीय पद्धति समाज के लिए एक नये प्रकार के राजनैतिक यन्त्र का

राजनैतिक पहलू

भाषा बन जायदी जो विभिन्न स्थानीय कार्यकारी दलों से अपना मेस बैठा मेसी और फिर वर्तमान संसद-यद्धति प्रचलन रोमानो-ट्यूटोनिक शासन-यद्धति की अपेक्षा अधिक सटीक-जनक शासन-यन्त्र संसार को प्रदान कर सकेगी। यह सामाजिक और राजनैतिक प्रयोगों का युग है। यद्यत् पूर्वी एशिया की आठवीं और समन्वयात्मक सहज बुद्धि के आधार पर की गई रचना इस युग के इन प्रयोगों के लिए सचमुच बड़ी समृद्ध और मूल्यवान सामग्री प्रदान करेगी। आवश्यकता इस बात की है कि एशियावासियों का यह वर्तमान बौद्धिक और नैतिक प्रयास मान्य जारी रहे। प्रायः तो यन्त्र के समान यह और खोपन करनेवाले शासनतन्त्र के संस्थापक निम्नों में मान्यता बड़ी पड़ी हुई है। प्रायः सबसे अधिक जबरन इस बात की है कि किसी नये सिद्धान्त के आधार पर शासन-विधान बनाये जायें जिससे मनुष्य और उसके सम्बन्धों को नये स्वाभाविक और तथीन दलों की तरह मोड़ा जाय ताकि वह अपनी बुद्धि और गुणों को अधिक मुक्त रूप से प्रकट कर सके।^१

विकेन्द्रीकरण का अर्थशास्त्र

प्राचीन समाजवाद में बहुत लाभ है परन्तु देश को छोटे-छोटे विकेन्द्रित सहकारी मंडलों में संगठित करने में भी सम्पत्ति के समान-वितरण में बड़ी मद्दत मिल सकती है। प्रायः का पूँजीवादी समाज जिसके अन्तर उत्पादन के साधन पूँजीपतियों के हाथ में रहते हैं संसार में स्थायी शान्ति और समृद्धि लाने में असफल सिद्ध हुआ है। दूसरी तरफ समाजवाद ने पूँजीपतियों को बड़ी निर्ममता के साथ उखाड़ फेंका है। इस के साम्यवाद ने उत्पादन के साधनों पर अधिकार करके अपनी जनता के रहन-सहन का स्तर जबरन ऊपर उठा दिया है परन्तु वह भी कोई निर्दोष बरदान नहीं है। उसने संयोजन के जो महान यन्त्र खड़े कर दिये हैं उनके कारण बड़ा साधारण मानव या तो जो गया है या यग्नबद्ध बड़ बन गया है। इसके प्रतिरूप इस ने भी शास-यास के देशों में अपने तैर फैलाना शुरू कर दिया है। उस का उद्देश्य सायब ऊँचा भी हो परन्तु अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में खोबिपत इस की कार्यवाहियों का देगकर हम निश्चित नहीं रह सकते। साम्राज्यवाद

बाहे पूंजीवादी देशों का हो या उस का हम उसे मजदूर नहीं मानते । बड़े पैमाने पर र्घपति का राष्ट्रीयकरण हो और साथ ही वहां सत्ता का केन्द्रीकरण हो उसके प्राक्रमणकारी और साम्राज्यवादी बनने की बड़ी संभावना रहती है । इससे हम न्याय पर आधारित नई समाज-रचना की भासा नहीं कर सकते जिसके अन्दर छोटे-बड़े सभी देशों को शान्ति स्वतंत्रता क्रमशः का प्राप्तासन मिल सकता हो ।

तो फिर उपाय क्या है ? विकेंद्रित ग्रामोद्योगोंवाली पद्धति ही एकमात्र रास्ता बता सकती है । भारत की ग्रामीण व्यवस्था में एक संयुक्त अर्थ-रचना का विकास हो गया था जिसमें स्वतन्त्र व्यापार और पूरी तरह नियन्त्रित व्यापार हम दोनों ओरों को जोड़कर एक मध्यम मार्ग को ग्रहण किया गया था । अनेक प्रयोगों के बाद पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच यह सुनहरा रास्ता उन्होंने बूझ निकाला था । बेटी के क्षेत्र में भी उन्होंने एक ऐसी मार्ग सहकारी पद्धति बूझ निकाली थी जिसके अन्दर सभी ओर नयी-नयी के शोषण की आवृत्ति ही कोई मुंजाहस रह जाती हो । जैसा कि गांधीजी कहा करते थे उस पद्धति में उत्पादन बितरण और उपयोग सब साफ-साफ होते थे । कारीगरों के घरों में या घरों के समान ही छोटे-छोटे कारखानों में स्वामीय और सामाजिक उपयोग के लिए ही चीजें बनाई जाती थीं दूर के बाजारों के लिए नहीं । इस प्रकार उत्पादन सब छोटे पैमाने पर और स्वामीय लोगों की बकरतें पूरी करने के लिए स्वावलम्बन की पद्धति पर ही किया जाता था सब स्वभावतः पूंजीपतियों की शोषण का मौका ही नहीं मिल पाता था । इससे अपने-आप एक प्रकार से प्राकृतिक समानता पैदा हो जाती थी । न किसीकी स्वतन्त्रता का अपहरण होता था और न किसीको दूसरे पर हावी होने का मौका मिलता था । इसलिए कहना होगा कि प्रायः संसार में गांधीजी की भावार्थ के अनुसार गृहोद्योगों को पूंजीवादी तरीकों पर नहीं सहकारिता के आधार पर संरक्षित करने की जरूरत है । यदि आपात की भांति कुछ पूंजीपतियों को गृहोद्योगों के संगठन-संचालन का काम दे दिया जायगा तो कारीगरों का शोषण होता ही रहेगा । वे केवल मजदूर बने रहेंगे ।

पुराने ग्रामीण समाजों में अपने कुछ शोष भी थे । उदाहरण के लिए

जात-जाति की प्रजा बड़ी कठोर और बुद्धिवादी थी। उन मेह-मारों में कोई समझ की बात नहीं थी। तब कुछ जनपति सेठ भी होते ही थे। इन समाजों के बीच धार्मिक या राजनैतिक सम्बन्धों की बड़ी कमी थी। धात्र के स्तर को देखते हुए धायब उनका रहन-सहन भी अच्छा नहीं था। फिर भी ये धामीय मन्त्रालय बहुत धारे चिन्तन और अनुभव के आधार पर बनाये गए थे और इनमें ऐसी धार्मिक व्यवस्था के सिद्धान्त धरे पड़े हैं कि यदि धात्र इस भी उनसे लाभ उठाना चाहें तो धनेक दुःखों से हमें छुट्टी मिल सकती है, जो धात्र हमें दिन रात परेशान करती रहती है।

धात्र मन्त्रों ने अनुष्य को मगध्य कर दिया है। दिन-रात भीमकाम और छोर मन्त्रालयों के साथ कारखानों में काम करते-करते बहुत धपने-धायको भूख ही बाठा है कि मैं भी कुछ हूँ। इसके विपरीत छोटे-छोटे धरों में रहने साथक और कारीधरों तथा किसानों के बोझ को हलका करके-बासे धन्य हों तो धात्रीजी उनका धकर स्वागत करेंगे। रोमी धैरे की दृष्टि से भी बृहदधोर्गों का विस्तार बहुत लाभदायक होगा। धात्र परिधमी धैर्यों में भी समोजन का सबसे नया धारा है—सबको पूरा काम। क्या बड़े धन्य-बासे कारखानों की सहायता से उत्पादन करने से इन धपने सब नागरिकों को पूरा काम दे सकते हैं? धमरीका और ईर्नेड में धन्यों का ही राज्य है। परन्तु वे भी धपने सब नागरिकों को धात्र पूरा काम नहीं दे पा रहे हैं। वहाँ नाखों—धात्र करौड़ों धात्र भी बेकार हैं। तब धालीस करौड़ की धात्राधीनाने इस धैरे में हम और धधिक धिलें और कारखाने धड़े धरके कैसे धपनी धात्राधी की पूरा काम दे सकते हैं? धात्र धैरे के बड़े-बड़े और भारी उत्पादन करनेबासे तमाम कारखानों और धिलों में धिलकर हम धुरिधल से बीस लाख धात्रधियों को काम दे पाते हैं। धम्भई धोजनाधालों की धिधधियों के धनुधार यदि इन कारखानों की संख्या बड़ाकर धात्र धुनी कर दी धाय तो भी हम धधिक-से-धधिक एक करौड़ धात्रधियों को काम दे सकते हैं। परन्तु जो धैरे धर्चेंगे उनका क्या होया? धात्र तो भारत के किसान के धाल भी पूरा काम नहीं है। धपनी धाय को बड़ाने के लिए उसे स्वयं किसी सहायक उधोग की जरूरत है। इसलिए हमारे धैरे की धर्चधान धिधध में सही उधाय धामोधोध का धधिक-से-धधिक ध्याधक

प्रचार ही है। उत्पादन को एक ही जगह केन्द्रित करने के बजाय देश के असह्य गांवों में उसे फैलाकर सुसंगठित कर दिया जाय। हां प्राथमिक प्राथमिक संयोजन में कुछ खास-खास और महत्वपूर्ण बड़े उद्योग अपने ही बने रहें परन्तु गांधीजी की यह निश्चित राय रही है कि ऐसे कारखाने सरकार के ही हों और सरकार ही उनको चलाये।

इसमें यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि से सामीप्य उद्योग प्राथमिक दृष्टि में लाभदायक नहीं होय। हेनरी फोर्ड इस युग के सबसे बड़े उद्योग पतियों में से एक रहे हैं। उनकी राय है कि "घाम तीर पर बड़े मत्स्य लाभदायक नहीं होते।"^१ इसलिए उत्पादन को केन्द्रित करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। फोर्ड का कहना है कि "बिस् बीज का उपयोग सारे देश में होता है उसे सारे देश में बनाया जाना चाहिए। इससे परिवहन का खर्चा बचेगा और सारे देश के लोगों की खरीदने की शक्ति समान रूप से बढ़ेगी।" फोर्ड का एक प्रगल्भ धारणा "सम्पूर्ण विकेंद्रीकरण ही है। इसमें मूल्य छोटे छोटे होय और उन्हें ऐसे स्थानों पर रखा जायगा कि उनपर किसान और उद्योगपति दोनों लाभ-लाभ काम कर सकेंगे। इससे कर्मचारी न केवल अधिक प्राप्ता की अनुभव करेंगे बल्कि प्रभाव और मूल्यों का बना सामान भी अधिक सस्ता हो सकेगा।"^२ बिस् ममफोर्ड की भी राय यही है कि मिल-मिल बीजों का उत्पादन करनेवाले छोटे-छोटे छोटे-छोटे मूल्य बड़े मूल्यों की अपेक्षा अधिक लाभदायक होते हैं।^३

पूंजीवादी समाज बड़े पैमाने पर केन्द्रित उत्पादन का ही पसंदागी है। परन्तु उसने संसार को जो महासंहारक महापुष्टों में डकेला है। इन पुष्टों में जन-जन का जो नाश हुआ है, क्या यह केन्द्रित उत्पादन के लिए नहीं मढ़ा जाना चाहिए? अगर इस व्यावहारिक ढंग से सोचें तो प्राथमिक उत्पादन सचमुच बड़ा मढ़ा साबित होगा।

१ 'टुडे ऐंड टुमोरो' पृ० १२

२ 'मूविंग फॉरवर्ड' पृ० २२७

३ 'अन्यर ऑन डिस्ट्री' पृ० २४९

विकेन्द्रीकरण का तत्त्व-ज्ञान

एक बात धीर भी हमें समझनेनी चाहिए। केवल धार्मिक धीर राज नैतिक मामलों के कारण ही गांधीजी विकेन्द्रीकरण की सहाय नहीं दे रहे हैं। विकेन्द्रीकरण में जो सारे जीवन धीर उच्च विचार का आवर्ध है उसमें मैं वह गांधीजी को बहुत प्रिय है। विख्यात विद्वान-शास्त्री चाइन्स्टीन की भी यही राय है कि "परिग्रह बाह्य सफलता प्रसिद्धि और ऐश मेरे लिए हमेशा विरुद्ध की वस्तुएं रही हैं। मैं तो मानता हूँ कि बन्ध-रहित जीवा सादा जीवन ही हर प्राणी के लिए—सबके धीर और मन के लिए भी—उत्तम होता है।"^१

परन्तु सादगी का अर्थ स्वेच्छापूर्वक गरीबी और सदा संघाटी मपाये रहना नहीं है। बकरों और कम-से-कम आवश्यक सुख के सामग्री के बारे में गांधीजी का माप काफी ऊंचा है। परन्तु उनके 'सुखी जीवन' में ऐश के लिए कोई स्थान नहीं है। रहन-सहन के स्तर को नहीं स्वयं जीवन को ऊंचा बनाने की उन्हें चिन्ता सदा रही है।

सादगी के आवर्ध के साथ-ही-साथ 'मानवी मूल्यों का प्रत्यक्ष जुड़ा हुआ है जो बातु के टुकड़ोंवाले बाजार मूल्यों से विस्फुट निज वस्तु है। गांधीजी के लिए तो मानव ही सबसे प्रमुख है। प्रोटोपोरस के शब्दों में "वही सब जीवों का मापदण्ड है।" मुझ की अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर वह "जीवन की अर्थ-व्यवस्था" के समर्थक है। सामाजिक और धार्मिक पुनर्निर्माण के इस मानवो पद्धति पर खासी धीर प्रामोद्योम की इसजल में खास तीर पर धीर दिया गया है। "खासी-खावना का अर्थ है संसार के प्रत्येक मानव के साथ सहानुभूति।"^२ धर्म के व्यवसायी के लिए तो सबसे बड़ा मंगलान पैसा है। परन्तु गांधीजी के लिए आत्मा की कीयत देकर अस्तित्व विन का जीवन भी हेय है।

गांधीजी के विकेन्द्रीकरण के तत्त्व-ज्ञान में दूसरी मौलिक बात है धीर-अन की पवित्रता। "सबसे बड़े पुमान्य की बात तो यह है कि करोड़ों

१ 'वर्ल्ड लिनिंग' पृ० ७०

२ 'ईश्वरविद्या' १७-२-१९१७

में वहाँ की आबादी बराबर बटती जा रही है। मास्वस को संसार की आबादी के बहुत अधिक बढ़ जाने का भय था परन्तु आधुनिक प्राविदारमजों को यह निम्ता सता रही है कि संसार की आबादी कम और उत्तरोत्तर कमजोर भी होती जा रही है। समाज-विज्ञान यह तो बताता ही है कि गाँवों की अपेक्षा शहरों के लोगों की प्रजनन-शक्ति कम होती है। गाँवों में बच्चे ऐसी परिस्थितियों में बड़े होते हैं कि जहाँ प्राणियों और पौधों में प्रचोत्पत्ति होती रहती है। वे जानते हैं कि यह सृष्टि का नियम ही है और नगर-जीवन केवल पूँजीवादी समाज की ही विशेषता नहीं है। समाजवादी राज्यों को भी मनुष्य-जाति कैसे निम्ता रखें इस समस्या का हलका करना ही पड़ेगा।

ग्रामीण जीवन में सामाजिक सुरक्षा और शान्ति भी होती है। पुराने जमाने में गाँवों के लोग अपने आपको एक विशाल परिवार के रूप में मानते थे। एक व्यक्ति की मुसीबत सारे गाँव की मुसीबत मानी जाती थी। यदि किसीके यहाँ चोरी होती तो छेप समाज उसकी पूर्ति कर दिया करता। किसीका मकान जल जाता तो गाँव के लोग उसके पास मकान की जो तमारी होती वह उसे देकर उसका मकान बना कर देते। यदि किसी परिवार का मुखिया एकाएक मर जाता तो उसके बच्चों के पालन का भार सारा गाँव उठा लेता। जन्म-मरण की खुशी और दुःख में सारा गाँव शामिल होता। समाज में श्रम विभाजन और पेशों की व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि कोई बेकार नहीं रह पाता था। यह सब है कि आपस में धर्म-द्वेष और छोटे-मोटे झगड़े भी होते रहते थे परन्तु उसका धर्म यही था कि गाँव की शान्ति समष्टि की शान्ति नहीं थी। यह भी जीवन की एक स्वाभाविकता थी।

जीवन का आनन्द

गाँवों की धीरे धीरे जाने से जीवन में आनन्द भी फिर लौट आया। अपनी पुस्तक 'कॉरपोरेट साइड इन एन्विरोट इंडिया' में डॉ० मजूमदार ने अपने प्राचीन काल में भारत के गाँवों में मनोरंजन के साधनों का उत्प्रेषण किया है। वैदिक काल में मनोरंजन-मण्डलियाँ होती थीं जिनको लोग बाद

में 'योद्धा' कहने लगे थे। दिन-भर कठिन परिश्रम करने के बाद शाम को सोप किसी बमहू एकत्र होते और संगीत नृत्य कहानियों विविध-वर्षाओं और नये-नये स्वामीय समाचार सुनाकर अपना दिन बहुभाषा करते थे। मौर्य-काल में त्योहारों और उत्सवों के प्रसंगों पर संगीत-समारोह बयैरा किये जाते। जीवन के बुरे-पहलुओं की याति इनमें भी गानों के लोभ भाई-पारा और सहकारिता की वृत्ति से प्रेरित होते थे। इसमें माग न लेता एक प्रकार से पाप-सा समझ जाता था। ये प्राचीन परम्पराएं गांधी में आज भी जारी हैं। आज भी गांधी में मेले लगते हैं। उनके अपने भाव नाटक रंगमंच ध्वनि-कीर्तन होते ही रहते हैं और इस प्रकार वे अपने जीवन को आनन्दमय बना लिया करते हैं।

इस प्रकार गांधी में कठोर परिश्रम और ईमानदारी की कमाई के साथ साथ मनोरंजन के साधन भी सीधे-साधे होते थे। इसके विपरीत बड़े-बड़े शहरों में प्रामोदोग सिनेमा और रेडियो जैसे मनोरंजन के निर्बीज और यांत्रिक साधन होते हैं। वहां काम में सजीव स्वतन्त्रता भी नहीं होती। मजदूर को रंग की याति के साथ काम करना होता है। वह भी रंग के समान बड़-तया निष्प्राप्त बन जाता है। जीवन में कोई आनन्द नहीं होता। काम से छुट्टी मिली और मनोरंजन करना चाहा तो वहां भी वही निर्बीज और और हलचलें। इस प्रकार उसका दिन भी रंग की तरह बड़-बन जाता है। निचारों में कोई नवीनता नहीं पा पाती। वह जीवन का व्यासा प्राकृत पीना चाहता है परन्तु मिलता है उसे मृत्यु का पाग।

कसा और सौम्य

राजकम के शहरी अपनी कसा और सौन्दर्य पर गर्व करते हैं। परन्तु उनकी जीवन बनावटी और उनकी सम्यता नमनों की सम्यता है। उनकी कसा टकसाली और छापेसालों की यांत्रिक कसा होती है। उसमें न जान होती है न बहराई। धन-मुबेरों के राज में कसा और सौन्दर्य भी जारी के टुकड़ों पर बाँके जाते हैं। वहां मोरमुकुट के सौन्दर्य को कोन जाने! सीधे साधे सौन्दर्य की वृष्टि से उन नमनचुम्बी नमनों में दिनपर राज के शहर गर्व करते हैं, कोई धाकपूर्ण नहीं होता। वे निरे कबूतर-जाने हैं। गांधी

के लोग घुसे मैदानों और स्वास्थ्यप्रद मकानों में रहते हैं। मैं उन अंधेरे और पुराने जगहों जैसे मकानों की बात नहीं कर रहा हूँ जो प्राचीन जीवन के केवल अवशेष हैं। ग्रामीण तो प्रकृति की प्रत्यक्ष ओर में रहते हैं। गाँवों के कारीगर समाज की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं के लिए काम करते हैं जो कि एक महान नैतिक सिद्धान्त है। इसीलिए अपने काम में उन्हें धान्य भी आता है। 'नतीजा यह होता है कि वे अच्छी और सुन्दर चीजें बना लेते हैं। काम करते-करते वे जाते हैं।' स्त्रियाँ भी मोर में बस्ती पर पीसते हुए जाती हैं। सिर पर बड़े रसकर जब वे कुएं पर पानी भरने जाती हैं तो सहेलियों के साथ धक्कर नाचने भी लग जाती हैं। बीमारों पर अपनी ग्रामीण कसम और रमों से जो चिन्म बनाती हैं उनमें कितना सौम्य होता है। उनके पीतों और कबिताओं में कितना जीवन और मन होता है। उनके नाचों और नाटकों में जो वास्तविकता होती है, उनकी बनाई चीजों में जो विविधता और अग्रिम सौन्दर्य होता है, वह तत्कालीन समयों के साहित्य और कार्यों में कहीं खूबने पर भी नहीं मिल सकता।

भारत जैसे प्राचीन देश में कला और संस्कृति घरघरों ओपकों और गाँवों से ग्रहणों में फैली है। संपूर्ण चिन्तन और भावनाओं का स्रोत ग्रहणों के अन्तःकरण रहे हैं जो ग्रामीण वातावरण में रहते थे। रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रन्थ विश्व-विद्यालयों के प्राध्यापकों अथवा पण्डितों में नहीं मिले हैं। भजन्ता के चित्त-चिन्तों जैसी अमर कला-कृतियाँ कला भवनों के प्राचार्यों या संचालकों की बनाई हुई नहीं हैं। सर्वत्र से उन्हें इतना सहृदय और सच्चा प्रेम था कि इन सन्त कलाकारों ने भावी संतति की जान कारी के लिए अपने नामों तक का कोई बिड़ल सगमें नहीं छोड़ा है। 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' इस प्रकार की सूत्रम अर्थात् में भी वे नहीं डलते। उनके लिए तो स्वयं जीवन ही सबसे बड़ी कला थी।

राष्ट्र की सुरक्षा

विकेन्द्रीकरण तथा ग्रामीकरण जितनी धाकधनी से देश की सफलता पूर्वक रक्षा के लिए भी बहुत जरूरी है। वही धातुनिक युद्धों का आधार है।

राजनैतिक पहलू

केन्द्रित प्रयोग तो हवाई हमलों के लिए बड़े मासाले मिशन बन जाते हैं। जोड़े-से कम सारे राष्ट्रीय जीवन को परत-परत कर सकते हैं। इस प्रकार एक देश जिसके बड़े-बड़े उद्योग मिनरी के बास-बास सहर्षों में बंटे हुए होते हैं, युद्ध की दृष्टि से बड़ा असुरक्षित रहता है। चीन को आपात के कार्यक्रमों का बर्तौ तक मुकाबला कर सका इसका मुख्य कारण उसके प्रीवो-मिक सहकारी संगठन ही थे। इन सहकारी संस्थाओं ने चीन के समयम सही बावों को अपनी जकड़ों में स्थापन कर दिया क्योंकि देश के कोने-कोने में इनका जाल बहा पंजा हुआ है। "इन दिनों युद्ध बहुत संहारक हो गये हैं। इनका सतरा सबा बना रहता है और एक बार चिड़ जाने पर उनका प्रत्यक्ष कब होना इसका कोई ठिकाना नहीं होता। ऐसी स्थिति में तब और पहलने की जरूरत की चीजें दूर स्थान पर भिज जानी चाहिए। यदि इन्हें दूर से जाला पड़ेगा तो कटिनाई के समय में समाज को बड़ा कष्ट होना। इसलिए जब बिकेम्प्रीकरण युद्ध की दृष्टि से भी बहुत जरूरी है तो देश में बिकेन्द्रित उत्पादन की जो सुन्दर प्रणाली पहले ही से चल रही है उसकी उपेक्षा करना मिरा पावसपन ही होगा।"

अन्तर्राष्ट्रीय सीहारा

विस्म-साम्प्रि और अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम के बनावे रखने के लिए घनेक बोझ नाएँ सुझाई जाती हैं। नीय बॉन मैशम के कमेन्ट (संविधान) में अन्तर्राष्ट्रीय प्रेमकों को बावभीत धनवा पंच-पैसले के द्वारा निपटाने की बात कही गई है परन्तु वास्तविक के धानमन के सामने यह सारी हमारत बह गई। सल फ्रांसिस्को की परिणाम ने सब विस्म-साम्प्रि के लिए एक नया बाटेंर बनाया है। परन्तु उसका सार है दोय संसार पर तीन बकों का प्रभुत्व। प्रमरीका सोवियत कब और ब्रिटेन अन्तर्राष्ट्रीय पुनित बल के मुखिया होये और यदि इन मित्रों का ही साथ में बलका हो गया तो यह पुनित बल क्या करेगा ?

बई प्रसिद्ध बिचारकों का सुझाव है कि अन्तर्राष्ट्रीय धराजकता की निपटाने के लिए संपूर्ण संसार का एक ही राज्य बना दिया जाना चाहिए। एसीकनबर्गन ने हास ही में संयुक्त राष्ट्रसंघ से अपील की है कि बल्की

से-जल्दी एक ऐसा व्यावहारिक अंतर्राष्ट्रीय संमेलन बना लिया जाय कि जो प्रमुखता-संपन्न राष्ट्रों से घसम हों। यह एक ऊँचे कानून पर आधारित हो। सारे राज्य समान रूप से उसके अधीन हों। विश्व-मुक्ति उसकी धपनी हो ताकि सामूहिक रसा-व्यवस्था के द्वारा सब सुरक्षित रहें और सभी राष्ट्र-विरोधी हो कार्य तो भी अपने-राष्ट्र को बचाने न रहे।^१ सर विमिन्म बीवरिज अपनी पुस्तक 'दि ग्राइव फॉर पीस' में किसी ऐसी सत्ता की स्थापना का समर्थन करते हैं, जो सब राष्ट्रों से ऊपर हो और उसे बड़े तीन राष्ट्रों काैनिक समर्थन हो। सुमनर बेन्स चाहते हैं कि भौतिक आकार पर^२ एक विश्व-संघटन बनाया जाना चाहिए। इन सारी योजनाओं में जो बातें पहले से ही मान ली गई हैं—सामूहिक सुरक्षा और नि-खम्बीकरण। परन्तु इनमें समस्या के हल का आरम्भ सही समय से नहीं होता।

यह बताने के लिए शायद किसी तर्क की जरूरत नहीं है कि समान मुद्दों का बुनियादी कारण आर्थिक शोषण और संसार के बाजारों पर अधिकार करने का आर्थिक सामन है। पिछले महायुद्ध के बाद जब विश्व राष्ट्र अपना निर्वि-व्यापार बढ़ाने की योजनाएँ बड़ी तेजी से बना रहे हैं ताकि उनके घर में खून-सहून का स्तर गिरने न पावे। बाजारों के लिए की जा रही यह साम्राज्यवादी बीड़ निश्चय ही उनमें ईर्ष्या और झगड़े पैदा करेगी जिसका परिणाम होगा एक नया विश्वयुद्ध। यह क्रिना बर्बर और संहारक होगा इसकी तो कल्पना करते भी डर लगता है। इसलिए संसार से मुद्धों को मिटाना है तो पूँजीवाद को और उसके परिणाम—साम्राज्यवाद को समाप्त करना ही होगा। प्राध्यापक लास्की कहते हैं "राष्ट्रों के बीच सान्ति कायम करना है तो पहले एक राष्ट्र के अन्दर सान्ति स्थापित होनी चाहिए,"^३ और राष्ट्रों के अन्दर तब तक सान्ति स्थापित नहीं हो सकती जब तक कि वितरण की पद्धति पूर्ण नहीं होती। ऐसी पद्धति केवल सहकारी सिद्धान्तों पर संघालित बिकेन्द्रित औद्योगिकरण

१ 'टोन्स पीस' पृ. १६१

२ 'यसम फॉर विजीवन'

३ 'वेयर डू बी गो काम हीयर'

में ही अच्छी तरह काम कर सकती है। जालबी साम्राज्यवाद पर प्रभावकारी प्रहार तो यूहोयोग ही कर सकते हैं। और संवर्गपंथीय घाति का यही उपाय है। इसमिए धात्र नंवार को धैमिक मि-रासनीकरण की नहीं धात्रिक मि-रासनीकरण की जरूरत है। "राज्यों के धात्रर स्वाधीन और शासैयिक धीनों के धात्रि जितना धी धात्रिक प्रेध बड़ेगा सतना ही संसार को धिम्न-धिम्न करनैवानी धात्रयनकारी राट्ठीयता को बड़ने का धात्रसर कम मिधेगा।"^१

पहले धपनी सभासे

विधि की बह एक विधि विधम्नना है कि विधराट्ठी ने पराजित जर्मनी के लिए विधेय्यकरण का गुस्सा बसाया है। धाँसडन की बैठक में 'लीन बड़ों' ने निधय किया कि सारे जर्मनी में प्रजातन्त्री सिधान्तों पर स्वाधीन स्वायत्त शासन की पद्धति जारी कर दी जाय और सती तथा धाँसिपूषं गुहोयोगों पर धात्र तीर पर बोर दिया जाय।

धुसरों के विचार को कुछ भी हों में तो जानता हूँ कि धात्रिक और राजनैतिक क्षेत्रों में यदि यह विधेय्यत शासन-पद्धति स्थापित कर दी जायगी तो हिटलर के क्षेत्रों में जरूर बह घाति और स्वाधीन मधुखि में धात्रेयी। ध्यान देने की बात है कि धाँसिपूषं गुहोयोगों की स्थापना उन भूमि में स्थापित की जा रही है जिसने हिंसा को उनकी तर्कधुड परमा धाँसि को पड़ना दिया जाय ? परन्तु कुछ की बात यही है कि यह विधेय्यीकरण जर्मनी में धात्रर से पैदा नहीं हुआ। यह धुसरों ने उसपर लादा है। फिर भी विधेय्यता बहुत कुधिया न जमाये। मैं तो विधराट्ठी से कहूँगा "बैधरात्र यहने धपना हलाय तो कर लीजिये।" बड़े धाँसकार के धात्र को हलाय उन्होंने जर्मनी के लिए बताया है। यदि उसपर स्वयं विधराट्ठी भी धमल करने लग जाय तो संसार में निरिधत रूप में स्वाधीन घाँसि की स्थापना हो जाय क्योंकि इसने धात्रयध की वृत्ति ही जली जायगी नहीं तो संसार फिर ऐसे बंफट की घोर बन पड़ेगा जैसा पहने कभी उसने नहीं देखा है।

^१ '४ करार गु राजनै धाँसिधिल्ल—धो कोल पृ० ३००

हमारे धार्मिक धावद पुछें कि 'धाय भारत को वह उपाय क्यों बत रहे हैं जो जर्मनी को धर्मत काम तक मुनाम बनाये रखने के लिए उत्तप साबा यमा है ? इस प्रश्न का मेरा सीधा जबाब यह है कि यदि स्वत भारत इस पद्धति को अपने यहां स्वेच्छा से शुरू कर देगा तो न केवल अपने यहां शांति स्थापित कर सेवा बल्कि सारे संसार में शांति फैला देगा जर्मनी पराजित पद-बलित और अपमानित देश है । धिये-धिये वह कोषित करता रहेगा कि वह बूज सारी शक्ति का संयम करने और फिर से संसा पर आ बाव । भारत की स्थिति भिन्न है । वह एक दीप-स्वम्भ के समान होया जो शोषण और साम्राज्यवाद के धंधेरे में भटकनेवाले राष्ट्रों का सब मार्ग-दर्शन करता रहेगा । वह न दूसरे देशों का शोषण करेगा न दूसरों को अपना शोषण करने देगा ।

क्या इसमें पुरानापन है ?

गांधीवाद की सबसे अधिक बिछी-पिटी धामोचना यह है कि यह तो बड़ी के काटे को पीछे हटाता है और हमें मध्ययुग से ले जाता है । परन्तु ऐसे धामोप ले ही लोप करते हैं जिन्होंने उनका बात को समझ ही नहीं है । गांधीजी यह जरा भी नहीं चाहते कि ये धार्मिक समाज धापस में एक-दूसरे से धबबा लेप देश और संसार से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखें । यह न तो सम्भव है और न इष्ट ही । गांधीजी चाहते हैं कि धाम-राज्य स्वराज्य धासम की प्राथमिक इकाइयां हों और सामाजिक धार्मिक तथा राजनैतिक मामलों में उन्हें अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता रहे । वे तहसील बिना प्रांत और समस्त देश की लोक-सभा से समुचित शांति से सम्बद्ध रहें ।

बकि किसीका यह क्याज है कि प्राचीन काल में या मध्ययुग में भी धाम-यंजावतें एक-दूसरे से बिस्कुम भिन्न-भिन्न रहती थी उनका धापस में कोई सम्बन्ध नहीं होता था तो यह गमत है । मनुस्मृति महाभारत कौटिल्य का धर्मशास्त्र और संस्कृत के अन्य धनैक ग्रन्थों में हम देखते हैं कि हर गांव में इसी प्रकार बस-बस सी-सी हजार-हजार गांव पर एक-एक अधिकारी होता था जो अपने नीचेवाले प्रदेस के काम-काज की देख भाल करता रहता था । यह सच है कि प्रत्येक गांव अपने धार्मिक प्रबन्ध में अधिक-से-अधिक

२५ होता था यद्यपि कि वह राष्ट्र की सुरक्षा और कार्यक्षमता में बाधक नहीं होता हो। ये प्रामाण्य भीरे-भीरु अपने ऊपर के संघटनों में संघ-पद्धति से बिलौन हो जाते। इस प्रकार एक के ऊपर एक स्थापित लोक-शासन के स्तर विस्तृत ऊपर तक बनते जाते। डॉ० रामाचन्द्र मुकुर्मी ने इन विभिन्न शासकीय स्तरों की संस्थाओं के नाम बताये हैं जिन्हें समा महासमा समा नातर कहा जाता था। इस शासन-व्यवस्था का सबसे उत्तम वर्णन बोल-साधारण्य के शासकीय संगठनों के रूप में किया जाता है जिसका अधिक उल्लेख राजाओं के अनेक शिला-लेखों में प्राया है। सबसे छोटी बुनियादी इकाई का नाम और नगर जिन्हें कथ्य यह और नगर कहते थे। ऊपरवाले संगठन को माहू व्यवस्था कुरम कहते थे। कुरम के ऊपरवाले स्तर के संगठन का नाम वा कोट्टम व्यवस्था बिसावा और उससे ऊपर या प्रान्त का संगठन जिसे मण्डल व्यवस्था राष्ट्र कहा जाता था। साम्राज्य का सबसे बड़ा नाम होता था। श्री कापीप्रसाद वायसदास ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दू पॉलिटि' में जनपद-व्यवस्था का वर्णन दिया है जिसके प्राचीन प्रदेक छोटी-छोटी प्रादेशिक समाज होती थी। इन सारे प्रमाणों से साफ सिद्ध होता है कि हमारी प्राय-संभावना की पद्धति कहीं किसी सभ्य और बंगनी जातियों के संगठन का अवयव नहीं थी बल्कि वह संघ-पद्धति पर बनाया गया एक मुख्यवर्तित शासकीय संगठन था। ध्यान यदि हम इन पद्धति को बहल करना चाहें तो स्वभावतः वह बहुत अधिक व्यवस्थित और सुसंयोजित होगा। परन्तु इसमें मूल बीज है सत्ता का विकेन्द्रीकरण और व्यवस्थित वितरण। हमारी प्राचीन शासन-व्यवस्था में इसका हमें सबसे अधिक ध्यान रखना होगा क्योंकि ईकड़ों वर्षों से अनेक उपस-नृपतों का सामना करने किया है और अभी-अभी तक टिथी रही है। यह संगठन मध्ययुगीन नहीं आनेवाले युग के प्रादुर्भाव के लिए एक नमूने की प्रादुर्भाव-व्यवस्था होगी। डॉ० रामाचन्द्र कहते हैं कि "प्राचीन की तरह नीट चमो का घनमच फिर से अपनी व्यवस्था में नीट बनने से नहीं है। भारत की प्रकृति के अनुकूल जीवन बनाने का एकमात्र तरीका यही है जिसने उसे जीवन का हेतु और यज्ञ प्रदान करके उसे सार्वक बनाया। मानव-जाति को सभ्य बनाये रखने का भी यही एक मार्ग है। भारत जिसकी और मजदूरी का सामीप्य समाज

का बनों में बसे आश्रमों का और तपोवनों का देश है। इसने संसार को बहुत-सी अच्छी और महान् बातें दी हैं। किसी मनुष्य या देश का कुछ नहीं दिया और न किसीपर अपनी सत्ता लागू की बाही।^१

इसने पर भी यदि कोई ठूठी आलोचक गांधीजी के विचारों को पिछड़े हुए और मध्ययुगीन कहता रहेगा तो मैं साफ-साफ कह दूंगा कि जगत् यह पिछड़ापन हमारी धाज की सम्मति और प्राबुद्धिता से हजार गुना अच्छा है, जो धोयन उपनिषेधवाद साम्राज्यवाद और धात्मा का नाश करनेवाले बड़े-बड़े मुंडों को नाई है। अगर इन्हीं सब चीजों का नाम प्रगति है तो ऐसी प्रगति को दूर से ही नमस्कार है।

अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व

हम बड़ी सान से अन्तर्राष्ट्रीयता की बातें करते हैं और गांधीजी के ग्रामवाद की बिस्ती उड़ाते हैं। परन्तु क्या हमने कभी यह भी समझने का यत्न किया है कि गांधीजी का यह ग्रामवाद हमारे तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय बत्ता से कहीं भिन्न क्या हुआ है? यह केवल अन्तर्राष्ट्रीयता नहीं विश्व बन्धुत्व भी चाहते हैं। अपने गांव प्रांत देश और संसार के केवल मानव मात्र से नहीं बल्कि इस अनंत विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करने की वे हमसे अपील करते हैं परन्तु यह तादात्म्य सिद्ध करने के लिए जमीन और आसमान के बीच निरंतर उड़ते रहने की जरूरत नहीं है। अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में जाति से बैठकर भी हम विश्व के साथ तादात्म्य सिद्ध कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व मन की अवस्थाएं हैं। इनका सम्बन्ध देश और काल से नहीं। ग्राम और विश्व के साथ मनुष्य एकसाथ एकठा अनुभव कर सकता है। गांधीजी का मत है कि हमारे भौतिक जीवन का आधार गांव हो और विश्व-बन्धुत्व हमारा सांस्कृतिक अवस्था आध्यात्मिक नाम हो। इनके स्वदेशी-वर्ग का यह छार है। गांधीजी मानवता और विश्व की सेवा करना चाहते हैं परन्तु अपने निकटतम पड़ोसी और देश की सेवा के द्वारा। वह कहते हैं "मेरा स्वदेश-प्रेम सीमित भी है और व्यापक भी।" "सीमित इस प्रकार कि अत्यंत गरमता के साथ मैं अपना ध्यान अपनी जम्

१ 'महात्मा गांधी—एसेज ऐंड रिफ्लेक्शन्स ऑन हिम बाय द्र. एच. एल. शर्मा'

भूमि पर केन्द्रित कर देता हूँ और ध्यापक इस धर्म में कि मेरी सेवा में दूसरों के साथ हाड़ धबका भिरोब का मान नहीं है। इस संसार में जो कुछ भी है उसके साथ मैं अपने-आपको एकक्य कर देना चाहता हूँ।”

नई सम्मता

असल बात यह है कि गांधीजी का मार्ग कोई मध्यममयीन जीवन की पद्धति नहीं बल्कि एक नई सम्मता है। वर्तमान सम्मता की कुराहियों को दूर करने के लिए बहुत-से ‘मनुष्य’ उपाय सुझाये गए हैं परन्तु अन्त में आकर सभी एक बात—हिंसा वा जबरदस्ती—पर खोर बैठे हैं। वास्टर सिपमन कहते हैं—“धार्मिक संसार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की अभिलाषा से भ्रमबुद्धिवासे सब दलों का रूप यद्यपि अलग-अलग है तथापि एतनों का अजाना तो सबका एक-सा ही है। उनके सिद्धान्तों में कोई भेद नहीं और सबके बुद्ध-गीतों की छान समान है। केवल अक्षर कहीं-कहीं दूसरे हैं। सब मनुष्य के धर्म और जीवन पर जबरदस्ती करना चाहते हैं। उनका सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का कुछ और सम्भवस्वा दूर करने का उपाय यही है कि उन्हें अधिकधिक बलपूर्वक संयमित किया जाय। वह कहते हैं कि “उपय-सत्ता की मदद से ही मनुष्य को सुधी बनाया जा सकता है।” यह राज्य-सत्ता आज मुख्य बल बन गई है यही प्रवास प्रवाह है और जो इस बात का नहीं मानता—सर्वबाही सत्ता और सर्वभ्यापी संगठन में विश्वास नहीं करता—“वह दम्भ और प्रतिभियावादी है या उसे एक ऐसा मूर्ख समझ लीजिये जो प्रवाह के विरुद्ध खड़े की बेकार बेबकूबी करता है। महारमा गांधी अकेले एक पुरख हैं जो विश्वसे कुछ दायकों से समाचार ग्रहण और विकेन्द्रीकरण का उपदेश दे रहे हैं। पूर्व के सत्तों की बातों में जो सादगी सजीवता और वास्तविकता होती है, वह उनमें है। डॉ० रामाकमल मुकुजी लिखते हैं—

“राजनैतिक अधिपत्य के बारे में हमारी दृष्टि पूर्व की परम्परा का

१ विमल धर्म राई—राज्यवादी पृ० १५

२ ‘वि गुड सोमराय’—वास्टर सिपमन, पृ० ३

अनुसरण करती है। इसमें भूक जनता पर बुद्धिजीवियों जनपतिवों राजाघी मा सबहारा सत्ता द्वारा कोई बात जबरबस्ती से नहीं लायी जायगी। यह होमा किसानों का जनतन्त्र। पुराने समय से कर्म सबहि धर्मों और पेशों के आधार पर जो स्थानीय समाज बने हुए हैं उनको लेकर ग्राम बिना और प्रायों के स्तर पर उत्तरोत्तर व्यापक बनते जायेंगे और इन सबका मिलाकर राष्ट्र का एक सर्वोच्च संयोजन जायगा। यह एक ऐसा प्रजातन्त्र होगा जिसके अन्तर बाँवों के मन्त्रियों और लक्ष्मण-बास की प्राबलान पवित्र संस्कृति फिर से जी उठेगी और फिर भी उसमें प्राधुनिक नागरिकता और सामाजिकता का नवजीवन भी होगा।^१

अपने एक वक्तव्य में इस नई सम्मता की कल्पना गांधीजी ने भी है जिसे वह अपनी भाषा में रामराम्य कहते हैं

‘आर्थिक भाषा में आप उसे धूम्र पर धमकान का राज्य कह सकते हैं। राजनैतिक भाषा में यह पूरा प्रजातन्त्र होगा। उसमें गरीब धमीर, बर्ष जाति और लिंग का कोई भेद नहीं होगा। बर्ष जमीन और राज्य-सत्ता पर समाज का अधिकार होगा। न्याय सुरक्षित बिना जायगा न्याय सम्मता और सस्ता होगा इसलिए आचवना (बर्म) बापी और सेखनी की स्वतन्त्रता होगी। इस सबका आधार होना नैतिक संयम जिसका पालन सोव समस्त-बुद्धकर करें। ऐसे राज्य का आधार सत्य और अहिंसा ही हो सकते हैं और वसमें बुद्धी स्वायत्तम्बी और समूह ग्राम-समाज ही होंगे।’^२

मैं मानता हूँ कि वैधानिक शासन-सम्बन्धी गांधीजी की यह कल्पना निरा सपना नहीं है बल्कि वेद के अन्तर जस रहे आर्थिक संघर्षों और अन्तराष्ट्रीय युद्धों से बचने का एक व्यावहारिक और स्थायी हल है। जो इन कल्पनाओं को व्यावहारिक सपने कहकर इनकी हँसी उड़ाते हैं वे बरा प्राधुनिक सर्वपासी युद्धों से होनेवाले धमकीय बिनाश की कल्पना ठा करें। यदि हम सचमुच चाहते हैं कि ऐसे सर्वपासी महायुद्ध किसी भी हालत में फिर नहीं हों तो हमें अपने आर्थिक और राजनैतिक संस्थानों और संगठनों को नीचे से ऊपर तक पूरी तरह से बदलने का निश्चय

१ ‘इमोक्लेटीक मन्त्रि वि ईल’ पृ० १३३-३४

२ ‘हि हिम्’ १२ जून १९३६

राजनैतिक पहलू

करना होमा । ये तयाकथित प्रगतिशील योजनार्थ हूँ किसी परिणाम पर नहीं मे जा सकती । जैसा कि सर विलियम बीवरिज ने कहा है "मैं सपने के मुख्य-युग और वर्तमान संसार के बीच नहीं बल्कि मुख्य-युग और ठठ नरक के बीच चुनाव करने का जब हमारे सामने घाव उपस्थित है ।" हम नरक को पसन्द करना चाहते हैं या पापीजी के रामराज्य को ? पड़ा और दुष्टता के साथ हूँ तुरन्त चुनाव करनेवाला चाहिए, नहीं तो इस सर्व माम के ज्वार का हम किसी प्रकार रोक नहीं सकते ।

अनुसरण करती है। इसमें मूक जनता पर बुद्धिजीवियों जनपतियों राजाओं या सर्वहारा सत्ता द्वारा कोई बात जबरबस्ती से नहीं लायी जायगी। वह होया किसानों का जनतन्त्र। पुराने समय से कर्म भर्त्ता धर्मों और पेसों के आचार पर जो स्वामीय समाज बने हुए हैं उनको लेकर साम बिता और प्रान्तों के स्तर पर उत्तरोत्तर व्यापक बनते जायेंगे और इन सबका मिलकर राष्ट्र का एक सर्वोच्च संयोजन जायगा। यह एक ऐसा प्रजातन्त्र होया जिसके अन्तर गांधी के मन्त्रियों और तत्काल-बाद की प्राजधान पवित्र संस्कृति फिर से भी उठेगी और फिर भी उसमें प्राबुधिक नागरिकता और सामाजिकता का नवजीवन भी होगा।^१

अपने एक बन्तव्य में इस नई सम्मता की कल्पना गांधीजी ने दी है जिसे वह अपनी भाषा में रामराज्य कहते हैं

'धार्मिक भाषा में आप उसे पृथ्वी पर भयदान का राज्य कह सकते हैं। राजनैतिक भाषा में वह पुरा प्रजातन्त्र होगा। उसमें गरीब अमीर, बर्ग जाति और लिंग का कोई भेद नहीं होगा। वहाँ न्याय और राज्य-सत्ता पर समाज का अधिकार होगा। न्याय तुरन्त दिया जायगा न्याय सच्चा और सत्ता होगा इसलिए आराधना (बर्म) बापी और लेखनी की स्वतन्त्रता होगी। इस सबका आचार होया नैतिक समय जिसका पालन खोज समझ-बुझकर करें। ऐसे राज्य का आचार सत्य और अहिंसा ही हो सकते हैं और उसमें सुखी स्वावलम्बी और समृद्ध ग्राम-समाज ही होंगे।'^२

मैं मानता हूँ कि वैधानिक शासन-सम्बन्धी गांधीजी की यह कल्पना निरा सपना नहीं है बल्कि इस के अन्तर असर रहे धार्मिक संभवों और अन्तरात्मीय युद्धों से बचने का एक व्यावहारिक और स्वायी हल है। जो इन कल्पनाओं को अव्यावहारिक अपने कहकर इनकी हँसी उड़ाते हैं वे बरा प्राबुधिक सर्वेधासी युद्धों से होनेवाले अक्षयनीय बिनास की कल्पना ता करें। यदि हम सचमुच चाहते हैं कि ऐसे सर्वेधासी महायुद्ध किसी भी हासत में फिर नहीं हो तो हमें अपने धार्मिक और राजनैतिक सुस्त्रानों और संकल्पों को सीधे से ऊपर तक पूरी तरह से बदलने का निश्चय

१ 'डेयोटैलैन्ड जर्नल रि हैर' पृ १११-१४

२ 'दि हिन्दू' २९ अग १९४५

करना होगा। ये तत्कालीन प्रगतिशील योजनाएं हमें किसी परिणाम पर नहीं ले जा सकतीं। जैसा कि सर थिमिथस बीयरिंग ने कहा है "अब सपने के सुवर्ण-युग और वर्तमान संसार के बीच नहीं बल्कि सुवर्ण-युग और ठेठ नरक के बीच चुनाव करने का लक्ष्य हमारे सामने धाज उपस्थित है।" हम नरक को पसन्द करना चाहते हैं या मांभीजी के रामराज्य का? भया और दुष्टता के साप हमें तुरन्त चुनाव कर लेना चाहिए, नहीं तो इस सर्व नाश के ज्वार को हम किसी प्रकार रोक नहीं सकेंगे।

प्रमुखता करती है। इसमें मूक जनता पर बुद्धिजीवियों जनपतियों राजाओं या सर्वहारा सत्ता द्वारा कोई बात जबरदस्ती से नहीं लायी जायगी। यह होगा किसानों का जनतन्त्र। पुराने समय से कर्म धर्मात्मा जन्यों और पेशों के आचार पर जो स्वामीय समाज बने हुए हैं उनको लेकर ग्राम विद्या और ग्राम्यो के स्तर पर उत्तरोत्तर व्यापक बनते जायेंगे और इन सबका मिलकर राष्ट्र का एक सर्वोच्च संघ बन जायगा। यह एक ऐसा प्रजातन्त्र होगा जिसके अन्दर गांधी के सिद्धांतों और तत्काल-वास की प्राथमिकता विभिन्न संस्कृति फिर से भी उठेगी और फिर भी उसमें प्राधुनिक नागरिकता और सामाजिकता का नवजीवन भी होगा।^१

अपने एक वक्तव्य में इस नई सम्मता की कल्पना गांधीजी ने भी है जिसे वह अपनी भाषा में रामराज्य कहते हैं

“धार्मिक भाषा में धाय उसे पृथ्वी पर ब्रह्मचारी का राज्य कह सकते हैं। राजनैतिक भाषा में वह पूरा प्रजातन्त्र होगा। उसमें परीच धर्म, धर्म शांति और मित्र का कोई भेद नहीं होगा। वहाँ धर्म और राज्य-सत्ता समाज का अधिकार होगा। न्याय सुरक्षित दिया जायगा न्याय सच्चा और सदा होगा इसलिए प्राप्ति (धर्म) शांति और सेवा की सन्तुष्टता होगी। इस सबका आधार होगा नैतिक संघर्ष जिसका पालन हम समझ-बूझकर करें। ऐसे राज्य का आधार सत्य और अहिंसा ही हो सकते हैं और उसमें सुखी स्वावलम्बी और समुदाय धर्म-समाज ही होंगे।”^२

मैं मानता हूँ कि वैधानिक शासन-सम्बन्धी गांधीजी की यह कल्पना सच नहीं है, बल्कि वेद के अन्तर में रहे धार्मिक सभ्यता और राष्ट्रीय युद्धों से बचने का एक व्यावहारिक और स्वाधीन हल है। जो कल्पनाओं को व्यावहारिक सभ्यता कहकर इनकी हँसी उड़ाते हैं वे प्राधुनिक सर्वहारा युद्धों से होनेवाले धार्मिकता विनाश की कल्पना करें। यदि हम सचमुच चाहते हैं कि ऐसे सर्वहारा महामुक्त किसी भी तब में फिर नहीं हों तो हमें अपने धार्मिक और राजनैतिक संस्कारों और संयत्नों को नीचे से ऊपर तक पूरी तरह से बचाने का निश्चय

१ 'डेमोक्रेटिक ऑन दि ईश' १ १९१-१९

२ 'दि हिन्दू' १ जून १९३१

जना होना । ये तथाकथित प्रगतिशील योजनाएँ हमें किसी परिणाम पर नहीं ले जा सकतीं । ऐसा कि सर जिसिम भीवरिज ने कहा है “यह सपने के मूषण-युग और वर्तमान संसार के बीच नहीं बल्कि मूषण-युग और ठेठ सरकार के बीच चुनाव करने का क्षण हमारे सामने आज उपस्थित है ।”^१ हम सरकार का पसन्द करना चाहते हैं या गांधीजी के रामराज्य को ? अछूत और वृद्धता के साथ हमें सुरक्षित चुनाव करना चाहिए, नहीं तो इस चर्च कादा के अन्त को हम किसी प्रकार रोक नहीं सकेंगे ।

^१ 'दि इण्डियन एक्सप्रेस' १०-८-४०

सर्वोदय और समाजवादी नमूना

१

समाज का समाजवादी स्वरूप

भाजित भारत राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने आबड़ी-अविवेचन में समाज के समाजवादी नमूने के बारे में महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किया। सबसे कांग्रेस के कार्यकर्ता और दूसरे कई लोग जिन्हें आर्थिक संवोधन में दिल चली है स्वभावतः पूछते रहते हैं कि इस समाजवादी नमूने का असली अर्थ क्या है? इसलिए इस प्रस्ताव का पूरा अर्थ समझने के लिए हम उसका बड़ा विस्तारपूर्वक अध्ययन करना होगा। प्रस्ताव इस प्रकार है—

“विधान की शारा में लिखित कांग्रेस के उद्देश्य को पूरा करने के लिए तथा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बताये उद्देश्यों और राज्य के नीति-सम्बन्धी मार्ग-दर्शक सिद्धान्तों के परिपालन के लिए यह जरूरी है कि सारा संवोधन समाजवादी स्वरूप के समाज की स्थापना के हेतु से हो जिस में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और संभालन समाज के हाथों में हो उत्पादन उत्तरात्तर तेजी से बढ़ता जाय और राष्ट्र की संपत्ति का वितरण म्यादपूर्वक समानता के आधार पर हो।”

कांग्रेस का उद्देश्य है—“भारत में समान अवसर और समान राज नीतिक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों पर आधारित सहकारी सम्यवित्त राज्य (कोऑपरेटिव कामनवेल्थ) की स्थापना। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बताये उद्देश्यों में एक यह भी है कि सबके साथ “सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय हो तथा सबको समान बर्तन और अवसर मिले।” राज्य का नीति-सम्बन्धी मार्ग-दर्शक सिद्धान्त भी यह है कि राष्ट्र

की सरकार हर प्रकार से जनता के कल्याण की साधना करेगी यहाँ ऐसी समाज-रचना की स्थापना और शक्ति-भर रखा करेगी जिसमें राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित सभी संस्थाओं और धर्मों में सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक न्याय का पामन हो।" (भारा ३८)। भारा ३९ में लिखा है "राज्य ऐसी नीति का प्रवर्तन करे, जिसमें राज्य के समस्त नागरिकों को—पुरुषों और स्त्रियों को भी—समान रूप से अधिकार होगा कि उन्हें जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों। समाज की सामन-संपत्ति के स्वामित्व और विनियम के अधिकार का वितरण भी इस प्रकार हो कि वह संपूर्ण समाज के लिए हितकर हो। मार्ग-दर्शक सिद्धांतों में यह भी लिखा है कि "राष्ट्र की धर्म-व्यवस्था ऐसी न हो जिसके परिवर्तन-स्वल्प संपत्ति का केन्द्रीकरण हो और उत्पादन के साधनों का उपयोग कोई समाज के अहित में कर सके। भारा ४० राज्य को आदेश देती है कि वह "ग्राम पंचायतों के संघर्ष का प्रबन्ध करे और उन्हें ऐसे सब अधिकार और सत्ता प्रदान करे, जिससे वे स्वशासित इकाइयों के रूप में अपना काम कर सकें। धारा ४१ शासन को आदेश देती है कि "वह समुचित कानून बनाकर या उपयुक्त धार्मिक व्यवस्था की स्थापना द्वारा या अन्य उपायों द्वारा ऐसा प्रबन्ध करे कि केही में जगहों में या धर्म्य काम करनेवाले कर्मचारी भवना मजदूर को अपने निर्वाह के योग्य वेतन मिले और काम करने की वे सब सुविधाएँ हों जिनसे वह अपनी रहन-सहन का स्तर ठीक रख सकें जन्मे पर्याप्त विभाग और भवकाश मिल सकें और सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य करने के अवसर भी मिलते रहें।" आसतौर पर "ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य व्यक्तिगत और घर या सहकारिता की पद्धति पर चलनेवाले धार्मिकों को प्रोत्साहन देना। भारा ४६ में समाज के विच्छेद हुए और कमजोर धर्मों यहाँ जन जातियों या अनुश्रुत जातियों की घिता-दोसा की विशेष रूप से विन्ता रखने का राज्य को आदेश है। कांग्रेस और भारतीय संविधान में लिखित इन आदेशों को पूरा करने के लिए पाबड़ी-परिप्रेक्ष्य में पारित समाजवादी समाज के नमूनेवाले प्रस्ताव में कहा गया है कि वेतन में धार्मिक संयोजन के द्वारा ऐसे समाज की स्थापना की जाए जिसमें उत्पादन के सभी मुख्य साधनों पर समाज का ही स्वामित्व

हो। वही उनका संचालन भी करे उत्पादन तेजी से हो और उत्तरोत्तर बढ़ता रहे और राष्ट्रीय संपत्ति का वितरण भी न्यायव्युक्त हो।

समाजवादी नमूनेवाले प्रस्ताव के धर्म को ठीक तरह से समझने के लिए यह जरूरी है कि उसी अभिवेदन में पारित धार्मिक नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव पर भी हम विचार करें। इस प्रस्ताव में धार्मिक और सामाजिक स्तर पर पर्याप्त प्रगति करने के लिए कहा गया है। हमारा उद्देश्य स्पष्ट रूप से यह हो कि उत्पादन बूझ बड़े रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो जाय बेकारी उत्तरोत्तर घटती रहे और अंत में देश से बहू एकदम मिट जाय। यह सब इस वर्ष में हो जाना चाहिए। प्रस्ताव में धार्ये कहा गया है कि "राष्ट्र का मकसद है कम्यून राज्य की स्थापना और समाज का हांचा समाजवादी बनाना। यह तो राष्ट्रीय धार्ये में काफी बुद्धि करने से और चीजों के बूझ उत्पादन तथा रोजी के साधनों और सेवाओं समाजोपयोगी प्रवृत्तियों के पर्याप्त विस्तार से ही सम्भव होमा। इसलिये शासन की धर्मनीति का मकसद हर चीज की विपुलता और उसका न्यायपूर्ण वितरण होना चाहिए। इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए प्रस्ताव "माछी उद्योगों की स्थापना और छोटे तथा बुहोछोछों के व्यापक विस्तार पर जोर देता है।" प्रस्ताव में धार्ये कहा गया है कि "समाजवादी नमूनेवाले समाज में संयोजन और विकास के काबों में शासन को महत्वपूर्ण योग देना होमा। राज्य को शास और पर विधत्ती परिवहन इत्यादि सम्बन्धी बड़ी-बड़ी योजनाओं के प्रारम्भ और संचालन का काम करना होमा सामाजिक प्रवृत्तियों वृत्तियों और साधनों का नियन्त्रण करना होमा उद्योगों की स्थापना और विकास में सरकारकटा पैदा न होने पावे इस हेतु से उसमें महत्वपूर्ण जगहों पर नियन्त्रण कायम करने होमे। निजी व्यापारिक कोठियों और संस्थानों की स्थापनाओं पर प्रतिबन्ध समाने होमे और अम तथा उत्पादन के मानदण्ड कायम करके उनकी रक्षा करनी होमी। प्रस्ताव में यह भी साफ कर दिया गया है कि सरकारी क्षेत्र को उत्तरोत्तर अधिक काम करना होमा—शास और पर बुनिदादी उद्योगों की स्थापना में। गैर-सरकारी धर्मात् स्वतन्त्र संस्था में—उदाहरणार्थ सहकारी समितियां छोटे-छोटे उद्योग-संस्थान धार्मिक भी महत्व होमा ही।

यह भी याद दिलाई गई है कि हमें 'शांतिपूर्व और नोकर्नबी तरीकों से' बुरगामी परिणाम लानेवासे सामाजिक धार्मिक और भौद्योगिक परिवर्तन तेजी से और सफलतापूर्वक लाने हैं। इस प्रकार जब हम याद की प्रस्ताव का कांफ़ेस के विधान के उद्देश्यों का और भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं तो हमें पूरी तरह से ज्ञात हो जाता है कि समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना का वास्तविक धर्म क्या है। इस समाजवादी नमूने में विभिन्न-विभिन्न बातों का समावेश होता है संक्षेप में वे इस प्रकार हैं।

१. समाजवादी नमूनेवाले समाज का बुनियादी उद्देश्य है ऐसे समाज और धर्म-व्यवस्था की स्थापना जो समान धर्म और सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है।

२. इस समाज में जात-पाठ धर्म भिन्न और धार्मिक सामाजिक प्रतिष्ठा-सम्बन्धी कोई भेद-भाव नहीं होगा। हर यादमी को काम दिया जायगा और काम करने लायक हर नागरिक—पुरुष या स्त्री—को जीवन बेतन मिलेगा। दूसरे शब्दों में समाजवादी समाज रचना में बेकारी नहीं रहेगी। सबको रोजी मिलेगी।

३. देश की साधन-सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों पर राज्य का सम्पूर्ण स्वामित्व होगा या उसका पूरा नियन्त्रण होगा। इनका उपयोग वह राष्ट्र के धार्मिक-नैतिक हित के कार्यों में करेगा।

४. समाज ऐसी धर्म-रचना का निर्माण करेगा जिसमें नई सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण और उनका उपयोग समाज के अहित में नहीं हो सकेगा।

५. देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति को और उत्पादन को बढ़ाने के व्यवस्थित और तीव्र उपाय किये जायेंगे।

६. यह भी जरूरी है कि राष्ट्र की सम्पत्ति का वितरण न्यायपूर्वक हो और वर्तमान धार्मिक विषमताएं कम-से-कम कर दी जायें।

(७) यह सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन शांतिपूर्व और प्रजा-शासक तरीकों से लाया जाना चाहिए।

(८) समाजवादी समाज-रचना में धार्मिक और राजनैतिक सत्ता का

बुद्धता के साथ विकेंद्रीकरण करना होगा अर्थात् सारे देश में अपना प्रबन्ध खुद करनेवाली ग्राम-संस्थाओं की स्थापना करनी होगी और नृहोचोर्षों का व्यापक रूप से विस्तार करना होगा ।

इस दृष्टि से देखें तो कांग्रेस की धर्म-नीति का हम मात्र कट्टरपंथी और सख्त धर्म करने तो वह उचित नहीं होया । हम सारे प्रश्न की तरफ धुल्ल संज्ञान्तिक दृष्टि से नहीं बल्कि मूलतः यथार्थ दृष्टि से देखते हैं । हमारा उद्देश्य एकत्रय थाक है । उसमें मूल के लिए गुंजाइश नहीं है । वह कोई स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं विकासशील नीति है । वर्तमान स्थिति में हमारे देश के अन्दर सबको रोजी देने अधिकतम उत्पादन बढ़ाने और आर्थिक तथा राजनीतिक स्वायत्तापित करने का एक निश्चित तरीका होया । लोगों की माली हासत को बहि हम सुधारना चाहते हैं तो हमें अपने कार्यक्रम को और अपने तरीकों को भी बदलना होया । यह नीति मूनाधिक परिमाण में महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर ही आधारित है और समाजवादी समाज-रचना का आधार मोटे तौर पर सर्वोदय ही है । परन्तु कांग्रेस ने सर्वोदय शब्द का प्रयोग इसलिये नहीं किया है कि वह इस उच्च शब्द को राजनीति में बसीटना नहीं चाहती परन्तु यह तो स्पष्ट है कि देश की वर्तमान स्थिति में बहातक भी सम्भव है वह सर्वोदय के आदर्श का ही अनुवमन करना चाहती है । समाजवादी समाज-रचना का धर्म अत्यधिक केन्द्रित सत्तावादी और फौजी अनुशासन में जकड़ी हुई समाज-रचना कहापि नहीं है । पश्चिम में समाजवाद का जो धर्म किया जाता है वह हमारा अभिलपित सक्य नहीं है । बड़े पैमाने के उत्पादन पर आधारित केन्द्रित सत्तावादी धर्म-व्यवस्था हिंसा-शक्ति और वर्ग-संघर्ष को बन्द देती है जबकि कांग्रेस शान्ति लोकतन्त्र और अहिंसा को मानती है और वह इस देश में अभिनायक-तन्त्री और केन्द्रित सत्तावादी समाज-रचना की स्थापना का बुद्धता के साथ विरोध करती है ।

समाजवादी समाज-रचना और औद्योगीकरण

माकड़ी-अभिव्यक्त के समाजवादी समाज रचना-सम्बन्धी प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए यह समझ लेना जरूरी है कि घानेवाले वर्षों में कांग्रेस देश में किस प्रकार उद्योगों का विस्तार करना चाहती है। धार्मिक नीति सम्बन्धी हमारे प्रस्ताव में कहा गया है कि हम दस वर्ष के अन्दर-अन्दर देश से बेकारी विस्तृत मिटा देना चाहते हैं। इन उद्देश्यों की हम तभी पूर्ति कर सकेंगे जब समाजवादी समाज रचना की स्थापना के लिए हम किस प्रकार का औद्योगिक संगठन बनाना चाहते हैं। उसका सही मक़दमा हमारे सामने हो। यह मानना होगा कि अपनी एक अपनी धर्म-नीति को साफ़ और निश्चित नहीं कर सके हैं यहाँ तक कि पहली पंचवर्षीय योजनाओं में सिकी योजना-आयोग की सिफारिशों को भी हम पूरी तरह कार्यान्वित नहीं कर सके। एक तरफ़ तो औद्योगिक उत्पादन के जो सक्षम हमने निर्धारित किये थे उनसे हम कई उद्योगों में घाटे बढ़ पड़े हैं परन्तु देश में बेकारी तो बढ़ ही रही है। इसलिये औद्योगीकरण के बारे में हमारे जो बुनियादी सिद्धान्त हैं उनको फिर से अत्यन्त गंभीर भावों में रख देना जरूरी है।

सन् १९४८ में भारत सरकार ने अपनी धर्म-नीति पर एक बक़्कम्य प्रकाशित किया था। फिर राष्ट्रीय संयोजन पर कांग्रेस के प्रस्ताव हैं और पंचवर्षीय योजनाओं में भी कई बातें कही गई हैं। इन सबको एक साथ पढ़ने से उद्योगों के सम्बन्ध में हमारी नीति का एक स्पष्ट चित्र हमारी धारों के सामने खड़ा हो जाता है। संक्षेप में यह इस प्रकार है

१ हमारी औद्योगिक नीति के मूल उद्देश्य ये हैं

(अ) अधिक-से-अधिक उत्पादन

(आ) सबको रोज़ी देना

(इ) धार्मिक और सामाजिक न्याय।

२ कुछ उद्योग जैसे लोहा और इस्पात गन्ध और पुराने विद्युत् परिवहन संसार इत्यादि राष्ट्र के लिए बुनी हैं। इनको ज़रूरी-से-ज़रूरी बनाना जरूरी है परन्तु इनपर स्वायत्त राज्य का होना और बहिर्जन

संचालन करेगा। मिजी व्यापारियों के हाथों में इन बुनियादी उद्योगों का बेना सुरक्षित नहीं। इन उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के लिए यदि धात्र हमारा पास आवश्यक पूंजी नहीं है तो कम-से-कम इनका नियन्त्रण राज्य को पूर्ण तरह से अपने हाथ में ले ही लेना चाहिए और प्राधुनिकतम नमूने की बगल सामग्रीवासे नये उद्योगों को बनाने के लिए राज्य की अपने सारे सामर्थ्य लाना लेने चाहिए।

३ जहाँ तक उपभोग्य चीजों के धर्मात् कपड़ा चीनी कागज तेल आबस आदि के उद्योगों से सम्बन्ध है, उन्हें सहकारी समितियों के रूप में विकेंद्रित करने का पूरा प्रयत्न किया जाय। उद्देश्य यह नहीं है कि उपभोग्य सामग्री के जो उद्योग अभी जानूँ हैं उन्हें एकत्रित कर दिया जाय बल्कि बड़े पैमाने के उत्पादनवासे उद्योगों में छोटे उद्योगों में तथा गृहोद्योगों में धन्य-धन्य नवा-नवा उत्पादन हो इसका पूरा निश्चय हो जाना चाहिए ताकि इनके बीच प्रतिस्पर्धा और संघर्ष न होने पावे। मिजी क्षेत्र में काम करनेवालों को प्रत्यक्ष ही राष्ट्रीय संयोजन की मर्यादों के अन्तर्गत आवश्यक स्वतन्त्रता और अवकाश मिलते रहने चाहिए।

४ जैसी कि योजना-मार्थीय की सिफारिश है, अधिक-से-अधिक उत्पादन करने और बेकारी को मिटाने के उद्देश्य से हम उत्पादन की नीति निर्दिष्ट करके उसका कार्यक्रम भी बना लेना चाहिए। उत्पादन के लिए कुछ प्रकार के कपड़ों का उत्पादन पूरी तरह से जारी और हाथ-करवों के क्षेत्र में ही हो। इसी प्रकार समान आस तेल नाबों में जामिनों में ही निकले। आबलों की हाथकुटाई के उद्योग को प्रोत्साहन और संरक्षण देने के लिए आबल की मिनी को संरक्षित रूप से कम किया जाय बल्कि उनकी एकत्रित बन्धी भी की जाय। बपतरी में लगनेवाला सब प्रकार का कागज हाथकागज के उद्योग के लिए सुरक्षित कर दिया जाय। जपड़े के सामान में हिन्दुस्तानी पद्धति के अप्पल बाटा के जैसे बड़े कारखानों में न बनाये जाय। जबतक बड़े पैमाने पर उपभोग्य वस्तुएं पैदा करनेवाले कारखानों पर हम इस प्रकार के कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगायेंगे जबतक छोटे उद्योगों को और ग्रामोद्योगों को विकास का मौका नहीं मिल सकेगा और हम पूरी तरह के बेकारों और प्रांथिक बेकारों की समस्या को हल नहीं कर सकेंगे।

भारत सरकार का अनुमान है कि अगली पंचवर्षीय योजना में हमको लगभग सवा करोड़ आदिमियों को रोजी देनी होगी जिसके लिए पांच-छह हजार करोड़ रुपये व्यय करना होंगे। राष्ट्र के लिए इतनी बड़ी रकम हम यदि नहीं से प्राप्त कर भी सकें तो भी जबतक छोटे-बोटे उद्योगों और शोषणों का सहारा नहीं लेते इतने आदिमियों के लिए काम मिलना असम्भव होगा।

२. समाज में आर्थिक भ्याप और समानता को बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र के कारखानों के प्रबन्ध में कामिकारी परिवर्तन करने होंगे। जमीन के प्रबन्ध में जो सामन्त-पद्धति के विधायक थे उनको तो हमने हटा दिया। इसी प्रकार का जो सामन्तवाद उद्योग के क्षेत्र में है उसे भी हमें हटाना होगा। कर्मियों-सम्बन्धी कानून का संशोधित संसदीय संसद में पेश हुआ और वह स्वीकार भी हो गया। हम आशा करते कि शहरी क्षेत्र में बड़ी आयवासों की आय को बढ़ाने में बहुत बड़ी हद तक वह मददगार होगा और इसमें आर्थिक विपन्नताएं घटेंगी।

३. समाजवादी धर्म-व्यवस्था में उत्पादन के प्रमुख साधनों पर समाज का ही स्वामित्व होगा और संचालन भी उसीके हाथों में होगा। इसलिए बुनियादी उद्योगों की स्थापना में सरकारी क्षेत्र उत्तरोत्तर अधिकाधिक भाग लेता रहेगा। फिर भी राष्ट्र की धर्म-रचना में निजी क्षेत्र का भी महत्व बराबर बना रहेगा जिसमें औद्योगिक सहकारी संस्थाएँ शोषण तथा गृहोद्योग भी रहेंगे। इनको आर्थिक और उच्च स्वतन्त्रता तथा सबसे मिलेगा परन्तु राष्ट्र के व्यापक हितों की रक्षा के लिए इनपर राष्ट्र का नियंत्रित नियन्त्रण भी रहेगा।

४. परिचय में समाजवाद का धर्म है आर्थिक केन्द्रित उद्योग। इन पर स्वामित्व राष्ट्र का होता है परन्तु भारत में हम इस प्रकार की सैनिक रूप के आधिपत्यवादी व्यवस्था नहीं चाहते। इसके विपरीत हम तो अपने आर्थिक और सामाजिक अर्थों को शांतिपूर्ण और नोकराधिक तरीकों से हल करना चाहते हैं। वह उद्योगों की दृष्टापूर्वक और व्यवस्था के साथ विकसित करके उन्हें देश के विभिन्न भागों में फैला देने में होगा। हम अपने उद्योगों की रचना ठेक नीचे से पाँचों और शहरों में छोटे-छोटे उद्योगों

घर गृहोद्योगों की स्थापना द्वारा करना चाहते हैं जिससे अधिक-से-अधिक जनता उत्पादन में भाग ले सके।

८ भारत अपने उद्योगों की रचना इस आधार पर करना चाहता है जिससे राष्ट्र में अधिक-से-अधिक स्वावलंबन पाये। धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से भी बिदेसी बाजारों और बाहरी धार्मिक सहायता का मोह त्याग खुला देश के लिए किसी भी प्रकार लाभदायक नहीं है। हमारी अपनी बकरतों भी प्रबल ही बुर बड़नेवाली हैं। उन्हींको ध्यान में रखते हुए हम अपना औद्योगिक विकास करें। बाहर से केवल वे ही चीजें हम मंगायें जो अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। हमारी सभी उद्योग-नीति स्वदेशी के सिद्धान्त पर आधारित ॥।

१

समाजवादी स्वल्प और सामाजिक नीति

समाजवादी समाज रचनावाले कांग्रेस के प्रस्ताव ने देश में और बिदेसों में भी बहुत-से लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया है। इस प्रस्ताव में लोगों में उत्साह और स्फूर्ति की एक नई लहर पैदा कर दी है। परन्तु हमें यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि केवल धार्मिक प्रवृत्ति से समाजवादी समाज की स्थापना नहीं हो सकेगी। उसने लिए पहले समाज के बर्तमान ढांचे में अंतिकारी परिवर्तन करने होंगे। उसे उन समान बुद्ध्यों से मुक्त करना होगा जो समाज में अनेक प्रकार के भेद और असमानताएं पैदा कर रही हैं। समाजवादी समाज रचना की कल्पना भारतीय संविधान की प्रस्तावना और राष्ट्रनीति-सम्बन्धी निर्देशक सिद्धान्तों पर आधारित की गई है। इस प्रस्तावना में सामाजिक न्याय और इसके लिए समान बर्तन का प्रबल ही हिसपर बड़ा जोर दिया गया है। निर्देशक सिद्धान्तों में श्रमियों और पुखियों को समान माना गया है और बच्चों के हितों का भी पूरा पूरा ध्यान रखने पर बड़ा जोर दिया गया है। संविधान में राज्य को आदेश है कि उसके प्रदेशों में समस्त नागरिकों के लिए समान कानून होंगे और और और बर्तन के अन्तर्गत बच्चों के लिए शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य होगी। राज्य को यह भी आदेश है कि किसी भी तब अनुसूचित जातियों

की शिक्षा तथा आर्थिक स्थिति के मुकाबल पर राज्य का सत्तोर पर अधिकार मान ले और इस बात का ध्यान रखे कि उनके हितों की पूरी तरह रक्षा हो समाज में उनके साथ अन्याय तथा उनका शोषण न होने पावे। निरर्थक सिद्धान्तों में "सराब तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकार मादक द्रव्यों— दवा की बात प्रसंग है—के उपभोग पर प्रतिबन्ध लगा देने का भी उल्लेख है।"

आवड़ी-प्रविशेषण के उपर्युक्त समाजवादी समाज-रचनावाले प्रस्ताव का हेतु कांग्रेस के उद्देश्य को पुरा करना तथा "राष्ट्रीय सविधान की प्रस्तावना और निरर्थक सिद्धान्तों में निहित उद्देश्यों की पूर्ति करना है।" इन निरर्थक सिद्धान्तों से यह एकत्र साफ है कि समाज के वर्तमान ढाँचे को जितना तेजी से सम्मर हो हमें बदलना होगा। श्री उच्छ्रय राजगी बेबर ने कांग्रेस के साठवें प्रविशेषण में अपने राष्ट्रीय भाषण में राष्ट्र के नवनिर्माण के काम में समाज-मुक्ति के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर बड़ा जोर दिया। उन्होंने कहा कि "जबतक स्वयं समाज के धर्म लोक-तंत्री सिद्धान्तों का आदर और धर्म नहीं होया जबतक राजनैतिक लोक-तंत्र प्रसम्भ ही है।" उन्होंने साफ-साफ कहा कि जबतक भारत के प्रत्येक नागरिक को समान अवसर नहीं मिले तबतक सच्ची समानता की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। "जात-पात के प्रति निष्ठा और राष्ट्र-निष्ठा साथ साथ चल नहीं सकती।" जात-पात के भेद-भाव राष्ट्र-निष्ठा और राष्ट्रीयता के लिए बाधक हैं इसलिए हमें एक बार बड़े निश्चय करके इन भेदभावों की मिटा ही देना चाहिए।

कांग्रेस में येथ किये गए अपने प्रतिवेदन में श्री नेहरू ने आवड़ी में बड़े जोर के साथ कहा था कि हम भारत को एक महान सन्मिश्रित सहकारी राज्य बनाने जा रहे हैं। उसका धर्म यही है कि "सबको समान अवसर मिलेगा और सामाजिक न्याय की स्थापना होगी। इसलिए संकीर्ण प्रांतीयता या जातीयता को दबाया जाना चाहिए और जात-पात की दुर्गति को प्रक्रम में उखाड़ फेंकना चाहिए।"

आवड़ी-प्रविशेषण में स्थितियों और बन्धों के कल्याण पर एक विशेष प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। उसके धर्म उक्त समाज प्रतिगामी दृष्टियों

रिवाजों और बंधनों की गिन्या की नहीं है, जो स्थितियों के विकास में बाधा पहुंचाती हैं और राष्ट्र की सेवा के विविध कार्यक्रमों में भाग लेने से उन्हें रोकती हैं। प्रस्ताव में कहा गया है कि राष्ट्र के हित में यह आवश्यक है कि स्थितियों को अपना विकास करने और राष्ट्र की सेवा करने का पूरा अवकाश मिले। उन्हें उत्तराधिकार का अधिकार भी दिया जाए ताकि कानून तथा समाज में वे किसी प्रकार बाधे में न रहें। विभिन्न राज्यों की सरकारों ने स्थितियों और बंधनों की प्रताड़ के जो अनेक काम किये हैं कांग्रेस ने उनकी सराहना की और हिन्दुओं में सुधार के बारे में संसद में जो विधेयक पेश किया गया है, उसका स्वागत किया है। धार्मिक-अधिवेशन ने बुनियादी शिक्षा पर भी एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किया है और स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय लक्ष्य और सामाजिक संकेतों की सिद्धि के लिए वर्तमान शिक्षा-पद्धति में दूर दामी परिवर्तन करने की आवश्यकता बताई है। कांग्रेस ने बुनियादी शिक्षा को भारत में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का धारी गमना बताया है। उसने समस्त राज्य-सरकारों से अनुरोध किया है कि वे बितनी भी बस्ती सम्भव हो उस नीति पर अमल शुरू कर दें ताकि इस वर्ष के अन्तर-अन्तर बेल के ग्रामीण तथा ग्रामीणों में यह पूरे खोर के साथ व्यवस्थापूर्वक काम करने लग जाय। कांग्रेस ने धार्मिक विनोद भावे के सूत्रान और सम्पति-बाल-आन्दोलन का भी स्वागत किया और इसे "एक नैतिक प्रवृत्ति माना है जिसके द्वारा यह ज्ञानि के साथ समाज में स्वच्छापूर्वक धार्मिक तथा सामाजिक अन्ति करना चाहते हैं।" एकता और एकीकृतन वाले प्रस्ताव में समाज-सुधार पर जोर दिया गया है ताकि व्यक्ति और समाज की प्रगति और विकास में बाधा पहुंचानेवाली रुकावटों को हटाया जा सके। "भारत में जो महान विविधता है और सांस्कृतिक समृद्धि है, उसकी तो रक्षा की जाय परन्तु संस्कृति की दृष्टि से यह बकरी है कि भारत मन और बुद्धि से एक होकर रहो। प्रस्ताव में जात-पात के और साम्प्रदायिक भेद-भावों को मिटाने पर बहुत जोर दिया गया है। "इससे न केवल देश में पूरा फैलती है बल्कि समानता के धारण की ओर बढ़ने में भी रुकावटें पैदा होती हैं।"

जात-पात तथा साम्प्रदायिकता ऐसी बहरी सामाजिक बुराईयाँ हैं।

जिनका मुकाबला हमें हर मौके पर करना होगा। सुधासूत धीर बात-चाँत के प्रश्न को हल करना जतना साधन नहीं है। देश की जनता के हृदय से इस बुलाई को निर्मूलन करने के लिए राष्ट्रपिता ने दो बार अपनी जान की बाजी लगायी। भारत के संविधान से हर तरह की सुधासूत को एकरस बना दिया गया है। "सुधासूत को लेकर यदि किसीपर कोई घसघसता भी गई तो कानून में वह एक अपराध माना जाएगा और उसपर सजा।" संसद में सुधासूत पर इस प्राव्य का एक कानून बन गया है कि जो भी इस सामाजिक बुलाई को किसी प्रकार भी हलाने करेगा उसे भी सजा दी जाने वाली है। फिर भी हमें यह याद रखना होगा कि जबतक हम बुद्धि के साथ सुधासूत धीर बात-चाँत की बुद्धियों के बीच नहीं पड़ जायेंगे वे मिटनेवासी नहीं हैं। भारत में जातीयता और साम्प्रदायिकता मूलभूत कारणों का हम विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि हमारे जीवन के नेक संघर्षों में इनके लक्षण मौजूद हैं। हम जिन उपनामों का उपयोग करते हैं जातियों और उपजातियों के ही लक्षण हैं। हमारे उत्तराधिकार-संबंधी जून भी जाति-सम्बन्धी विचारों पर आधारित हैं। हमने व्यक्तिगत मताधिकार शुरू किया है, परन्तु देश में जातीयता और साम्प्रदायिकता के भेदों की धारा का इतना बहाव ही है। शिक्षा के क्षेत्र में घनीकृत जातियों के प्रलग-प्रलग संस्थाएं हैं ही। जब तो वे नाम हट जाने चाहिए। अतः न तो इन संस्थाओं को मान्यता ही है और न प्राथमिक मदद ही। जब भी ऐसे कई प्रश्न (प्रॉब्लम) हैं, जिनमें उम्मीदवार से बात-चाँत का स्नेह भाँसा जाता है। बहुत-से लोगों को ये बातें बीच लगेगी परन्तु देश में राजबादी समाज रचना करने की बात जब हम सोचते हैं तो उसमें ये गैरजोड़ नहीं है। बात-चाँत के भेदभाव को बढ़ानेवाले जितने भी कारण उस सबका हमें परीक्षण करना होगा। राजनीतिक नेताओं तथा समाजकारकों का नर्तक्य है कि वे इन सबको जड़मूल से उखाड़कर फेंक दें। इस प्रकार के काम में शिक्षा-संस्थाएं बड़ा काम कर सकती हैं। उदाहरण के लिए कोई स्कूल या कॉलेज अपने विद्यार्थी को अपने नाम के साथ जाति-जाति पत्र लिख न लगाने दे। इसी प्रकार जातीय या साम्प्रदायिक विचार संस्थाएं समाज की बदलने के प्रतिफूस हैं। उन उन्हें धक नहीं खाना चाहिए।

फिर समाजवादी समाज-रचना का प्रारम्भ स्वयं हूँ अपने जीवन में करना चाहिए। जबतक हम अपने दैनिक जीवन और सोचने के तरीकों में भी आवश्यक परिवर्तन नहीं कर सके, अभीष्ट नये समाज की रचना में हम सफल नहीं हो सकते।

४

समाजवादी समाज सात सिद्धांत

मेरा स्वाम है समाजवादी समाज के सात बुनियादी सिद्धांत हैं। पहला सिद्धांत है—प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि उसे रोजी घर्पाई रोजी कमाने का साधन—काम—दिया जाय और देश में कोई बेकार न रहे। जबतक काम करने योग्य हर आदमी को पर्याप्त रोजी कमाने के लिए काम नहीं दिया जाता जबतक समाजवादी समाज की स्थापना असम्भव है। बेकारी और समाजवाद साथ-साथ रह ही नहीं सकते। जो जो भारत में चाहें हम ऐसे समाजवादी समाज की कल्पना नहीं कर सकते जिसके अन्दर किसी भी बेकार मनुष्य को अपना नाम दर्ज करा देने पर इतर काम किये पर बैठे बेकारी का नासिक सत्ता मिलता रहे। बेकारी समाजवादी समाज-व्यवस्था को हम ठीक नहीं मानते। महात्मा गांधी ने हमें सिखाया है कि बेकारी अर्थात् निष्क्रियता से मनुष्य का केवल नासिक और सार्वजनिक ह्रास ही नहीं होता बल्कि नैतिक पतन भी होता है। इसलिए भारत अपने बड़ा ऐसे समाजवाद की स्थापना करना चाहता है जिसके अन्दर हर पुरुष और स्त्री अपने सारे पसीने की कमाई ही खाना पसल करेगा। गांधी ने भी कहा है कि जो मनुष्य बगैर परिश्रम किये खाता है वह तोर है और जो समाज इस बुरावस्था को बरखास्त कर लेता है, वह असम्भव और अनैतिक है।

समाजवादी समाज का मूलभूत दूसरा सिद्धांत है राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधिक-से-अधिक निमार्ण। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए हम इतना काफ़ी नहीं हैं कि घास काम करने-योग्य लोगों को रोजी दें। उनके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि समाज के आर्थिक जीवन का संयोजन इस प्रकार करें कि उपभोग्य सामग्री के कुल उत्पादन में भी काफी

बुद्धि हो ताकि लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठ सके। यह सोचना ममत है कि लोगों को पूरा काम देने के लिए यदि छोटे-छोटे उद्योगों और ग्रामोद्योगों की स्थापना की जायगी तो उससे लोगों के रहन-सहन का स्तर तिर जायगा क्योंकि प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने के लिए कारीगर बिजली, बल्ब धनु-शक्ति का भी उपयोग कर सकेंगे। उत्पादन को यदि औद्योगिक सहकारी संगठनों में विकेंद्रित कर दिया जायगा तो केंद्रित उत्पादनवाले बड़े कारखानों की अपेक्षा यहूना नहीं पड़गा। दूसरी बातों में यदि कहीं पक्षपात नहीं किया जाय तो कुल मिलाकर छोटे-छोटे उद्योगों में पैदा की जानेवाली चीजें बड़े कारखानों के उत्पादन की अपेक्षा सस्ती ही पड़नी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाजवादी समाज रचना ठीकी सफल हो सकेगी जब सबसे रोमी देने के फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति के उत्पादन में अधिकारिक बुद्धि भी हो। केवल गरीबी के विवरण से कल्याण-राज्य कायम नहीं हो सकता।

समाजवादी समाज-रचना का तीसरा सिद्धान्त है राष्ट्र में अधिकतम स्वायत्तम्वन। एक राष्ट्र अपने उत्पादन को बढ़ाकर दूसरे अधिकसित पड़ानी देशों को अपना मात बेचकर भी अपने लोगों को पूरा काम दे सकता है। किन्तु ऐसी संकीर्ण राष्ट्रीयता को और पिछड़े राष्ट्रों के शोषण को हमारा समाजवाद प्रच्छन्न नहीं मानता। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हम बकर चाहते हैं परन्तु वह स्वतन्त्र और निर्दोष हो। पड़ोसी देशों को हानि पहुंचाकर हम अपना निर्यात-व्यापार नहीं बढ़ाना चाहते। हमारे आर्थिक संयोजन का आधार ऐसा न हो। जो समाज अपने देश के बाहर दूसरों का योजना पूर्वक शोषण करके अपने देश में समाजवाद की स्थापना करने का ढोंग करता है, वह सही भयों में समाजवादी नहीं कहा जा सकता।

समाजवादी समाज का चौथा मूल मूल सिद्धान्त है सामाजिक और आर्थिक न्याय। कोई भी राष्ट्र जबतक समाजवादी नहीं कहा जा सकता जबतक कि उसके संगठन के अन्दर समानता और न्याय नहीं होमा। उदाहरण के लिए भारत में जबतक हम श्रमशून को पूरी तरह नहीं मिटा देते जबतक समाजवादी राज्य की स्थापना की बातें करना भी व्यर्थ है। यह सामाजिक दुर्गह भारत की संस्कृति और सम्यता पर सबसे बड़ा कर्तक है।

जो समाज रचना मनुष्य मनुष्य के बीच मेह-भाव बरछती है और अपने ही एक संघ को जानवरों से भी बुरी हालत में डाल देती है, उसमें बहुमूल से क्षमति होनी ही चाहिए। इसी प्रकार हमारे समाज को समाजवादी रूप देने के लिए स्त्रियों को भी ऊपर उठाना होगा। शराबखोरी और बेस्वामृति का भी मिटाना ही होगा। धर्म बितनी भी प्रकार की सामाजिक असमानताएं और अश्रम हैं। उनको हटाने के बाद भारतीय समाज में धार्मिक समता को भी बढ़ाना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि इस समय हमारे समाज में गरीबों और धनीयों के बीच बहुत बड़ा फाट है। समाजवादी समाज की नींव डालने से पहले इस गहरी और चौड़ी खाई को पाटना बहुत जरूरी है। कर-लाभ-आयोग (टैक्सेशन इम्बायरी कमीशन) ने सुझाया है कि समाज में १३० से अधिक विपन्नता नहीं होनी चाहिए। इस विपन्नता को बढ़ाकर छायस १२० तक ले आना अधिक उचित होया। मृत्यु-कर, भारतीय संविधान की धारा ११ को बदलना जो बायबाब से सम्बन्ध रखती है, कारखानों की व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाले कम्पनी लॉ में मुनि माजी परिवर्तन करना इम्पौरिजस बैंक का राष्ट्रीयकरण और प्राय-कर की छंजी दरों को बढ़ाना ये सब समाजवादी समाज की बिछा में से जानेवाले कदम हैं। ग्रामीण और गहरी क्षेत्रों के बीचवासी इन असमानताओं को भी बगैर किसी मेह-भाव के मिटाना ही होगा। प्राचार्य बिनोबा मावे द्वारा जारी किये गए सूचन और संपत्तिदानवाले आन्दोलन केवल भारत में ही नहीं बल्कि समस्त संसार में समानता पैदा करने के लिए आवश्यक बातें बरस पैदा करने में बहुत सहायक हो रहे हैं।

समाजवादी समाज की पांचवीं बुनियादी कल्पना यह है कि हमारे सारे सरीके धान्तिपूर्ण धार्मिक और भौकतांत्रिक हों। समाजवादी और साम्यवादी देशों ने समाजवाद माने के लिए वर्ग-संघर्ष हिंसा और सत्ता के केन्द्रीकरण से काम लिया है। भारत इस मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहता। महात्मा गांधी ज्येष्ठा कहा करते थे कि साधनों की सुखि उतनी ही महत्व की थी है जितनी साध्यों की सुखि। धन्ये लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यदि सत्ता साधनों का प्रयोग किया जाता है तो धन्ये लक्ष्य स्वयं अपवित्र और प्रदूषित हो जाते हैं। भारत की स्वाधीनता भी यह द्वेष और मारकाट के

हारा नहीं माना जाहूँगे। बहुत सोच-विचार के बाद ही भारत ने शान्ति और मोक्षार्जन के मार्ग को पसन्द किया है। इसलिए उसने शोकात्मिक तरीकों से ही अपने सब नागरिकों को रोबी देने का तथा अधिक-से-अधिक उत्पादन करने की योजना करने का निश्चय किया है। यह सम्भव एक महान और धायव सबसे बड़ी चुनौती है। हमारी पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं इसीलिए खास तौर पर शोकात्मिक और वैधानिक प्रगति पर आधारित की गई हैं। भारत ने निश्चय कर लिया है कि हर हासत में वह इन प्रावधानों पर ही चलना। हिंसा और भारकाट का रास्ता नहीं अपनावेगा। हमें निश्चय है कि अपने करोड़ों जनजीवियों को पुसुहान बनाने के इस महान् और शानदार कार्य में उसे सफलता प्रदत्त मिलगी।

समाजवादी समाज का ज़ठा सिद्धान्त है सत्ता और सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण। यह विकेन्द्रीकरण भारत औद्योगिक सहकारी समितियों और ग्राम-पंचायतों की स्थापना द्वारा करना चाहता है। ग्रहिसक और शोकात्मिक समाज के लिए ग्रन्थों पर आधारित और अत्यधिक केन्द्रित उत्पादन की पद्धति का संयोजन सम्भव ही नहीं है। अत्यधिक केन्द्रित उत्पादन के लिए मृत्तीभर प्रावधियों के हाथों में सत्ता और सम्पत्ति का केन्द्रीकरण अनिवार्य हो जाता है। भारत को ऐसी हिंसा पर आधारित कठोर सैनिक अनुशासनवासी पद्धति कतई पसन्द नहीं। भारत में ग्राम पंचायतों बहुत प्राचीन काल से काम करती आई हैं। उसकी संस्कृति और सम्पत्ता का ये एक अधिगम भोग रही हैं। हमारे पूर्वजों ने अत्यन्त सोच विचार और अनुभव के बाद उनको कायम किया है। परिचय के भी बहुत-से महान विचारक जब इसी नतीजे पर पहुँच रहे हैं कि यदि शोकात्म्य को सफल बनाना है तो उसकी इकाइयाँ छोटी-छोटी ही होनी चाहिए। इस लिए यदि भारत में हमें समाजवादी समाज-रचना की योजना बनानी है तो शोकात्म्य को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटना परम आवश्यक है। व्यक्ति और समाज के द्विनों का सबसे उत्तम सामंजस्य ऐसी छोटी-छोटी सामाजिक इकाइयों में ही हो सकता है। हम न तो यह चाहते कि समाज की बेदी पर व्यक्ति के द्विनों का बसिगान हो और न हम यह बरगान कर

ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमें किसी प्रकार का शोषण न हो और जिसके अन्तर्गत् और समाज के हितों का सफल समन्वय हो। जाहिर है कि विकेंद्रित लोकतन्त्र में ही ये सर्वोच्च सिद्ध हो सकते हैं। भारत अपने समाजवाद की इमारत नीचे से उठाना चाहता है। वह मानता है कि यह नीच ऊपर से नहीं जा सकती।

हमारे समाजवादी राज्य का सातवां सिद्धान्त 'सर्वोपम' (ग्रन्ट्रिस्ट नास्ट) का धारण है। गांधीजी यह कहते हुए कभी सकते ही नहीं थे कि प्रासिद्धि सर्वात् सबसे नीचे-नीचे धारणी की तरफ हमें सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। शहरों की सड़कों को चौड़ी करने और उन्हें डामर की बनाने के लिए तो हम बड़ी अचीरता दिखाते हैं परन्तु गांवों में सारी सड़कें भी बनाने की हमें चिन्ता नहीं होती। शहरों में बड़े-बड़े भवन और इपतरों की इमारतें बनाना हमें जरूरी मान्य होता है, परन्तु गांवों के लोगों के लिए सीधे-साधे सुन्दर भवन बनाने की बात भी हम नहीं करते। आबाद हुए हमें इतने वर्ष हो गये परन्तु देश में आज भी ऐसे अनेक भाग हैं जिनका विकास नहीं हो पाया है। आज भी इतनी पिछड़ी हुई आबाधियां हैं जिनकी तरफ हमारा ध्यान अभी तक नहीं गया है। समाजवादी समाज रचना में उन लोगों की जरूरतों की तरफ सबसे पहले ध्यान देना होगा जो सबसे अधिक पीछे और बिदे हुए हैं।

भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के लिए ये सात सिद्धान्त जरूरी हैं। ये ग्रन्ट्रिस्ट गांधीजी का सिद्धान्त के अनुकूल ही हैं। सर्वोपम में इन सबका समावेश हो जाता है और भारत इनपर चलने का निश्चय कर चुका है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी पूरी शान्ति और बुद्धि से इनके अनुसार चलने का यत्न करें। यदि हम दूसरे देशों के समाजवादी या पूंजीवादी सिद्धान्तों की नकल करने का प्रयत्न करेंगे तो हम सही रास्ते को छोड़कर भटक जायेंगे। भगवान की वरदा से हमें एक अत्यन्त महान सांस्कृतिक विरासत मिली है। इस पुष्प-मुरातन देश में सही मानवी आवृत्तों के आधार पर हम अपने समाजवाद की इमारत खड़ी करना चाहते हैं।

समाजवादी राज्य की ओर

पूर्व या पश्चिम के किसी देश में प्रचलित समाजवाद की हम नकल करना नहीं चाहते। दूसरे देशों के जीवन के तरीकों की इस प्रकार नकल करना कभी सामयिक नहीं हो सकता। प्रत्येक देश को अपनी निजी प्रकृति विशेषता और परिस्थितियों के अनुसार ही अपने जीवन का तरीका बनाना होता है। भारत अधिनायकत्व की—अर्थात् ऐरियन—तरीकों से नहीं सोकत-त्री तरीकों को अपनाना चाहता है। प्रधान मंत्री ने स्वयं कई बार कहा है कि “मेरा विचार है कि कुछ विनाकर आन्तिपूर्व लोकतन्त्र का तरीका अधिक फलदायी होता है। समय की दृष्टि से तो उसमें लाभ है ही परन्तु परिणाम की दृष्टि से वह और भी अधिक लाभदायी होती है।” महारत्ना मांजी ने भी तो हमें तथा उसार को यही पाठ पढ़ाया था। पतत सामन घंठ में जाकर तही साम्यों की भी धधुद बना देते हैं और आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्तियों में अन्धबाजी और अचौरता के कारण जब-जब भी हिंसा से काम लिया गया है धन्त से वह हानिकर ही सिद्ध हुआ है। पिछले वर्षों में संयोजन की लोकतांत्रिक पद्धति के द्वारा भारत ने आर्थिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की है। अपनी इस प्रगति की तुलना हम संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस सहित संसार के किसी भी देश के साथ कर सकते हैं। हमें भ्रमना नहीं चाहिए कि अमरीका के पास विद्यालय भू प्रदेश और अपार प्राकृतिक साधन पड़े थे। फिर भी उसे प्रथम श्रेणी का औद्योगिक राष्ट्र बनने में बुरे से बुरे लग मगे। इसी प्रकार सन् १९१७ की अक्तूबर की क्रांति के बाद अपनी पहली पंचवर्षीय योजना उस प्यारह वर्ष बाद बना सका था। चीन की नई साम्यवादी सरकार भी घोष कर रही है कि साम्यवाद की नींव को मजबूत करने में उसे अभी पन्ध्र-बीस वर्ष और लग जायेंगे। इसलिए यह सोचना गलत है कि अधिनायक-तन्त्र के संयोजन सोवियत-संघीयन की अपेक्षा अधिक जल्दी फलदायक होता है। हमें तो उल्टे निरूपण है कि अधिनायक-तन्त्री तरीकों की अपेक्षा आन्ति वा मार्ग ही जल्दी और स्थायी फल देता है।

परन्तु भारत जिस प्रकार का सामाजिकी राज्य चाहता है उसका रूप क्या होगा यह समझ लेना बड़ा जरूरी है। अपनी योजना का साफ-साफ बिना हमें हमेशा अपनी धारों के सामने रखना चाहिए। हमारी धार्मिक नीति के बुनियादी धर्मों से हैं—१. अधिक-से-अधिक उत्पादन २. बेकारी का निर्मूलन ३. और सामाजिक तथा धार्मिक न्याय। हमारी उद्योगों के—बाहरी पर बुनियादी भारी उद्योगों के—विरोधी नहीं हैं, परन्तु ऐसे उद्योगों पर क्या-सम्भव स्वामित्व राज्य का ही हो। संभालन भी उनका राज्य ही करे। यदि ऐसे उद्योगों का निकट भविष्य में राष्ट्रीयकरण नहीं हो सकता है तो उनपर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण तो आवश्यक है। राज्य अपने साधनों का उपयोग पुराने यन्त्रोंवाले वर्तमान उद्योगों को बदलने में नहीं नये उद्योग बढ़े करने में ही करे। हाँ पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण राष्ट्र की दृष्टि से हितकर हो तो बात दूसरी है। अर्थात् उपयोग्य वस्तुओं के उद्योगों से सम्बन्ध है, उन्हें औद्योगिक सहकारी समितियों के रूप में विकेंद्रित कर देने का हर प्रकार से प्रयत्न कर दिया जाय। राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक बैठक में प्रधान मंत्री ने कहा था कि बड़े उत्पादनवाले कारखानों में अधिक मजदूरों को काम नहीं दिया जा सकता। यदि हम चाहें कि हम अपने समस्त बेकारों को बड़े कारखानों में ही काम दें तो ऐसे कारखाने बढ़े करने के लिए अपनी अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी जिसकी गिनती “बोल विद्या के धर्मों में ही हो सकती है।” इसीलिए उन्होंने कहा कि “मुझे बरा भी लंका नहीं है कि बेकारी की समस्या को हम छोटे और नुहोद्योगों के द्वारा ही हल कर सकते हैं। उद्योगों के क्षेत्र में यन्त्रों के उपयोग के भी हम विरोधी नहीं हैं परन्तु विज्ञान के प्राविष्कारों का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिससे हम अधिकतम उत्पादन बेकारी-निवारण और धार्मिक तथा सामाजिक न्याय इन तीनों प्रश्नों को एक साथ हल कर सकें। दूसरे स्थलों में हम बीसे उसे नहीं इस प्रकार उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं जिससे राष्ट्र की साम हो। प्रसन्नता की बात है कि अगर धर्मार्थ नये धर्म का मुजरत हुआ जरूरत एक करोड़ प्राविधिकों को काम देने की समता रखता है जिसके लिए केवल बेइसी करोड़ रुपये की पूंजी लगानी होगी। इस जरूरत की मरब से हर मनुष्य

साधारणतः बारह घाने रोब भर बैठे कामा सकेया। पूरी और प्राथिक बेकारी की समस्या को हल करने के लिए हमें इस प्रकार के यन्त्रों की जरूरत है जिनमें अधिक-से अधिक मनुष्यों को काम दिया जा सकता है।

प्राचार्य बिनोबा माने ने कहा था कि बिहार और देश के अन्य भागों में बाढ़ों ने जो बरबादी की है उससे उगई इतना कुछ नहीं हुआ जितना बहुछोगों और घामोछोगों के बिनाश से होता है। घास भी फिटने ही घामोछोगों की हत्या हमारी धानों के सामने हो रही है। ज़ादी और हाथ-करवों पर काम करनेवालों की हासत बड़ी खोबनाय हो रही है, यद्यपि पिछले कुछ महीनों में उसमें कुछ सुधार हुआ है। बाबलों की हाथकुटाई के उद्योग की हत्या मिलें कर रही है। तेल की मिलें तेलबानी उद्योग का खून कर रही है और चीनी की मिलें गुड़ और कण्डसारी के घामोछोग का प्राण ले रही हैं। हमारा मतलब यह नहीं है कि कपड़ा तेल बाबल और चीनी की बर्तमान मिलों को एकदम बन्द कर दिया जाय परन्तु घामोछोग छोटे उद्योग और बड़े उद्योगों के बीच निश्चित कर दिये जाय उदाहरणार्थ जैसा कि योजना-आयोग का सुझाव है ज़ाद तैलों का खेप पूरी तरह से बादियों के लिए सुरक्षित रहे और मिलों में केवल अन्धारा तेल उत्पन्न किये जाय। इसी प्रकार पोपम की बुद्धि से भी यह आवश्यक है कि बाबलों की कुटाई का काम पूरी तरह से हाथ से ही हो। बपड़ के साथ में भी कुछ फिटने ज़ादी और हाथकरवों पर ही बनें। हम यह निश्चय कर ले कि अन्य में हाथ-करवों पर केवल शाखा या अन्धार चरखे पर कटा सूत ही काम में लिया जाय। हमें विदबास है कि इन प्रश्नों को अक्षिण भारत ज़ादी और घामोछोग बोर्ड घाने हाथ में लेगा और भारत सरकार भी इस बोर्ड की सिफारिशों के प्रचार में ही अपने प्रतिबन्ध निरर्थक करेगी।

समाजवादी समाज के धारों को कार्यान्वित करने के लिए वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में भी हमको धातुल परिवर्तन करना होगा क्योंकि घास एक तरह तो शिक्षितों में समाचार बेकारी बढ़ रही है और दूसरी तरह हमारी पंचवर्षीय योजना के संतर्गत कई महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए हम प्रशिक्षित व्यक्तिवर्गों की कमी बहुत अनुभव कर रहे हैं। उदाहरणार्थ घामोछोग राशों के लिए हमें डॉक्टरों और इंजीनियरों की पूरी धीज की जरूरत है। प्रमाण

मंत्री ने राष्ट्रीय विकास परिषद् के सामने ठीक ही कहा था कि हमारी ग्रामीण योजनाओं को पूरी करने के लिए हम इतना नहीं ठहर सकते कि इंजनों और इंजीनियरों को पूरी शिक्षा देने में क्यों सगा हों। जोड़े और लम्बे समय के प्रशिक्षण वर्ष साथ-साथ चलाये जा सकते हैं। प्रधानमंत्री ने तो यहाँ तक कहा कि “इन लोगों को घापी और बीबाई शिक्षा देकर भी गावों में सेवा जा सके तो इसे मैं पसन्द करूँगा क्योंकि इसमें इस संक्रमण काल में ग्रामों की कुछ तो सहायता हो सकेगी। मसलन यही है कि बकरूत बहुत भारी है और उसको बन्दी-से-बन्दी पूरी करने का ध्यान हमें रखना है।

१

समाजवादी संयोजन में लोकतन्त्र की दृष्टि

समाजवादी संयोजन ने अपनी सलाह के लिए कुछ वैज्ञानिकों का एक मंडल नियुक्त किया है। इनकी बैठक का समारम्भ करते हुए श्री जवाहरलाल नेहरू ने पञ्चवर्षीय योजना के प्रमत्त में लोकतन्त्र की दृष्टि हो इसपर बड़ा जोर देते हुए कहा कि इसके लिए हमें किसानों मजदूरों बुद्धिजीवियों और समस्त जनता का बिना सहयोग प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने कहा कि आप यह तो याचा नहीं कर सकते कि जेठों में काम करनेवाले किसानों और मजदूरों को आपकी योजना की तफ्तीलों की जानकारी होनी। फिर भी यह बकरी है कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसे वे समझें और पसन्द करें, और हमें बतावें कि हम ठीक कर रहे हैं या नहीं। श्री नेहरू ने वैज्ञानिकों से कहा ‘लोकतन्त्र जेठों में लोम फिन बासों को चाहते हैं। इसका वे ध्यान रखें। इसका यदि आप ध्यान नहीं रखेंगे तो आपकी सफलता नहीं मिलेगी और योजना का सारा प्रयास बेकार होमा। यह समाप्त हो जायगी।’ उन्होंने यह भी कहा कि संयोजन के सिद्धांत प्रत्येक देश की बस्तरों और उसके निवासियों की पूर्व-परम्पराओं परिस्थितियों और प्रकृति तथा प्राकृतिकों को देखकर ही कायम किये जाने चाहिए।

जोग धक्कर पुछते हैं कि क्या धार्मिक संयोजन लोकतन्त्र में सम्मिल है। कुछ धर्मशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों का यह पक्का विश्वास है कि संयोज-

सर्वोदय और समाजवादी न्याय

जन में कड़े नियन्त्रण बगैर सम्भव नहीं और ऐसा कड़ा नियन्त्रण सोव्यों की
 भावना हीन सेता है, वे न्याय बन जाते हैं। दूसरे विचारकों का क्या
 है कि धार्मिक संयोजन सही मार्गों में सफल ठही होगा जब वहाँ लोकतन्त्र
 का—भावादी का—बाधावरण होगा। सोवियत रूस का संयोजन बिन्दु
 टर साही का और-जबरदस्ती का संयोजन है। ऐसे कड़े नियन्त्रणवाले
 केन्द्रित संयोजन में व्यक्ति भावादी नहीं अनुभव करता। उत्पादन के मन्व्यों
 को पूरा करने वितरण का प्रबन्ध करने और सब लोगों को पूरा काम देने
 की सारी जिम्मेदारी और सत्ता शासन अपने हाथ में ले सेता है। वहाँ
 व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए कोई स्थान ही नहीं होता। वह राज्य-संयोजन
 के महान यन्त्र का एक पुर्ण-मान बन जाता है। इसी प्रकार का संयोजन
 चीन जैसे दूसरे साम्यवादी देशों में भी चल रहा है। वेधक स्थानीय परि
 स्थितियों के अनुसार, छोटे-बड़े मामूली फेर-फार प्रबन्ध होते हैं। उबर
 संयुक्त राज्य अमरीका फ्रांस और यूरोप के दूसरे देशों में जैसी और उद्योगों
 में उत्पादन मजदूरी देने और सामाजिक सुरक्षा के लेजों में जब वहाँ
 जैसी जबरदस्त दुर्घटनाओं में संयोजन से काम लिया गया है। उदाहरणार्थ
 संयुक्त राज्य अमरीका में जब बहुत बड़ी मशीनवाई तो उसका मुकाबला
 करने के लिए राष्ट्रपति कजबेन्ट ने राष्ट्रीय राहत अधिनियम—नैशनल
 रिकवरी एक्ट—बनाया। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन में बीबिज समाज-सुरक्षा
 योजना बनी थी। दूसरे कई देशों में भी राष्ट्रीय जीवन के सीमित क्षणों में
 संयोजन के प्रयोग किये गए हैं परन्तु लोकतन्त्र में वैयक्तिक रूप में संयोजन
 का विद्याल प्रयोग करने का साहस संसार में एकमात्र भारत ही कर रहा
 है। जब पहली पंचवर्षीय योजना बनी तो लोगों को उसकी सफलता के
 बारे में बड़ी संकाएँ थीं परन्तु उसने घनेक क्षणों में अपने निर्धारित लक्ष्यों
 से भी अधिक सफलता प्राप्त करके दिया थी और जनता के हृदय में एक
 प्रकार के घाय विस्फाट और स्वायत्तम्यन की भावना भर दी।
 दूसरी पंचवर्षीय योजना भी काफ़ी घाये बड़ गई है और समाजवादी
 स्वयं के समाज की नींव डालने की घाया दिला रही है। उसपर टीक
 प्रकार से धमक होने से वह राष्ट्रीय धाय को २२ प्रतिशत बढ़ा देती और
 राष्ट्रीय तथा सामीन दोनों में कुल मिलाकर करोड़ तथा करोड़ अधिक

मनुष्यों की रोबी दिला सकेगी। वह कई भारी और महत्वपूर्ण उद्योग खड़े कर देगी जो भागी आर्थिक विकास के मुख्य आधार का काम करेंगे। इसके असावा सारे देश में वह छोटे-छोटे और गृहोद्योग भी फैला देगी। औद्योगिक विकास के असावा दूसरी पंचवर्षीय योजना में खेती की उपज को बढ़ाने पर भी बहुत जोर दिया गया है। इससे जहां एक तरफ देश के निवासियों के लिए भरपूर धान हो जायगा वहां दूसरी ओर अन्नो के असावा उपज बेचकर थियेरी मुद्रा भी कमाई जा सकेगी जिससे बाहर से अन्न-आमदनी और अन्य प्रकार का कच्चा माल मंगाया जा सकेगा। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत हमारी अनेक नदी-वादी योजनाएं पूरी हो जायंगी और वे हमारे कारखानों के लिए अविकसित देश के लिए, बड़ी आनन्ददायक होंगी। प्रधान मंत्री लोगों से हमें ऐसा अपील करते रहते हैं कि वे नदी नाल के निर्माण के महान पुण्यार्थ में सरीक हों। इस महान साहसिक कार्य की विशेषता यह है कि यह लोकतन्त्र के आतिथ्यपूर्ण तरीकों से किया जा रहा है।

यह सोचना ठीक है कि डिप्टेरसाहीवाले देशों में जितनी तेजी से प्रगति होती है, उसकी तुलना में यह लोकतन्त्री पद्धति बीबी है। उदाहरणार्थ हमसे प्रायः कहा जाता है कि चीन में आर्थिक विकास की गति नास्त की अपेक्षा कहीं तेज है। यह सच भी है कि कुछ बातों में चीन हमसे प्रायः है परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि कई अनेक बातों में चीन से भारत प्रायः है। चीनी अमराज्य के प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन साई ने अपने अम्बई के एक भाषण में कहा था कि "राष्ट्रीय विकास के अनेक क्षेत्रों में भारत ने बहुत काम किया है।" उन्होंने कहा था कि कई बातों में भारत चीन से प्रायः है और चीन के लोगों को चाहिए कि वे अपने भारतीय मित्रों से सम्बन्धपूर्णक ये बातें सीख लें। इन दो देशों के बीच पिछले दो हजार वर्षों से दोस्ती बनी आई है। इन दो महान् देशों को परस्पर के साथ आर्थिक सांस्कृतिक और आधुनिक सम्बन्ध स्थापित करने के अनेक अवसर मिले हैं। परन्तु आज ये दोनों देश भिन्न आर्थिक और राजनैतिक विचार-धाराओं को मानते हैं। भारत बृहत्ता के साथ लोकतन्त्र और आर्थिक अन्ति भी

राह पर चल रहा है। और चीन डिक्टेटरशाही के मातहत अपने मार्ग पर जा रहा है। फिर भी दोनों देश एक-दूसरे से काफी नई-नई बातें सीख सकते हैं परन्तु भारतवासियों को बराबरी यह धारणा नहीं होनी चाहिए कि लोक-तन्त्री संयोजन डिक्टेटरशाही संयोजन की अपेक्षा धीरे-धीरे काम करता है।

फिर भी यह प्रति आवश्यक है कि लोकतन्त्र में संयोजन जैसी तथा सचोगों के विकेंद्रीकरण की पद्धति से हो। बड़े-बड़े बुनियादी उद्योग राष्ट्र के ही हों और वहीं उनका संचालन भी करे, परन्तु उपभोग्य वस्तुओं के उद्योग सहकारिता के आधार पर बिना भी सम्भव हो व्यापक रूप से विकेंद्रित कर दिये जायें। राष्ट्र का निर्माण बिल्कुल नीचे से हो इस दृष्टि से प्रत्येक गांव या कुछ गांव मिलकर अपनी बकरतों के बारे में स्वायत्ती बनने और अपनी बुद्धि से ही हर काम को करने की कोशिश करें। इस दृष्टि से राष्ट्र-निर्माण में पंचायतों और सहकारी समितियों का भाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होया। यदि ऐसा नहीं किया गया तो लोकतन्त्र में भी संयोजन अत्याचार और सैनिक हथ की बबरखस्ती का एक कारण बन सकता है। हमें सदा यह ध्यान रखना है कि लोकतन्त्र में संयोजन वही सफल माना जा सकेगा जिसमें जासकर ग्रामीण लोग के लोगों को अपनी एकता का भाव होने लग जाय और वे अपनी निजी मूढ़-बूढ़ से हर काम करें। अभी तक जासकीय कार्यक्रमों में लोग सहयोग देते रहे हैं। अब सामुदायिक विकास योजनाएं ऐसा प्रयत्न कर रही हैं कि लोगों की योजनाओं में सरकार सहयोग दे। देश में समाजवादी स्वल्प के समाज का निर्माण करने का यही एकमात्र लोकतांत्रिक तरीका है। केन्द्रीकरण से और नीकरशाही तरीकों से बचने का हमें हमेशा ध्यान रखना होगा। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हमारे मार्ग में बड़ी कठिनाइयां आयेंगी और बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करना होगा।

७

नीचे से संयोजन

भारत के संविधान के निर्येक सिद्धांतों में से एक यह है कि "स्वशासन की इच्छाओं के रूप में राज्य ग्राम-पंचायतों का संघ बननेगा।"

पाँचीबाबी ने भी प्राथमिक और राजनीतिक सत्ता को विकेंद्रित करना साम-
बायक माना और इस हेतु से ग्राम-संघायतों को पुनर्जीवित करने की सलाह
दी है। उनका तो सच्चे स्वराज्य का सपना यह है कि "सारे देश में स्वाय-
मन्वी स्वशासित छोटे-छोटे ग्राम-राज्य कायम हो जायें।" सौभाग्य से
सारे राज्यों में अपने-अपने यही ग्राम-संघायतों की स्थापना के सम्बन्ध में
कानून बना दिये हैं। इनकी रचना और अधिकार व्यवस्था हर राज्य में
अलग-अलग प्रकार के हैं, परन्तु उन सबमें ऐसे बीज हैं जिनके द्वारा हम
विस्तृत सीमा से छोटी-छोटी स्वायत्त ग्राम-संघायतों के आधार पर अपने
नवीन लोकतन्त्र की इमारत खड़ी कर सकते हैं।

आज पश्चिम के समान मजगामी राजनीतिज्ञ और समाज-सुधारक
भी मानने लग गये हैं कि यदि लोकतन्त्र को आज एक सामाजिक और
प्राथमिक संमेलन के रूप में सफलतापूर्वक काम करना है तो उसे विकेंद्रित
रूप में ही काम करना होगा। ब्राम्प्यापक बोड ने कहा है कि "यदि समाज
की कर्तृत्व शक्ति में मनुष्य की शक्ति फिर से बरगामी है तो राज्य के छोटे
छोटे टुकड़े करने होंगे और उसके अधिकारों को भी बाँट देना होगा।"
डॉ० ब्रुडिंग भी मानते हैं कि 'छोटे-छोटे सुप्रतिष्ठ गणराज्यों में ही सच्ची
साम्यता की रक्षा हो सकती है। प्राथमिक समाज-शास्त्र भी इस सिद्धान्त
को मानता है कि 'छोटी-छोटी इकाइयों में मनुष्य बड़ा सुखी रहता है।'
प्राथमिक समाज के लोगों का विश्लेषण करते हुए ब्राम्प्यापक एडम्स कहते हैं
कि "युरोप की जड़ में जाकर देखिये और साहस के साथ विकेंद्रीकरण और
सत्ता के बंटवारे का मार्ग ग्रहण कीजिये। अमेरिका का प्रसिद्ध समाज-शास्त्री
जेमिस ममफोर्ड भी "जाँचों में छोटी-छोटी सामाजिक इकाइयाँ ही बनाने
की सलाह देता है। आज भी अमेरिका में ग्रामीण और सहकारी जीवन के
निर्माण में छोटी-छोटी इकाइयाँ बड़ा काम कर रही हैं। प्रगति के पथ पर
किन्टुकी डॉन दि मार्च सर्वोद्यम के मार्ग पर चलनेवाले स्त्री-पुरुषों की
बड़ी विसमस्या कहानी है। 'छोटे कस्बों का पुनरुज्जीवन' में बड़े मोर के
साथ कहा गया है कि

“ग्रामबाह्य लोकतन्त्र के पनपने और एक सभित के रूप में बढ़ाने के लिए आवश्यक मातावरण केवल छोटी-छोटी इकाइयों में ही मिल सकता है।” न्यूयार्क के पास घपनै ‘जीवन-विद्यालय’ में डॉ॰ थोरसोही छोटी इकाइयों में विकेंद्रित जीवन के विकास का प्रयोग कर रहे हैं। थोहियो में बन्ने रिग्रस में डॉ॰ नॉर्गन का सामाजिक जीवन के निर्माण का प्रयत्न भी लोकतन्त्री जीवन की रक्षा का और उसे स्थायित्व प्रदान करने का एक साहसमय प्रयत्न है।

इस प्रकार ग्राम-विकासियों की कल्पना कोई मध्ययुग की पिछड़ी हुई कल्पना या कयाइली जीवन का अवलोकन नहीं है। बल्कि डॉ॰ राधाकृष्णन ने कहा है “ग्रामीण जीवन को घपनाने का धर्म जंगली प्रकृति को लौट आना नहीं है, भारत की प्रकृति के अनुकूल वो जीवन है उसकी रक्षा करने का वह एकमात्र तरीका है।” डॉ॰ राधाकृष्णन मुम्बई में घपने ‘डेमो क्रेवींग इन वि ईस्ट’ में लिखा है कि किस प्रकार “ग्राम-विकासमें नवीन समाज का सुन्दर नमूना पैदा कर सकती हैं। इनमें घलन-घलन बन्नों में लगे हुए ग्रामीणजन हिस-मिलकर प्रगति से रहेंगे और भावी राज्य के निर्माण में इस केन्द्रित संसदीय लोकतन्त्र को अपेक्षा कहीं अधिक और सम्शोषजनक बोन देंगे।” ग्रामीण जीवन का यह तरीका पुराना बेकार तथा रवाग्न नहीं है। घासन और धार्मिक संगठन की बुनियादी इकाई के रूप में वह विज्ञान के इस युग के अनुकूल ही है। इसी सारी वैज्ञानिक प्रकृति के बावजूद केन्द्रीकरण की अपेक्षा विकेंद्रीकरण का आघम लेने में ही समाज का बसाव है। यह सोचना भी मतलब है कि ग्राम-विकासियों का जीवन धकेला गया एकांतिक होना। प्राचीन काल में भी लोगों का जीवन ऐसा नहीं था। सारे स्तरों पर समाज की कदियां बराबर एक-दूसरे से जुड़ी हुई थी। सब तो यह है कि विज्ञान और लोकतन्त्र की प्रगति का स्वामाजिक परिणाम यही होना चाहिए कि अधिक और राजनीतिक सत्ता का अधिकधिक विकेंद्रीकरण और वितरण हो।

लोकतन्त्र न राष्ट्रीय संयोजन सभी सपन होगा जब योजनाओं का निर्माण और घमन लोगों पर ऊपर से लादने के बजाय टेठ नीचे से सोप स्वयं चुक करेंगे। इसलिए सच्चे धार्मिक संयोजन का मार्ग यही है कि नीचे

से सुगठित व्यवस्थित छोटी-छोटी इकाइयां गांधी धीरे-छोटे-छोटे कस्बों में भी बनाई जायें। प्रसन्नता की बात तो यह है कि हमारे देश की पंच वर्षीय योजनाओं में इस बात का प्रबल प्राथमिक लक्ष्य में विकेन्द्रीकरण का ध्यान रखा गया है। सामुदायिक विकास योजनाएं धीरे-राष्ट्रीय विकास-कक्षों की योजनाएं इसी दिशा में लिये गए सही कदम हैं। इनकी छोटी-छोटी बातों में भले ही थोड़ा-बहुत मतभेद हो। स्थानीय योजनाओंवाले मान हमारी राय में इस-राष्ट्रीय योजना का मूल है। परन्तु ये स्थानीय योजनाएं तभी सफल होंगी जब इनपर ध्यान करने के लिए सतत धीरे-सुगठित पंचायतों देश भर में होंगी। यदि इस प्रकार अपने राष्ट्रीय जीवन के निर्माण का काम हम नीचे से ग्राम-पंचायतों के निर्माण से लेकर ऊपर से करेंगे तो हमारे देश के नागरिक जीवन धीरे-व्याप-प्रकाशन में भी प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देगा।

ग्राम-पंचायतों की प्राचीन परंपरा इस देश में धावकक्ष की तरह इस पद्धति की नही संपूर्ण समाज को एक मानकर चलनेवासी सुगठित लोक-तंत्र की थी। पंचों को प्रत्यक्ष परमेश्वर के समान माना जाता था। पंचायतों के चुनाव प्रायः सर्वसम्मति से होते थे। जहाँपर सब एकमत नहीं हो पाते थे वहाँ पक्षियां झगड़कर छोटे-बच्चे से एक पक्षी सत्ता सी जाती थी। लोकतंत्र की स्वस्थ परम्पराओं के आधार पर यदि हम देश का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें अपनी पंचायतों को फिर से जीवित करना होगा और उनके निर्माण धीरे-संचालन में सर्वसम्मति से काम करने की पद्धति शुरू करनी होगी। धावा है, देश के राजनीतिक दल इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे धीरे-ग्रामपंचायतों को दलगत राजनीति के प्रभावों नहीं बनायेंगे। हम सबको चाहिए कि अपनी पुण्य पंचायत-संस्था को पुनर्जीवित करें और उसे दल धीरे-संप्रदायों के विचारों से भ्रष्ट और ऊपर रखकर संस्कारशील सार पद्धति से पंचायतों को बसायें तभी हम भारत का उसकी सच्ची प्रकृति के अनुकूल निर्माण कर सकेंगे।

सबसे सही राज्य-सरकारों ने ग्राम-पंचायतों और व्याप-पंचायतों की स्थापना के बारे में प्राथमिक कानून भी बना दिये हैं। इन प्रत्येक स्थापना की विशेष परिस्थिति धीरे-परम्पराओं के अनुसार इन कानूनों में विविधता

काफी है। अब यह जरूरी है कि इन पंचायतों के काम के अनुभव को एकत्र किया जाय और प्रशासन न्यायदान और राष्ट्र के यांत्रिक संयोग की दृष्टि से इन्हें सबसे उत्तम साधन किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसका प्रयत्न किया जाय। ग्राम-संघायतों और न्याय-संघायतों के पारस्परिक सम्बन्ध घनग-घनग राज्यों में घनग-घनग प्रकार के हैं। कुछ राज्यों में न्याय-संघायतों ग्राम-संघायतों की उपसमितियों के रूप में काम कर रही हैं। दूसरे कई राज्यों में वे स्वतंत्र रूप से घनग-घनग काम कर रही हैं और दोनों में शायद ही कोई सम्बन्ध है। इसी प्रकार प्रशासन और कर समाने सम्बन्धी पंचायतों के अधिकार भी घनग-घनग राज्यों में घनग घनग हैं।

भारत सदियों से पंचायतों का कर रहा है। वेदों आसकों धर्म-सूत्रों महानारत मनुस्मृति शुक्ल-मीमंसा कौटिल्य के धर्मशास्त्र और मुस्लिम शासकों तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कायदों में उनके विस्तृत उल्लेख पाये जाते हैं। फिर भी राजवंशों और साम्राज्यों का सत्तान और पतन हुआ परन्तु ये छोटे-छोटे गणराज्य निर्वाचन रूप से अपना काम करते रहे। हाँ ब्रिटिश राज्य में लेकर इनकी बहुत बड़ा बर्का लगा। इसका कारण धर्मियों का धार्मिक लोभ था। वे सत्ता को पूरी तरह से अपने हाथों में रखना चाहते थे इसलिए सत्ता की बनूनी भी अपने ही हाथों में उठाने में ली। परन्तु अब पुनः पामों को फिर से एकत्र किया जा रहा है और हमें निश्चय है कि बांधीजी के सपने के नवीन भारत के निर्माण में पंचायतों बड़ा महत्वपूर्ण काम करेंगी। विद्यमान कुछ बरकों में पंचायतों बड़ी दुर्घटा में पहुँच गई थी और लोग उनकी क्षमता और प्रतिष्ठा में निराशा हो चुके थे। इसलिए ग्रामीण समाज में इनकी शक्ति और उपमापिता के बारे में पूरा निराशा उत्पन्न होने में स्वाभाविक कुछ समय लगेगा। फिर भी निराशा का रतीभर भी कारण नहीं है।

पश्चिम के लोचन में घनेक लाभिया है। अबमें यांत्रिक जड़ता और सत्ता का धार्मिक वैग्रीकरण हो गया है। अपनी इस प्राचीन विरासत को यदि हम फिर से धरना में हो भारत अपना और हमारे घनेक राष्ट्रों का भी अपने उद्यहरण द्वारा बांधी बना कर सनेगा। सत्ता और नर्पति की

से सुसंगठित व्यवस्थित छोटी-छोटी इकाइयाँ गाँवों और छोटे-छोटे कस्बों में भी बनाई जायें। प्रसन्नता की बात तो यह है कि हमारे देश की पंच वर्षीय योजनाओं में इस बात का प्रभावी भाषिक क्षेत्र में विकेंद्रीकरण का ध्यान रखा गया है। सामुदायिक विकास योजनाएँ और राष्ट्रीय विकास कानूनों की योजनाएँ इसी दिशा में लिये गए सही कदम हैं। इनकी छोटी-छोटी बातों में भले ही बड़ा-बहुत मतभेद हो। स्थानीय योजनाओंवाले मान हमारी राय में इस राष्ट्रीय योजना का मूल है। परन्तु वे स्थानीय योजनाएँ तभी सफल होंगी जब इनपर ध्यान करने के लिए सक्षम और सुवर्धित पंचायतों बैध भर में होंगी। यदि इस प्रकार अपने राष्ट्रीय जीवन के निर्माण का काम हम नीचे से ग्राम-पंचायतों के निर्माण से लेकर सच्चे दिल से करेंगे तो हमारे देश के नागरिक जीवन और स्वायत्त-प्रशासन में भी प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देगा।

ग्राम-पंचायतों की प्राचीन परंपरा इस देश में व्यवस्था की तरह बल-पद्धति की नहीं संपूर्ण समाज की एक मानकर चलनेवाली सुवर्धित लोक-तंत्र की थी। पंचों को प्रत्यक्ष परमेश्वर के समान माना जाता था। पंचायतों के चुनाव प्रायः सर्वसम्मति से होते थे। अतएव सब एकमत नहीं हो पाते थे वहाँ पवित्रा डालकर छोटे बच्चे से एक पक्षी उठवा सी जाती थी। लोकतंत्र की स्वस्थ परम्पराओं के आधार पर यदि हम देश का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें अपनी पंचायतों को फिर से जीवित करना होगा और उनके निर्माण और संशासन में सर्वसम्मति से काम करने की पद्धति शुरू करनी होगी। प्राचा है देश के राजनीतिक दल इस प्रश्न पर अंधीरतापूर्वक विचार करेंगे और ग्रामपंचायतों को बसगत राजनीति के अखाड़े नहीं बनायेंगे। हम सबको चाहिए कि अपनी पुरानी पंचायत-संस्था को पुनरुज्जीवित करें और उद्येयन और संप्रदायों के विचारों से भ्रमन और ऊपर रखकर संस्कारशील खदार पद्धति से पंचायतों को बनायें तभी हम भारत का उसकी सच्ची प्रकृति के अनुरूप निर्माण कर सकेंगे।

लगभग सभी राज्य-सरकारों ने ग्राम-पंचायतों और स्वायत्त-पंचायतों की स्थापना के बारे में आवश्यक कानून भी बना दिये हैं। हाँ प्रत्येक स्थान की विद्येय परिस्थिति और परम्पराओं के अनुसार इन कानूनों में विविधता

नाफ़ी है। अब यह जरूरी है कि इन पंचायतों के काम के अनुभव को एकत्र किया जाय और प्रशासन न्यायवान और राष्ट्र के धार्मिक संयोजन की दृष्टि से इन्हें सबसे उत्तम सामन किस प्रकार बनाया जा सकता है इसका प्रयत्न किया जाय। ग्राम-पंचायतों और न्याय-पंचायतों के पारस्परिक सम्बन्ध अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार के हैं। कुछ राज्यों में न्याय-पंचायतें ग्राम-पंचायतों की उपसमितियों के रूप में काम कर रही हैं। दूसरे कई राज्यों में ये स्वतंत्र रूप से अलग-अलग काम कर रही हैं और दोनों में शायद ही कोई सम्बन्ध है। इसी प्रकार प्रशासन और कर लगाने सम्बन्धी पंचायतों के अधिकार भी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग हैं।

भारत सदियों से पंचायतों का घर रहा है। वेहों जातकों, धर्म-सूत्रों महाभारत मनुस्मृति शुक्र-नीतिसार कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मुस्लिम शासकों तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कायदों में उनका बिसृजित जन्म पाये जाते हैं। कितने ही राजवंशों और साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ परन्तु ये छोटे-छोटे गणराज्य निर्वाचन रूप से अपना काम करते रहे। हाँ ब्रिटिश राज्य में ज़रूर इनको बहुत बड़ा बलका लगा। इसका कारण प्रंधनों का अत्यधिक लोभ था। वे सत्ता को पूरी तरह से अपने हाथों में रखना चाहते थे इसलिए समान नौ बसूनी भी अपने ही हाथों में उठाने से सी। परन्तु अब पुराने धागों को फिर से एकत्र किया जा रहा है और हमें निश्चय है कि पाँचीसी के सपने के महीन भारत के निर्माण में पंचायतें बड़ा महत्वपूर्ण काम करेंगी। पिछले कुछ दशकों में पंचायतें बड़ी दूराना में पड़ चुकी थीं और सोप उनकी अमरता और प्रतिष्ठा में बिनाश हो चुके थे। इसलिए ग्रामीण समाज में इनकी शक्ति और उपवादिता के बारे में कुछ बिस्वास उत्पन्न होने में स्वाभाविक कुछ समय लड़ेगा। फिर भी निरन्तर रसीमर भी कारण नहीं है।

पश्चिम के लोकप्रिय में अनेक सामियाँ हैं। उन्हें अनेक प्रकार से सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण हुआ है। अर्न्तः इस अर्थ में कि हम यदि हम फिर से अपना लें तो भारत बना और दूसरे देशों में भी जाने उदाहरण हाथ बांधी बना कर सकते हैं।

विकेंद्रित व्यवस्था और वर्ग-यत्न-मुक्त (सारे समाज को एक मानकर) प्रबन्ध में इस पद्धति के दो बड़े गुण हैं। गांधीजी ने कहा है "केन्द्र में बैठ आदमी बैठ बाईं और शासन-प्रबन्ध करें यह लोकतंत्र नहीं है। सच्चे लोक-तंत्र में तो बाईं में बैठकर लोग नीचे से काम करते हैं। गांधी में स्वयं और सक्रियवादी धर्म-संभावनों की स्थापना होती और वे मूर्ख-भूक से काम करने लगेगी। तब लोकतंत्र की पद्धति का आर्थिक संयोजन सफल होगा।

८

संयोजन और सर्वोदय

विनोबाजी के सर्वोदय की कल्पना हममें से बहुतों को कुछ घबराव-सी लगे ही लग रही हो परन्तु मूलतः देखा जाय तो भाव हम इस बारे में बितने भी अच्छों का प्रयोग करते हैं उन सबसे बड़े शब्द और कल्पना भी दोनों अधिक अच्छे हैं। सच तो यह है कि मैं उसका उपयोग केवल इस लिए जान-बूझकर नहीं कर रहा हूँ कि हम सभी अपनेको उस योग्य नहीं पाते और हमें संकोच होता है कि उस उच्च कल्पना और पवित्र शब्द का कहीं दुस्प्रयोग न हो जाय। भाव सारे भारत में एक मकल-सा चल रहा है। कहीं पञ्चवर्षीय योजना को सफल बनाने की धुन है तो कहीं बेटी को सुधारने की चिन्ता है कहीं छोटे-बड़े उद्योग-कहा-कहा छोटे बार्म इसकी चिन्ता है तो कहीं समाज-सुधार और समाज-कल्याण की मान-बोझ चल रही है। कहीं भाषा के विवाद जोर-जोर से चल रहे हैं तो कहीं राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों की बरमा-गरम चर्चाएं चल रही हैं। कहीं फूट है तो कहीं एकता की कोशिश और धपीसों जाड़ी हो रही हैं। मरसब यह कि भाव देश में इस प्रकार एक लूफान-सा घामा हुआ है परन्तु इन सबके बीच विनोबा की बुर्जुअ मूर्ति भट्ठान की भाँति बूझटा के साथ लड़ी है। बों बीबने में वह सीम्य और शान्त हैं, परन्तु अपने अन्दर वह सच्चे अतीत की सारी शक्ति समेटे हुए हैं और उनकी छाँवों में अविध्य का स्वप्न भी मानो साकार लड़ा है।^१

^१ फेरुस सर्वोदय-सम्बन्ध के लिए प्रबन्धमन्त्री मेहरजी अब लंबेरा।

पंडरपुर सर्वोद्यम सम्मेलन के समस्त भाषण देते हुए विनोबा ने बड़ा जोर देकर कहा कि संयोजन ठेठ नीचे से भाग से ऊपर की ओर होना चाहिए। विस्ती में बैठकर देश के लाखों गांवों के लिए जो योजना बनेगी वह सही नहीं होगी। इसी बात का समर्थन करते हुए मेहसूजी ने विस्ती की एक पत्रकार-परिषद में कहा था—‘सच्चा संयोजन सरकार के किसी धर्म के द्वारा हो ही नहीं सकता।’ अगर सच्चा और व्यावहारिक संयोजन व्यापक और पर करमा है तो उसमें लोगों का—ठेठ गांवों के लोगों का—सहयोग होना चाहिए। “बाहिर है कि यदि बापकी योजनाएं ठेठ गांवों तक पहुंचना चाहती हैं तो वह काम नीकरवाही इंसान से केवल ऊपर बैठकर नहीं बन सकता। नींद, नीकर तो रहेगे ही। हर राष्ट्र में होते हैं उनकी निन्दा करने में कोई धाम नहीं। केवल वे ही अपने मनमाने ढंग से काम करते रहें तो वह बुरा—घटरनाक—होता है। परन्तु वे जनता की इच्छा के अनुसार और उसके समुक्त काम करेये धर्मात् लोगों सहयोग से काम करते हैं और एक-दूसरे की मदद करते हैं तब काम धम्मा होता है।

भाबू में सामुदायिक विकास योजनाओं के बारे में हुई परिषद में श्री गांवों की विभिन्न संस्थाओं अर्थात् ग्राम-पंचायतों, सहकारी समितियों और छात्राओं का सहयोग लेने पर बड़ा जोर दिया गया था। श्री जनार्दन राय मेहता के समापनत्व में योजना-कार्यों के बारे में श्री समिन्त्रि एन्टर्प्राइज है उसने भी विकास-संघों की पंचायतों तक वास्तव का निर्देशन करना पर जोर दिया है और कहा है कि ग्राम-पंचायतों का वास्तविक विकास हो जाने चाहिए। व्यावहारिक दृष्टि से भी हमको इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। भारत एक बहुत विभिन्न देश है जिसमें बहुत से विभिन्न जातियाँ हैं। इसकी आबादी और धर्म भी बहुत हैं। इसलिए योजना-आयोग के लिए यह समझना है कि इन विभिन्न जातियों और जातियों को जानकर उसके मुहूर्तों के अनुसार ही योजनाएं बनानी हैं। शक्ति विचारों परिलहन संसार और इन बातों को ध्यान में ली लोगों को धारण दिखानी है। इन बातों को ध्यान में रखकर ही उन योजनाओं में होनी है जो ठीक से चल सकें और जनता के

हैं और जो जनकी आशों के सामने बसती हैं। इसलिये इस प्रकार के योजनाओं के क्षेत्र को अधिक बढ़ाया जाहिye और लोगों को प्रोत्साहन भी अनुकूलताएं प्रदान करनी चाहिए कि वे स्वयं अपनी योजनाएं बनायें और प्राथमिकता के अनुसार उन्हें कार्यान्वित भी करें। प्रसन्नता की बात है कि लगभग समस्त राज्य-सरकारें अब यह प्रयत्न कर रही हैं कि स्थानीय योजनाएं ग्राम-पंचायतों ही बनायें और वे ही उन्हें पूरी भी करें।

परन्तु हम अपने सही उद्देश्य को ठीक वा सही ढंग से राज्य के संयोजकों की दृष्टि नीककरवाही से भिन्न होगी। हम सबको यह पक्की गांठ बांध लेनी चाहिए कि लोकतन्त्र में संयोजन ठीक सफल होया जब लोग अपना संयोजन खुद अपने लिए करेंगे। फिर लोकतन्त्र का मुख्य तत्व यही है कि लोगों का आदर हो। जबतक उनके हाथों में काफ़ी अधिकार नहीं होंगे और उन्हें अपनी जिम्मेदारियां पूरी करने का अवसर नहीं दिया जायगा। जबतक उनमें नागरिक कर्तव्यों का भाव उसके लिए आवश्यक सूझ-बूझ और अभिक्रम नहीं आयेगा। लोकतन्त्र में संयोजकों का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वे मानव का विकास करें। जैसा कि प्रधान मंत्री ने कहा था, सबसे महत्व की बात तो यह है कि आप मानव की तरफ़ ध्यान देते हैं। यदि लोकतन्त्र में मनुष्य को अपने विकास का अवसर नहीं मिलता उसकी व्यक्तित्व को दबा दिया जाता है तो वही संयोजन में सफलता की अधिक आशा नहीं की जा सकती।”

इसका मतलब यह नहीं कि हम गांधी को अलग-अलग रखने हैं और देश के सेवा भाग से उनका कोई सम्बन्ध न हो। प्राचीन काल में भी ऐसा नहीं था। उनका आपस में तथा ऊपर की बड़ी शक्ति जिसे और प्रान्त के स्तर की संस्थाओं से बराबर सम्बन्ध था। ग्राम-पंचायत के ऊपर राज्य पंचायत बिना पंचायत और राज्य-सरकार होगी। परन्तु ऊपर की पंचायत का मुख्य काम देश-भारत मार्ग-दर्शन और समन्वय का ही होया। ग्रामों और कस्बों को यह समझ दिया जाय कि अपने विकास-कार्यों के लिए उन्हें अपने ही धन-जन के साधनों पर निर्भर रहना चाहिए। उदाहरणार्थ आसिफ या पूरी बेकारी की समस्या को प्रत्येक स्थान के लोग खुद ही हल करें।

दिसती है योजना-आयोग से यह धाया न करें। अगर सीमा में यह दिया जाय कि अपने-अपने गांवों की बेकारी को मिटाने की योजना और उसका समस्त उन्हें बुंद करना होया तो सोय अपनी स्वामीय योजनाओं में अपने बेकार मनुष्यों के लिए काम पैदा कर सेंगे और उन्हें पुन भी करवा लेंगे। बहुत हुआ तो इसके लिए जिसे को एक इकाई मान लिया जाय। गांवों का पूरा विकास केन्द्रीय सत्ता करे यह धाया करना व्यर्थ है।

इसलिए सर्वोदय का भावार्थ प्राथमिक और राजनीतिक सत्ता के अधिक से-अधिक विकेन्द्रीकरण द्वारा सबका कल्याण साधन है। बाकीभी हमारा कहा करते थे कि यह स्वशास्य विकस्य होया जो हर पाष में स्वतन्त्रता का लेख नहीं जमा सके। प्रवाल मन्त्री और सामुदायिक विकास-योजनाओं के मन्त्री भी वही मानते हैं। वर्यपि हम 'सर्वोदय' शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं फिर भी हमारी सभी विकास-योजनाओं का लक्ष्य तो उसी प्रादर्श की बन्दी-से-जम्मी प्राप्त करना है। यह भी माना कि सर्वोदय के नमूने की समाज-रचना हम बन्दी नहीं कर सके परन्तु हमारे लक्ष्य के बारे में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। भारत सर्वोदय के नमूने के लोपठान की स्थापना करना चाहता है और उसका संवाजन विकेन्द्रीकरण सहकारिता और साति के सिद्धान्तों पर होना। इस विषय में किसीको भ्रम न रहे। इसलिए विकेन्द्रीकरण हिता और अन्तर्जाल की दिसा में बहुत-कड़ी भी काम होता दिखाई दे, उसे दृढ़ता के साथ रोक दिया जाना चाहिए।

पश्चिम के देशों में सबका अधिकारमयता (टोटलिटेरियम) देशों में सर्वोदय की जिन पद्धतियों से काम लिया जा रहा है उनसे भ्रम नहीं भारत में करने की उद्य भी जरूरत नहीं है। अनादि काल से हमारी अपनी विरासी संस्कृति रही है। हमें अपना संयोजन उसीके अनुकूल करना चाहिए। देश हम दूसरे देशों में भी ग्रहण करने लायक बातें कर लेंगे और उनके अनुभव से लाभ उठावेंगे परन्तु हम अपने भुल धाधार का छोड़कर बाहर की हवा में नहीं पड़ेंगे और अपने-आपको नहीं लोपेंगे। यदि हम अपने घर को ही बेसले और साथ ही दूसरों की अछी बातों के लिए अपने विभाव को गुना भी रग सके तो धाया है हम कोई राजनीतिक और प्राथमिक पद्धति भी बुंद निताने जो हमारे लिए उपयोगी हो और

दूसरों के लिए भी मार्ग-दर्शक हो सके।

६

नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

कारधाने उत्पादन की बुद्धि और उसका उपयोग ये सब देश की प्रगति के लिए आवश्यक हैं परन्तु प्रगति केवल यहीं समाप्त नहीं हो जाती। 'हरेक सम्पत्ता की जड़ में कुछ नैतिक सिद्धान्त होते हैं और प्रत्येक राष्ट्र को अपने जीवन-व्यवहार में कुछ नैतिक पैमानों का मानवर्षों पालन करना होता है। यदि किसी राष्ट्र में या उसके निवासियों में इनकी कमी है तो विज्ञान और बल-साधन की सारी प्रगति—जैसे भी हम धारण चाहते हैं—कोई मूल्य नहीं रखती। बल में जाकर किसी भी राष्ट्र या उसके निवासियों की प्रतिष्ठित का नाप उनकी नीतिमत्ता और आचार-व्यवहार से ही होती है।

देश में इस समय जो हिंसा और अनुसाधनहीनता बढ़ती जा रही है और व्यवहार में आचार का स्तर गिरता जा रहा है उसकी यदि हम उपेक्षा करेंगे तो भारी हानि उठाने से। अपने उद्देश्यों की सिद्धि में सामन-बुद्धि पर गांधीजी बड़ा जोर देते थे। हम सबकी भी बुद्धि का गिरना अप्रह्व रक्खेंगे तब ही हम अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता पा सकेंगे। दूसरे मार्ग बलवत् होगी और उनसे राष्ट्र की केवल हानि ही होगी। वे राष्ट्र की नैतिक प्रतिष्ठित और पैमानों को गिराने के प्रतिरिक्त देश में कूट और कलह ही फैलावेंगे।

भारत में आर्थिक संयोजन का एक सार्वसमय प्रयोज्य बड़े पैमाने पर इस लोकतन्त्र में शुरू किया है। यह कदम अत्यन्त महत्वपूर्ण है—न केवल भारत के लिए, बल्कि समस्त सभ्यता के लिए। यद्यपि 'समाजवाद' इसकी सफलता पर सबकी आँखें लगी हुई हैं परन्तु इसका स्थायी प्रभाव केवल हमारी नैतिक सफलताओं पर नहीं बल्कि इसपर भी निर्भर करेगा कि हमने इसके साथ-साथ अपना नैतिक और आध्यात्मिक बल कितना बढ़ाया। संयोजन मुख्यतः मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार से सम्बन्ध रखता है। इसलिए संयोजन की सफलता मानवी अर्थात् नैतिक और आध्यात्मिक बलों

की दृष्टि से नापी जायगी। यदि समाज में ये मानकी युक्त नहीं बड़े हैं, यदि मनुष्यों के दिल बड़े नहीं हुए हैं। उनकी दृष्टि व्यापक नहीं हुई है और परिणामात् कुछ और उच्च नहीं हुए हैं तो संयोजन का सारा आधार ही चला जाता है। दूसरे पक्षों में भारत को केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में ही नहीं अपने घर में भी मनुष्य मनुष्य और समाज के व्यवहारों में भी पक्ष दोनों का वास्तव करना होगा अर्थात् अपने महान् सद्गुणों की सिद्धि के लिए हमें नैतिक मूल्यों और साधन-सुविधा का प्राप्रह रचना होगा।

संसार के पक्षों में भारत को भोग प्राप्त निश्चित रूप से बाहर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। यह धारणा उसे इसी कारण प्राप्त हुआ है कि संसार के अर्थों की तरफ देखने और उनको हल करने में उसकी दृष्टि व्याप और निष्पक्षता की रही है। यह प्रतिष्ठा और बाहर बाहर सभी बना रह सकता है जब हम अपने घर में भी उन्हीं सिद्धान्तों पर समझ करने। यदि हमारी करनी और कबनी में अन्तर होता तो हमारा बाहर करने के करने बाहर के लोक हमारी हींसी उखाड़ेंगे। तथापि अर्थों के बड़े-बड़े नेताओं ने हिंसा प्रेम और न्याय-अर्थों को कुछ बताया है और यही कहा है कि कटिल-से-कटिल समस्याओं को स्थायी रूप से हल करने का मार्ग सद्भाव निष्ठा और सहयोग ही है। अथवा कुछ के उपदेशों का सार भी यही है कि हिंसा और प्रेम का जवाब अहिंसा और प्रेम से हो। हिन्दू धर्म इस्लाम और ईसाइयत में भी अहिंसुता आत्मसाध और दूसरे के विचारों का बाहर आदि मुक्तों पर बहुत जोर दिया गया है। अपनी वाक्यादी प्राप्त कर लेने के बाद आज यदि भारत इन धारणों और धारणों सत्यों को भुला देता तो आज संसार उनकी तरफ भिन्न बाहर की दृष्टि से देखता है निश्चित रूप से उसे यह भी होगा। इसलिये परिस्थिति के इन सत्यों को हमें सदा सच्ची तरह समझ लेना चाहिए। साम्प्रदायिक दम धाज देश में प्राप्त से मिल रहे हैं। वे देश में प्राविष्ट वृत्तियाँ पैदा कर रहे हैं जो भारत के लोक सभी जीवन और अत्यन्त आवादी के लिए भी अत्यन्त सत्करनाक हैं। इस घाते का हम सबको कुछ अज्ञा और निरवय से सामना करना चाहिए।

प्राप्ति और अहिंसा के लिए हम अपने-आपको प्रविष्ट कर दें और उसके जो भी परिणाम हों उन्हें सहने को तैयार रहें। हमें तो निश्चय है कि

यह डेप और हिंसा बहुत अधिक देर तक नहीं टिकेंगी। वह स्वयं नष्ट हो जायगी। ईसा ने कहा था 'जो तसवार के बस पर धाने बढ़ना चाहेंगे उनका नाश तसवार ही करेगी। इस बुनियादी सिद्धान्त को हम माद रखें और सम्प्रदायवाद तथा हिंसा का पूरी ताकत के साथ मुकाबला करें। हम यह भी याद रखें कि लोगों के हृदय में हम जितना प्रवेश करने और उनके विश्वास का जितना संपादन करेंगे उतनी ही हमारी सच्ची ताकत बढ़ेगी।

१०

नैतिक और भौतिक संयोजन

बुद्ध-अय्यन्ती के अवसर पर राष्ट्रपति राबेन्द्रप्रसाद ने बैठावनी देते हुए कहा था 'यदि मानव-जाति ने धर्मात्म की तरफ ध्यान नहीं दिया और सत्य, अहिंसा और प्रेम के बुनियादी गुणों का विकास नहीं किया तो वह अपनी सारी सुख-समृद्धि से हाब हो बैठेगी।' प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने भी आकाश में समझनेवाले ध्वनि के कासे-कासे वाद्यों की ओर इशारा करते हुए कहा कि यदि हमने इनपर काबू नहीं किया तो वे धमक जायेंगे और यह काबू पाने का मार्ग मनवान् बुद्ध ने बता दिया है। हमें अपने हृदयों में और विचार में एक सच्ची अग्नि करनी होगी। डॉ० राधाकृष्णन बुद्ध-अय्यन्ती समारोह-समिति के उद्घापति थे। उन्होंने कहा—'यदि हमने अपने तौर-तरीके नहीं बदले तो धार्मिक अन्धकार की रात हमपर छा जायगी और विज्ञान को सारी देशों को तथा सांस्कृतिक वैभव को हम खो देंगे। मनुष्य का जोर पतन होगा और वह फिर बंसी अवस्था में पहुँच जायगा।' बड़ाबैठ के प्रधान मंत्री श्री नू ने कटक में दिये अपने एक भाषण में आनेवाले संकटों से बचने के लिए मानव-जाति से अपने नैतिक मानदण्डों को ऊँचा उठाने की बड़े जोरों से अपील की। धाब खो सने अपने सारे व्यक्तिगत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीति के सिद्धान्तों को पूरी तरह खुला दिया है। इसकी श्री नू ने बड़ी निन्दा की।

निःशंकेह करोड़ों मानव धाब अपनी प्राबन्धिक और मामूली जरूरतों भी नहीं पूरी कर पाते हैं। अतः उनका जीवन-स्तर ऊपर उठाना परम आवश्यक है। प्रत्येक स्वतन्त्र और लोकतन्त्री देश के नागरिक को कम-से

कम से नीचे की अवस्था ही मिल जानी चाहिए, परन्तु हमें घबड़ी तरह समझ सेना चाहिए कि केवल इन भौतिक जरूरतों की पूर्ति कर देने से ही सान्तिपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापना नहीं हो सकेगी। जबतक लोगों के दिलों और दिमागों में सच्चा परिवर्तन नहीं होगा तबतक मनुष्य जाति को भौतिक समृद्धि भी नहीं मिलेगी।

बाहिर मनुष्य केवल रोटी खाकर ही नहीं जीता और न भौतिक सुख सामग्री से मनुष्य को सच्चा मानसिक और आत्मिक सुख ही मिल सकता है। हमारे देश की संस्कृति में तो आध्यात्मिकता से नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को ही सबसे अधिक महत्व दिया गया है। इस देश में तो मनुष्य के मन-बैसाख को देखकर नहीं उसकी सेवा और त्याग को देखकर उसका आदर होता है। यह सच है कि बिछटा घबड़ी जीवन नहीं है और आधुनिक समाज को चाहिए कि वह एक निश्चित भाषा में कम-से-कम भौतिक सुख सुविधा तो सबको मिले ऐसा प्रयत्न करे। परन्तु साहसी का अर्थ हरि इतना नहीं है और न जरूरतें बढ़ा सेना प्रगति की निघानी है। हमें भौतिक और नैतिक कल्याण और विकास के बीच एक समुजन कायम कर लेना चाहिए। हमें सदा यह ध्यान रखना होगा कि अपने आर्थिक संयोजन में लोगों को पूरा करने के साथ-साथ नैतिक पुनरुत्थान के लिए अनुक्रम परि स्थितियाँ निर्माण करना भी हमें करते रहना है। नहीं तो हम ऐसे मार्ग पर चल पड़ेंगे जो हमारी संस्कृति और राष्ट्र की आत्मा के प्रतिकूल होया। जबतक देश के निवासी—किसी और पुरखे—नेक और ईमानदार नहीं होंगे हम राष्ट्र की नींव को मजबूत नहीं कर सकेंगे। राष्ट्र की सन्तति बढ़ी-बढ़ी योजनाएँ, बारगलाने या निधान इलाक़ों नहीं हैं। राष्ट्र को सच्ची सन्तति और सुख का कारण तो वास्तव में समझदार और जिम्मेदार नागरिक हैं जिन्हें अपने कर्तव्यों और अधिकारों का पूरा-पूरा ज्ञान है। डॉ० रामाचन्द्रन ने हाल ही में कहा था—“बुद्ध भगवान के असीन स्मारक उनकी मार में गड़े बिने गए खूब नहीं, बल्कि उनके सिद्धांतों पर—धर्म-मय पर—धम्म करनेवाले सत्पुरुष हैं।” भारतीय जीवन-राष्ट्र का चिह्न भी धर्मचक्र है जिसका अर्थ है सच्ची प्रगति धर्म के अर्थात् कर्तव्य और सम्मान के अनुसरण में ही है। यह हम चिह्न को हम भूमा देने से तो

की कोसिस करेगी तब सांघित-सेवा संस्था में कम होने पर भी प्रभुजन का भी मुकाबला कर सकेगी।

इस दृष्टि से देखें तो भारत के सिर पर एक महान जिम्मेवारी है। उसकी सारी संस्थाएँ जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित हैं। यहाँ के अधिपति चिन्तक और नेता अनाधिकार से अहिंसा धारित और आध्यात्मिक शक्ति पर सबसे अधिक जोर देते पाये हैं। वैसे कि हमारे प्रधान मंत्री ने पत्रकारों की एक परिपद में कहा था—'सत्यतावादी हमारे वैदेशिक नीति इन्हीं बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित है। उसके मूल में आर्थिक परिस्थितियाँ नहीं हैं। कुछ और अशोक के समय की परम्पराएँ उसकी बुनियाद में हैं। इस विचार को हमारे प्रधान मंत्री ने अपने हास्यकाव्य में चिरस्मरणीय भाषण में बहुत सुन्दर ढंग से रक्खा है। उन्होंने कहा था—'मैं यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि सम्राट अशोक की आबाज भारत की आबाज है और दुनियाँ से आकाश में पुँज रही है। यही भारत की बल देती है। यद्यपि भारत अनेक बार बिरा परन्तु आत्मा की यह अक्षुण्ण शक्ति सदा हाथ पकड़कर उसे उमर चढ़ाती रही है और आज यदि इस पीढ़ी के हम भारतवासियों ने इस आबाज को सुना बिना जो हमारे सामने महारमा गांधी की बाणी के रूप में प्रकट हुई है यदि किसी बाहरी साध के भोग में पड़कर हमने इस आबाज को सुना बिना और दूसरे रास्ते पर हम चल पड़े तो समस्त जेना हमारे दुरे बिगड़ा पड़े।

१२

साध्य और साधन

संसार में स्वभावतः लोगों के विचारों और धारणों में भेद होता ही है। यही राष्ट्रों में भी होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि इन मतभेदों को दूर करने के लिए मनुष्य और राष्ट्र एक-दूसरे से डोप करें, लड़ें मझें और हिंसा-काण्ड या युद्ध करें। जो राष्ट्र भिन्न-भिन्न प्रकार की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक पद्धतियों में विश्वास करते हैं, वे अपने पारस्परिक व्यवहार में सांघित परस्पर आधार, से काम ले सकते हैं।

इसी प्रकार यदि व्यक्तियों के बीच मतभेद है तो वे भी परस्पर घाबर और सहिष्णुता से काम लेकर सहयोग कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि हिंसा और द्वेष से मतभेद कभी दूर नहीं किमे जा सकते। वे तो शान्ति के साथ मित्रतापूर्वक बातचीत कर, एक-दूसरे को समझने का यत्न करते और सहयोग से ही दूर हो सकते हैं। इसीलिए मांजीमी हमेशा इस बात पर बड़ा जोर दिया करते कि उष्ण भावों केवल कुछ और पवित्र साधनों से ही शांत हो सकते हैं। वह कहते थे कि साधन बीज है और साध्य वृक्ष। वैसे बीज होना वैसे वृक्ष होना। इसी प्रकार वैसे साधन होना वैसे साध्य होगा। यह सम्बन्ध घटूट है। वे यह भी कहते थे कि हमारा साधन जितना शुद्ध होगा सफलता उतनी ही बल्की मिलेगी। यह क्वाल गलत है कि इससे सफलता बेरी से मिलती है। उन्होंने लिखा है— 'यह मार्ग धायद सम्बा—बहुत सम्बा—मानुष हो, परन्तु मुझे निश्चय है कि यही सबसे सीधा और नजदीक का रास्ता है।' आध्यापक आरुख हक्सले ने अपनी पुस्तक 'एन्ड एन्ड भीस' में इसी सिद्धान्त पर—प्रार्थना महान और उष्ण भावों पवित्र साधनों से ही प्राप्त हो सकते हैं—बड़ा जोर दिया है। परन्तु कितने दुःख की बात है कि इस प्रकार के विचार रखने के कारण ही हमारे नेमी को अपने प्राणों का मुख्य चुकाना पड़ा। वह मानते थे कि साध्य बाकी भावों की प्राप्ति हिंसा और जोर-जबरदस्ती से नहीं हो सकती। हंगरी के वर्तमान प्रधान मंत्री ने कम्युनिज्म पर एक पुस्तक लिखी है जिसमें उसने कहा है— "समाजवादी समाज के निर्माण में हम बड़े-बड़े हत्याकांडों से प्रगति नहीं कर सकते। उसके लिए तो समाज के अन्दर ■ वर्तमान मतभेदों को दूर करने के लिए पहले जमघट हिंसा का उपयोग कम करना चाहिए। फिर लोकतंत्र की पद्धति से जनता में व्यापक रूप से सहकारिता की प्रवृत्तियाँ जमाना चाहिए। तब समाजवादी समाज की स्थापना हो सकेगी।"

धी नेमी का यह भी मत था कि चाहे जितने मार्क्स के सिद्धान्त और निदान बढसंगे क्योंकि "वैसे-वैसे सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ बदलती जाती हैं वैसे-वैसे मनुष्य की भी अपनी काय-पद्धति बदलनी ही होगी? सारी बात का सार इतने में था गया। प्रधान मंत्री श्री मेहरू ने अनेक बार कहा है कि धायदस संसार में यदि कोई सबसे

अधिक व्यक्तिगुण लोप हैं तो वे हैं साम्यवादी। वे उन्हीं नारों और सिद्धान्तों को लेकर अभी तक बैठे हैं जो बीसों वर्ष पहले मजे ही उपयोगी रहे हों परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में तो वे एकदम गैरमौजू हैं। आचार्य बिमोहा भावे भी कम्युनिस्ट मित्रों से कहते रहते हैं कि वे समय के साथ अपनी कार्य-प्रवृत्ति को बदलें और "घाबें मुड़कर" मार्क्स का अनुममन न करें। यह कहते हैं 'स्वयं मार्क्स भी मार्क्सवादी नहीं था।' इसमिए यह जरूरी है कि साम्यवादी भाई मार्क्स के सिद्धान्तों में समय के अनुसार संशोधन और सुधार करें। अब एतन बम और घंटरिख की उड़ानों का युग आ गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजाद संचार आति और अहिंसा के मार्ग से उत्तरोत्तर पारस्परिक सहयोग और सहिष्णुता की तरफ बढ़ रहा है। डेय संघर्ष और युद्ध की शक्तियां अब हटती जा रही हैं और उनका स्वान्त आन्ति आतुमाव और मानवता की शक्तियां बढ़ रही हैं। पिछले दो महा युद्धों में और इस युग के बीच युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक-दूसरे के प्रति अविश्वास भय और दुस्मनी पैदा करके अस्त्रास्त्रों के डेर लगाने से समस्याएं हल नहीं होती। यह सब व्यर्थ है। स्वाधीन आन्ति और दुख दिनों और विमात्रों को बड़ा बनाने से ही आनेवासी है। इसके लिए हमें अपने मतभेद और-जबरदस्ती से नहीं आन्ति से बैठकर बातचीत के द्वारा हल करने होंगे और परस्पर एक-दूसरे का आबर करना होगा।

निःसन्देह कासे मार्क्स एक सुज्ज्ञा विचारक और तत्त्वज्ञानी था। मनुष्य मनुष्य का खोजन न करे, इसका उपाय खोजने का उसने अपने बिल से बल किया परन्तु पिछले कई वर्षों में मार्क्स संगठनों के रूप और आकारों में जो महान् परिवर्तन हो गये हैं, इनकी कल्पना भसा उसे कैसे हो सकती थी। इसी प्रकार लोकतंत्र के तरीकों में उसके बाद जो विकास हुआ है इनका भी वह अनुमान नहीं कर सकता था। इन्द्रात्मक भीतिस्वाद का उसका सिद्धान्त उन बिना आन्ति और जर्मनी में जो तत्त्वज्ञान प्रचलित था उसी पर आधारित है। यदि आज वह होता और इस युग में आन्ति तथा लोकतंत्री तरीकों से कितनी जबरदस्त सामाजिक और मार्क्स आन्तियां हो सकती हैं यह वह देखता तो अपना प्रबल निःसन्देह दूसरे प्रकार से सिद्धता। महान्मा गांधी के सरपाग्रह ने मानव की प्रवृत्ति का चित्रण अर्न्त

सेम जुमा कर दिया है। इसका अध्ययन और सीख करने की जरूरत है।
 प्राचार्य विनोबा भावे ने भूदान और ग्रामदान-आन्दोलन में सिद्ध कर दिया
 है कि हिंसा की अपेक्षा अहिंसक आत्मिक कर्तव्य अधिक परिणामकारक होती
 है। इसलिए प्राधुनिक अनुभव और वैज्ञानिक प्रगति को ध्यान में रखकर
 मार्क्स के बताने सिद्धान्तों में अब मूलगामी फेरफार करना आवश्यक हो
 गया है। ऐसे समय पुराने विचारों को पकड़कर बैठे रहना मूर्खतापूर्ण और
 आत्मघात के समान है। सही तरीका तो यह है कि आज कम्युनिज्म के
 अन्दर जो अंतर्द्विरोध पैदा हो गया है उसपर शांति के साथ विचार करके
 नये मार्ग और नये तरीके ढूँढे जायें।

अर्थात् भारत के राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन का सम्बन्ध है
 हम बहुत प्रेम से स्वामत करके यदि देश में सार्वजनिक जीवन के मार्ग-दर्शक
 सिद्धांत क्या हों इसपर सब दल आपस में विचार-विमर्श करें। भारत
 अहिंसा शांति और पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्तों का सदा समर्थक
 रहा है। उसने साधन-दुर्लभ और स्वच्छ व्यवहार पर भी हमेशा जोर दिया
 है। इसलिए सभी दलों को अपने ऊहस्यों की प्राप्ति में कुछ साधन और
 शांति के मार्गों से ही काम करने में तैयारी आपस हो हम समझ नहीं पा रहे
 हैं। उदाहरण के लिए हम सब यह निर्णय कर सकते हैं कि अपने राजनैतिक
 उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हम हिंसा से काम नहीं लेंगे। यदि किसी दल के
 कोई सदस्य इस नियम को भंग करें और कभी हिंसा का अवसरमन करें
 तो उस दल का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने इन सदस्यों की अनुपस्थिति
 निम्ना करे और उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई करे। शासक दल को
 भी चाहिए कि देश में जो उचित राजनैतिक हस्तक्षेप हों उनका सामना
 करने के लिए हिंसा का प्रयोग न करे। मान लीजिये कि नहीं अपना
 रथ परिस्थिति खड़ी हो गई है और वहाँ जोभी जलानी पड़ी है तो शासन
 स्वयं ही उसकी व्यापक जाँच की यात्रा भी दे दे। यदि शासक दल तथा
 विरोधी दल इस प्रकार की स्वस्थ परिपाटियाँ बना लेंगे तो देश में भोवना
 की जड़ नष्ट हो जायेगी और बहु प्रगति भी कर सकेगा।

पहली बफाबारी

“हमारे अनेक कर्तव्य हैं। अपने परिवार की प्रति, समाज तथा प्रत्येक इन्के प्रति भी हमारी बफाबारी और कर्तव्य हैं और यदि मनुष्य विवेक से काम ले तो इनमें से प्रत्येक के स्थान का निर्भय बह कर सकता है। परन्तु यदि किसीके मन में इन बफाबारियों के बीच संघर्ष पैदा हो जाय तो प्रत्येक नागरिक को सबसे पहले और अधिक बफाबार रहना है अपने देश के प्रति और सब बफाबारियों का स्थान इसके बाद में होना। बावजूद कि हमारा सारा अभिप्राय इस बात पर निर्भर करता है कि हम भारत के प्रति अपनी इस बफाबारी का जवाब क्या देते हैं। वह समय बड़ा नाजुक है। इस युग में कमजोर और जिनमें फूट है, ऐसे देश की नहीं सकते। उनका नाश निश्चित है।”

—बजाहुरलात नेहरू

इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी यहाँ से यही रही है कि यहाँ अनेक स्त्रियों में फूट और अलगाव की वृत्तियाँ पनपती रही हैं। यह पुनरा इतिहास अब नहीं दोहराना जाना चाहिए। दुर्भाग्य से पिछले कुछ समय से ऐसी कई वृत्तियाँ अपना सिर फिर उठाती नजर आ रही हैं। भारत की एकता के लिए ये बहुत खतरनाक हैं। इतर-उपर प्रायः सम्बन्धी जो भ्रम, विचारधाराओं की अनुशासनहीनता पंजाबी सूबे का प्रथम और शासकीय कर्मचारियों ने अपने बैठन बढ़ाने के लिए शासन को मजबूर करने का जो मार्ग ग्रहण किया वे उसी—फूट की—बीमारी के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

देश में लोकमत इतना व्याप्त और शिक्षित हो कि समाज में फूट फैलानेवासी और हिंसक प्रवृत्तियाँ भागे बड़े ही नहीं। वहाँ भी कहीं वे सर उठायें व्याप्त नागरिक उन्हें नहीं दबा दें। यदि ऐसा ही काम तो सरकार को पुलिस या फौज से काम लेने की जरूरत ही नहीं होगी।

विभाजन का होना दुर्भाग्यपूर्ण बात थी। फिर भी भारत एक विभाज्य देश है। परन्तु किसी देश का बड़ा होना एक बरदान बनना अभिप्राय भी हो सकता है। बरदान यह तब होता है जब बड़े देश के निवासियों

के बिना और हिमाग भी बड़े हों और वे छोटी-छोटी बातों और झगड़ों में अपने-आपको झूल न जाय। किन्तु वही बड़प्पन उस देश के लिए प्रत्यक्ष ही बहुत बड़ा अभिजाप भी बन जाता है जब वहाँ के निवासी बिलों को छोटा बना लेते हैं छोटे छोटे झगड़ों में उत्पन्न जाते हैं और आपस में कड़वाहट पैदा कर लेते हैं। यह युवकों को चाहिए कि वे इस बात को बहुत धन्यी तरह समझ लें, क्योंकि कल उन्हें देश का नेतृत्व करना होगा। स्वामीन भारत के लक्ष्य को वे तभी अपनी पूरी धान के साथ ऊँचा रख सकेंगे जब महात्मा गांधी के सिद्धान्तों के अनुसार अपने राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न करेंगे और अपने बिलों और हिमार्गों को विमोक्षक लोकतन्त्र और सहकारिता के बातावरण में बढ़ने का मौका देंगे। इसके विपरीत यदि वे घटक जायें और धान में या धानदान में फूट और हिंसा के मार्ग पर कदम रख दें तो देश में अस्थिरता केय जाति-जाति और वर्ग-वर्ग के बीच भयंकर झड़े हो जायेंगे और फिर उज्ज्वल भविष्य के हमारे सपने-के-सपने सपने सपने ही रह जायेंगे।

१४

सर्वोदय और मार्क्सवाद

गांधीजी के एक आधरणीय छाबी और भक्त ने एक बार कहा था "गांधीजी के आदर्शों का प्रयत्न इस में कुछ हद तक बहुत पहले से हो रहा है। और यह कि "यद्यपि इस का आदर्श पूरी तरह 'सर्वोदय' नहीं है फिर भी इस का समाज कुछ बातों में गांधीजी के आदर्शों के बहुत अधिक नजदीक है।

मिसन्देह यह सच है कि पूँजीवादी विचारधारा से हम सब घतमूर्च्छ हैं और पूँजीवादी व्यवस्था सिद्धान्त के रूप में जब एक गर्द-गुदरी चीज है। हम यह भी मानते हैं कि भारत की वर्तमान आर्थिक रचना भी बड़ी घतमूर्च्छजनक है और बहिष्ता बेकारी तथा आर्थिक असमानताओं की समस्याओं ने यहाँ इतना जमाजना रूप धारण कर लिया है कि उनका समाज तुरन्त होना चाहिए। भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारधारा के लोग धीरे धीरे यह अनुभव करने लगे हैं कि हमारी अनेक आर्थिक कुराईयों का

उपाय गांधीजी की विचार-पद्धति ही है और व्यवहार-बुद्धिवासे समझता भोग मानने लगे हैं कि सर्वोद्योग की विकासशील विचारवादा हमारा ही सरभोग्य है परन्तु यह धारणा भी पँखा करना समत है कि सर्वोद्योग और मार्क्सवाद एक-से है और इस में गांधीजी के सिद्धान्तों पर समझ किया जा रहा है। इसमें न सर्वोद्योग की सेवा है न मार्क्सवाद की। इन दोनों विचार धाराओं में उत्तर और दक्षिण ध्रुव के जितना अन्तर है और इनके बुद्धिवादी सिद्धान्त भी एक-दूसरे के विरोधी हैं। स्वर्गीय श्री किशोरलाल मण्डलवासा गांधीजी के विचारों के बारे में एक अधिकारी व्यक्ति माने जाते हैं। उन्होंने गांधीवाद और साम्यवाद पर एक लेखमाला लिखकर इस भ्रम को दूर करने का यत्न किया था कि 'गांधीवाद हिंसा रहित मार्क्सवाद ही है।' यह लेख-माला अलग-से पुस्तक के रूप में भी 'गांधीवाद और साम्यवाद' के नाम से छप गई है। श्री मण्डलवासा ने लिखा है—“गांधीवाद और साम्यवाद में इतना ही अन्तर है जितना हरे और लाल रंग में है—वह भी जिन आँखों को रंगों की पहचान ही नहीं है उन्हें तो वे दोनों रंग एक-से ही लगे हैं।

आचार्य विनोबा जावे भी हमसे बार-बार कह रहे हैं 'इन दोनों विचारधाराओं में कोई मेल नहीं हो सकता। इन दोनों के बीच आचारकूट अन्तर है। विनोबा ने कहा 'दो आदमी एक-दूसरे से इतने मिलते-जुलते थे कि सोवों को बड़ी आसानी से एक-दूसरे के बारे में भ्रम हो जाता था परन्तु उनमें अन्तर केवल इतना था कि एक साँस ले सकता था और दूसरे की साँस पाएँ नहीं।' उन्होंने अनेक बार कहा है कि "अन्त में साम्यवाद को गांधीवाद से ही सोझा लेना पड़ेगा।" आचार्य विनोबा तो मानते हैं कि "वास्तव में साम्यवाद अधिक मिलता है पूँजीवाद से क्योंकि दोनों नैतिक मूल्यों और आत्मा के कल्याण की अपेक्षा भौतिक जरूरतों और शरीर सुख को अधिक महत्त्व देते हैं।" महात्मा गांधी ने भी साम्यवाद को वर्तमान भौतिक सम्पत्ता का अधिभार परिग्राम बताया है और कहा है, "साम्यवाद हिंसा को अपना धर्म मानता है और ईश्वर को मानने से इनकार करता है। इसलिए वह मुझे कभी मंजूर नहीं हो सकता।" ऐसे और भौतिक सुखों के पीछे लोग जो पापनों की तरह बीड़ रहे हैं इसे गांधीजी ने सदा कुछ कहा

है और केवल बाहरी रहन-सहन के ऊँचे स्तर की अपेक्षा जीवन को ऊँचा उठाने पर उन्होंने सदा बहुत धोर दिया।

सच्ची बात तो यह है कि सर्वोदय और मानसभाव बुनियादी धोर पर एक-दूसरे से भिन्न हैं। इन दोनों को मिलाने की कोशिश करना न केवल व्यर्थ बल्कि सत्तरनाशक भी है। गांधीजी ने जीवन के सभी क्षेत्रों में धार्मिक शक्ति श्रुतियों को महत्व दिया है। मार्क्सवादियों के लिए धर्म और तत्त्व ज्ञान 'गरीबों की यन्त्रिण है। ऐंग्ल ने कहा था 'धर्म में पहला सब्र झूठ है।' सेनिन ने धर्म की व्याख्या का एक तरीका बताया है। मार्क्सवादी 'मन की जड़भूतों की उपज' बताते हैं 'आत्मा और धार्मिक श्रुतियाँ' उनके लिए कोई चीज ही नहीं हैं। वे केवल 'बुद्धि या मनोवृत्ति के प्रतीक हैं। गांधीजी ने कभी नहीं माना कि केवल साध्य ही अन्तिम और ससत्ती वस्तु है फिर साधन कैसे भी हों। उन्होंने साध्यों के समान साधनों की पवित्रता पर भी उठना ही खोर दिया है। अत्यन्त स्वराज्य की प्राप्ति में भी उन्होंने सत्य और सहिता पर बड़ा धोर दिया है। वहाँ सेनिन के लिए अपने बहरेम की सिद्धि के लिए झूठ प्रपञ्च कपट धूर्त तरीके टासमटून और सत्य को क्षिपाना सबकृष्ण उचित है। सन् १९४२ में गांधीजी ने कहा था कि 'यद्यपि स्व ने काफ़ी सफलता प्राप्त करती है फिर भी जबतक वह साधन-सुद्धि को महत्व नहीं देता उसकी ये सफलताएँ टिकेंगी नहीं।' महात्माजी की निदधय था कि झूठ और हिता से कभी मनुष्य का स्वाधीन स्थापन नहीं हो सकता। १९४६ में गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा था—

'साध्यवादियों ने बड़े-बड़े करवा अपना धन्य बना लिया है। उनमें कई मेरे मित्र हैं। कुछ मुझे पुत्रों के समान हैं। परन्तु ऐसा समय है कि जमे-बुरे और झूठ-तथ की उन्हें कोई परवा ही नहीं है। वे इस धाटो की मानने में इन्कार करते हैं परन्तु उनकी करनी से यह साबित होता है। फिर ऐसा समय है कि वे इस के इधारे पर चलते हैं। भारत की संप्रदाय को वे अपनी पुण्य-भूमि मानते हैं। बाहरी शक्ति पर हम प्रहार बिश्वास करना मुझे खरा भी पसन्द नहीं।'।

गांधीजी मानते थे कि मनुष्य स्वभावतः धन्य है। इतिहास यह निर कोढ़ने की नहीं। हृदय-परिवर्तन की सदा सत्ताह देते थे। इनके विपरीत

स्थापित की यह पक्की राय थी कि 'तबतक आप अपने पूरे धन से इरमन से नफरत नहीं करेंगे तबतक आप उसे जीत नहीं सकते ।'

सर्वोदय और मार्क्सवाद के बीच एक और बड़ा अंतर है । गांधीजी लोकतन्त्र को सर्वोदयी धर्मवा प्रह्वसारमक समाज-रचना का मूल आधार मानते थे । राजनैतिक और धार्मिक सत्ता का केन्द्रीकरण सर्वोदयी राज्य के विकास के लिए हानिकर है, परन्तु मार्क्सवादी तो मानते हैं कि लोकतंत्र बुर्जुआ-विचार है । "इसका तबता उभटता क्रान्तिकारी बनता का पहला कर्तव्य है ।" लेनिन मानते हैं ट्रॉट्स्की भी यही मानता था । वह इसे 'निकम्मा बिबाव' कहता था । लेनिन ने अपनी 'राज्य और क्रान्ति' नामक पुस्तक में साफ लिखा है कि साम्यवादी तो इस भौके की टोह में हैं कि 'बुर्जुओं के इन राज्य-यन्त्रों को—उनके लोकतन्त्री स्वकपों को भी—वे कम तोंड़ फोड़कर बूर-बूर कर दें और पुष्पी पर से उनका नामोनिधान मिटा दें । गांधीजी गुहोद्योगों और सामीज समाज पर आधारित केन्द्रित सामाजिक धर्म-रचना के हिमावती हैं तो मार्क्सवादी बड़े-बड़े धार्मिक कारखानों और केन्द्रित उत्पादनवासी धर्म-रचना पर आधारित किसानों और मजदूरों की विकटेरछाही चाहते हैं । मार्क्सवादियों का अन्तिम सपना है वर्गहीन समाज रचना जिसमें राज्य बीरे-बीरे समाप्त हो जायगा परन्तु प्राध्यापक हुक्सेले अपनी 'एण्डस ऐंड मीम्स' नामक पुस्तक में लिखते हैं 'ऐसा अति केन्द्रित सत्तावाला राज्य तो अपने आप नहीं महा मुझ में अपना विस्फुल नीचे से क्रान्ति की भाग भगकेमी तभी नष्ट होमा । उसके अपने आप सड़-गलकर मिरने की तो रत्तीमर भी संभावना नहीं है ।

इस विषय को और धार्मिक सम्बा करना बेकार है । यह तो धन की तरह साफ है कि वे दोनों विचारधाराएं मूलतः बहुत भगन-भगन हैं और भाव उनके बीच भारत में और बाहर—संसार में भी—अवरस्त मुझ भिदा हुआ है ।

१५

भारत और साम्यवादी पद्धति

हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू अक्सर कहा करते हैं कि भारत की

साम्यवादियों और सम्प्रदायवादियों से सदा शांत्वन रहना चाहिए। "ये दोनों देश को विनाश की तरफ ही जानेवाले हैं। विचारों की दृष्टि से भारत का साम्यवादी हम बर्कियानूसी है। नब्बे वर्ष पहले यूरोप की जो हासत थी, उसे देखकर किसी किताबें उन्होंने पढ़ रखी हैं। फिर इसी अन्ति के बाद की सिखी कुछ किताबें पढ़ीं और अब उन कम्पनाओं को वे भारत की वर्तमान स्थिति पर जायु करने का प्रयास कर रहे हैं। भारत की परिस्थिति विस्तृत भ्रमण है। हमारी समस्याएं भ्रमण है। अब उनके हल हमें स्वयं सोच-विचारकर ढूंढने होंगे। समझ की कमी के कारण भारत के साम्यवादी उसे उल्टे बसीटकर पीछे से जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। भारत में जो नई-नई बातें हो रही हैं उनको वे मनेमानव न जानते हैं और न जानने की हिम्मत उन्हें है, जो उससे भी बुरी बात है।"

एक समा में भाषण देते हुए श्री नेहरू ने कहा था किसी समय में मार्क्सवाद का विचारों का। उसने मुझे काफी प्रभावित किया परन्तु इतना नहीं कि भारत की समस्याओं को हल करने में वह मददगार हो सके। अपने देश की परिस्थितियों को जनता को और सारी वृद्धसूचि को समझकर हमें यहाँ काम करना पड़ता है। चीन और रूस की बात सुनरी है। वहाँ का इतिहास भ्रमण है। इतिहास की सारी उन प्रक्रियाओं को यहाँ भाँजे मूँदकर बोहराना गिरी मूर्खता होती। उदाहरण के लिए चीन का वर्तमान शासन चीन के पिछले बालीस वर्षों के इतिहास का परिणाम है। उसका इतिहास मूह-मुठों जापानी आक्रमणों और उनके भीतरी संघर्षों से भरा पड़ा है। यदि हम साम्यवादियों के बताये मार्ग से चलें तो हम अपनी भविष्य पर किस प्रकार पहुँच सकेंगे? क्या उनकी भाँति हम भी एक-दो पुरत विनाश और बरबादी में गुजारें? इसलिए उनका रास्ता अव्यावहारिक है। वह हमारे काम का नहीं है। हमारे लिए यह कहें भ्रमण और नामवाक भी है कि हम आन्ति के मार्ग से ही घाये बड़ें क्योंकि यदि हम यहाँ हिंसा से काम लेंगे तो घाव से भी बुरी हासत में हम पहुँच जायेंगे।"

श्री नेहरू ने बार-बार साफ कर दिया है कि कांग्रेस और भारत भर बार की भी नीति आन्त और भौततामिक तरीकों से देश में समाजवादी

समाज की स्थापना करना है। 'समाजवाद' शब्द मिरचम ही किसी देश-विशेष के समाजवादी बल की बपीसी नहीं हो सकता और हम भी उसका प्रयोग उनके या किसी खास और सीमित धर्म में नहीं कर रहे हैं। उसका मुख्य भाव यह है कि अपनी धर्म-व्यवस्था को हमें ऐसा स्वरूप देना है कि व्यक्ति और समाज के हितों का उचित सामंजस्य हो जाय और मनुष्य मनुष्य के बीच की धार्मिक विषमताएं कम-से-कम हो जाय। वह सभी संभव होगा जब हमारी धार्मिक व्यवस्था ऐसी होगी जो बेकारी को पूर्णतः मिटावगी उत्पादन को बृद्ध बढ़ावगी और देश में सामाजिक तथा धार्मिक न्याय की स्थापना होगी।

'सब प्रकार के उद्योगों पर राष्ट्र अपना अधिकार कर ले।' इस प्रकार के केवल गारों से हमारी खास समस्याएं हल नहीं होंगी। निःसन्देह महत्वपूर्ण और बुनियादी उद्योगों पर राष्ट्र का ही स्वामित्व होगा परन्तु वहां तक सम्भव हो उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों को औद्योगिक सहकारी संघों के रूप में विकसित कर देना परम आवश्यक है। इसका मतलब कोई यह न समझे कि हम बैलगाड़ीवाले पिछड़े हुए युग में देश को ले जाना चाहते हैं। विज्ञान की धातुनिक शक्तों का उपयोग हमें छोटे-छोटे उद्योगों की और धामोद्योगों की शक्ति बढ़ाने के लिए करना चाहिए, ताकि मनुष्य बेकार न हों बल्कि प्रति धावनी उनकी उत्पादन-शक्ति बढ़ जाय। हमें चाहिए यह पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि बेकारी मिटाने का धर्म केवल पीसे बांटना नहीं है। यह एक मानसिक और नैतिक प्रश्न भी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह मनुष्यता की रक्षा का प्रश्न है। भारत में समाजवाद का काम करने लायक सब मनुष्यों को सामवायक काम देना है। उनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। इसी प्रकार भाव लोगों की रहन-सहन के स्तरों में भी बहुत बड़ी असमानता है उसे मिटाना समाजवाद का काम है। किन्तु यह हम हिंसा और सत्ता के द्वारा नहीं बल्कि शान्ति और लोकतांत्रिक तरीकों से अपना सर्वोच्च धन्यता गांधीजी के बताये तरीकों से करना चाहते हैं। समाजवाद से हमारा मतलब यह है, न कि साम्यवाद या पश्चिम के देशों में इस सम्बन्ध का जिस प्रकार धर्म और धर्मनिरपेक्षता है वह। हमारा मुख्य उद्देश्य है धार्मिक और लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर

स्थापित जाति-वर्ण-विहीन समाज की रचना। यह आदर्श सदा हमारी आँखों के सामने रहे। भारत एक महान् देश है इसका इतिहास सम्बा और शानदार है। ऐसे देश के लिए साम्यवाद उपयुक्त नहीं होना और न हो सकता है। गांधीजी के शब्द हैं "भिरा पक्का बिस्वास है कि भारत साम्यवाद को ग्रहण नहीं कर सकेगा। लेनिन के सिद्धान्त इस देश में बड़ नहीं बना सकते।" बिबीने महारवाजी ने पूछा "परन्तु भारतीय साम्यवादी तो यहां स्तालिन की छाप का साम्यवाद माना चाहते हैं और इसमें वे आपके नाम का भी उपयोग कर रहे हैं।" इसपर गांधीजी ने जोर के साथ कहा कि "इसमें वे कभी सफल नहीं होंगे।" बिबीने गांधीजी के वर्तमान सिद्धों में सबसे महान् हैं। उन्होंने भी भारतीय साम्यवादीयों के तरीकों को अस्मिन्ध्र भाषा में बुरा बताया है। उन्होंने कहा है "भारतीय साम्यवादी न केवल हठी और जिद्दी हैं बल्कि उन्होंने अपने विमान के दरवाजों को भी मजबूती के साथ बन्द कर लिया है।"

११

साम्यवाद और सोवियत

प्रसन्नता की बात है कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की समझ में अब यह बात आने लगी है कि जबतक वह यह जाहिर नहीं करेगी कि वह सोवियत की पद्धति से ही समाजवाद की स्थापना करना चाहती है उसने लिए इस देश में आग बकला प्रसम्पन्न है। भारत के कम्युनिस्ट अब जान गये हैं कि वर्म-सर्वर्ष और हिंसा के मार्ग से वे अपने लक्ष्य को यहाँ नहीं प्राप्त कर सकते। यदि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सचमुच यह मानती है कि जनताधारण की अलाई डिक्टेटरशाही (टोटलिटेरियनिज्म) से नहीं सोवियत की पद्धति से स्थापित समाजवाद से ही हो सकती है तो ईमान दारी इमीमें है कि वह अपने-आपको बिसर्जित कर दे और या तो वर्तमान सोवियत पार्टी में से किसीमें शामिल हो जाय या अपनी नई नीति और कार्यक्रम के अनुसार कोई नई पार्टी बनाये क्योंकि जबतक वह अपने आपको कम्युनिस्ट कहती रहेगी तबतक भारत के जनमत को बड़ी संख्या में अपने अनुकूल नहीं बना सकेगी। भारत की जनता नहीं मानती कि द्वेष,

सर्वप्रथम और हिंसा के मार्ग से देश में कभी स्थायी शान्ति या सकती है। उसकी प्राचीन परम्परा और पूर्व इतिहास उसे यही कहता है। भारत के तत्त्व-ज्ञान में यह नहीं केवल सर्वोपरि माना गया है बल्कि साम्यवाद में केवल यह का परिणाम है। इसीलिए तो गांधीजी यह मानते थे कि भारत में साम्यवाद यह नहीं पकड़ सकता। यह उसकी प्रकृति के विरुद्ध है।

अब तो यह है कि साम्यवाद लोकतन्त्र और सर्वोद्योग के बुनियादी सिद्धान्तों के ही विरुद्ध है। कम्युनिस्ट पार्टी अपनी प्रस्तावना और सब्सों को जैसे ही बदल ले परन्तु जबतक यह मार्क्स के सिद्धान्तों और तरीकों को प्रकट रूप से छोड़ नहीं देंगे तब तक उसपर कभी विश्वास नहीं करेंगे। दूसरे शब्दों में मार्क्सवाद और लोकतन्त्री समाजवाद परस्पर बे-मेज भी हैं। उनके बीच का अंतर अपनी नहीं मौलिक है। इन दोनों तत्त्व-ज्ञानों के बीच समझौते या समन्वय की बात करना होगा और पाठ्य होगा। कुछ दिन पहले साम्यवादी क्लब में 'व्यक्तिगत निष्ठा' के विरुद्ध रोप की एक महार फँस गई थी और 'सामूहिक नेतृत्व' पर बड़ी-बड़ी बकवास हुई थी। परन्तु इस सारे मंचन के अन्त में व्यक्तिगत नेतृत्व ही विजयी सिद्ध हुआ। बीच में भी 'सो पुणों को मिलने दो' की काव्यमय घोषणा हुई थी। परन्तु कुछ ही महीनों के अनुभव ने बता दिया कि वे सारे फूल कुम्हला गये और उन्होंने स्वयं अपने बोप कबूल कर लिये। अतः भारत के लोगों को यह विश्वास नहीं बिनाया जा सकता कि दूसरे देशों के कम्युनिस्टों से बहाने के कम्युनिस्ट भिन्न प्रकार के सिद्ध होंगे।

मार्क्स निश्चयेह एक महान विचारक था परन्तु यह भारत के और दूसरे देशों के साम्यवादियों की भाँति मार्क्सवादी नहीं था। उसने अपने सिद्धान्त धीरोमिक शान्ति के बावनासे अपने समय के यूरोप की स्थिति के अध्ययन पर कायम किये थे। स्वयं पूँजीवादी देशों में भी उसके बाद जो बड़े-बड़े फेर-फार आया, स्वभावतः उनकी उसे कल्पना भी नहीं हो सकती थी। इन्धुआत्मक नीतिकार का तत्त्व-ज्ञान भी धारित रूप और यूरोप के दूसरे भागों में उस समय जो तत्त्व-ज्ञान प्रचलित थे उसी पर आधारित किया गया था। इनके आधार पर ही वर्ष पहले लिखी गई बातों पर बाद के सारे और इस युग की सारी बातों को लागू करना गिरी

मूर्खता ही है। पूंजीवाद और व्यापारिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों की भाँति मार्क्स के सिद्धान्त भी अब पुराने पड़ गये और उनमें धामूल सुधार और परिवर्तनों की जरूरत है। कर्म-संकर्म के स्वान पर अब सहयोग से रहा है। जमींदारों से जमीनें खींचने के लिए कुल-जगदियों और बड़े-बड़े हथ्वा काण्डों के स्वान पर आज हम सूरान और धाम-दान जैसे धानधार धाँधो-सनों को देख रहे हैं। पहले सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति के लिए हिंसा अनिवार्य मानी जाती थी आज ऐसे परिवर्तन को सच्चे धर्म में स्वाधी बनाने के लिए आचार्य बिजोबा ह्रदय और मन के परिवर्तन को धामत्यक मानते हैं और यह हिंसा और अधिंसा का भेद केवल सैद्धांतिक वस्तु नहीं है जैसा कि गांधीजी ने कहा है, यह बुनियादी अन्तर मार्क्स के सिद्धान्तों की बड़ ही काट देता है—“और यदि आप बुनियाद बदल देते हैं तो सारी हमारा को बदलना पड़ता है। अन्तर्गत हो यदि गांधीजी के विचारों पर आधारित इस लोकतन्त्री समाजवाद और अपने साम्यवाद के बीच यह जो बुनियादी अन्तर है, इसे साम्यवादी समझें। केवल अपनी पार्टी का विधान बदल देने से साम्यवादी अपने सिद्धान्तों को नहीं बदल सकते। वे जो बात अपनी कहान से कहते हैं, यदि यही सचमुच उनके दिल में भी है तो उन्हें स्पष्ट रूप से यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि अब मार्क्सवाद के स्वान पर सबसे कड़ी अधिक क्रान्तिकारी सर्वोदय अथवा अधिंसन समाज वाद की स्थापना होनी चाहिए। हिंसा का परिणाम हिंसा ही होता है और अन्तर्गत अनिवार्य परिणाम विघटनराही होता है। समाज पर कीबीधनु माधन या जाता है और कर्म-संकर्म लोकतन्त्र की जड़ों पर ही कुठरावाद करता है। अतः इस मार्ग पर समाज के स्वकष को छात्रि के धाम बढ़तने को नहीं सम्भावना ही नहीं है।

१७

साम्यवादी दधान

भी रामास्वायी नैकर ने यह बयानी भी की है कि यदि समाज की हानन रही तो बाह्यकों की हथ्वाएँ होने लगेंगी। दधान मन्त्री ने इन हथ्वाओं को और कमफियों को देख के प्रति ग्राह बताया और कहा कि ये

राष्ट्र के लिए चुनौती हैं। श्री रामास्वामी नैकर मानते थे कि संविधान की प्रतियां जलाने और बाइबलों को जलाने से जाति प्रभाव नष्ट हो जायगी। क्या इससे भी बड़ी कोई मूर्खता और अपराध हो सकता है? श्री नेहरू ने कहा "भारत ऐटम और हाइड्रोजन बमों से भी नहीं डरता। उस क्या वह किसी विदेशी विमान के घाबरी के सामने अपना घर भुका देगा?"

एक दूसरी समा में भाषण देते हुए श्री नेहरूजी ने कहा "पुराने जमाने में जाति-धर्म के जो कुछ भी कुछ-बोप रहे हैं। परन्तु आज तो उसके लिए देश में कोई स्थान नहीं है और यदि वह जारी रखी भी तो देश को कमबोर बनायेगी और प्रगति के मार्ग में रोड़े धटकयेगी। पिछले सैकड़ों वर्षों में यह एक अभिशाप सिद्ध हुई है और इसने देश को कमबोर तथा पतित बना दिया है। उसने समाज को छिन्न-भिन्न करके विदेशी सभित्त्यों का मुक्तम बना दिया है। एकता की भावना नष्ट कर दी है।"

साम्यवाद पूर्णतया जादवादी धार्मिक जीवन-दर्शन है। नैतिक और धार्मिक मूल्यों को वह नहीं मानता। वह कहता है कि वर्ग-संघर्ष और पारस्परिक हत्या के मार्ग से ही राष्ट्र की सामाजिक और धार्मिक प्रगति होती है। साधन-मुक्ति के लिए साम्यवाद में कोई स्थान नहीं है। वह तो मानता है कि हमें अपने सर्वोच्च से काम है। साधन कैसे भी हों उन्हें यदि ठंका है तो काफ़ी है। उसकी प्राप्ति के साधन बुरे भी हों तो कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वह गांधीजी के बताये मार्ग से एकदम सलटा है। गांधीजी साधन-मुक्ति पर सबसे अधिक जोर देते हैं। महान उद्देश्य तभी सिद्ध हो सकते हैं। वे तो भारत की आजादी के लिए भी असत्य और हिंसा से काम लेना नहीं चाहते थे। उनका वह पक्का विश्वास था कि असत्य साधनों से कुछ साम्य कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

फिर वह मान्यता भी पलत है कि लोकतन्त्र की अपेक्षा साम्यवाद जल्दी फल देता है। सोवियत रूस के पिछले बीसवीं वर्ष के इतिहास पर बरा बरा नजर डालकर देखें। वहाँ सामूहिकरण और कौमीकड़ों का परिणाम बहुत भयंकर और उत्पातपूर्ण नहीं हुआ है। वहाँपर धार्मिक प्रगति के अनेक प्रयासों को व्यावहारिक बनने के लिए रास्ता प्रकाश से प्रयत्न करने पड़े हैं। पिछले तीस-चाबीस वर्षों में अनेक कड़ुके अनुभव नहीं हुए हैं। आज

भी ने इसी नतीजे पर पहुँच रहे हैं कि यंत्रों की बेठीकाते बड़े-बड़े सामूहिक
खेतों की अपेक्षा छोटे छोटे व्यक्तिगत खेतों में धीरे-धीरे एक-एक उपज का
मान कहीं अधिक ऊँचा होता है। सामूहिक पद्धति से यह सब कुशी-कुशी
नहीं होया। सारे कार्यों को पपाविनि बनानेवाले शास्त्रीय दम की मदद
के लिए वहाँ बहुत बड़ी चीज और लुफिया पुलिस का एक विधानालय
सब पँताये रक्का पड़ता है। इसमें बेहद कर्म होता है। फिर इस पद्धति
में जो बर्गकर और-अवरवस्ती मानव का जोर सभ-पतन धीरे दमन होता
है सो धन्य है।

एकाधिकार की शासन-पद्धति में एक से अधिक दम रह नहीं सकते। न
इस पद्धति में भाषण-स्वातन्त्र्य के लिए कोई स्थान होगा। बर्ग का तानाशाह
(प्रोलीतारियत) साम्यवादी मानते हैं कि प्रारम्भ में भले ही राज्य-शासन
पर अधिकार करने के लिए बर्ग-संघर्ष धीरे-धीरे काम लिया जाय
परन्तु बाद में राज्य अवश्य हो जायगा। परन्तु अभी तक का अनुभव तो
इस धारा को पुष्ट नहीं करता। जैसा कि ग्राम्यापक जी डी एच क्रोल
ने कहा है, "द्विहास के अध्ययन से समुप्य इसी नतीजे पर पहुँचता है कि
तानाशाही (डिक्टेटरशिप) ज्यों-ज्यों पुरानी होती जाती है, त्यों-त्यों वह
कम नहीं अधिक उध धीरे धामोचनाओं के प्रति अधिक अतहिप्पु
बन जाती है। इसलिए साम्यवाद को यह सिद्ध करना है कि बड़ा
लोकदमन के सत्त्व धीरे उतल में कोई फर्क न आने देते हुए उसरी बीजट
में साम्यवाद किस प्रकार काम कर सकता है। हमारा स्थान है कि
यह सही हो सकता है जब भारत की कम्युनिस्ट पार्टी सचन्द्रिग्न भाषा
में यह घोषणा कर देगी कि उसने साम्यवाद के आधारभूत सिद्धान्तों
को छोड़ दिया है और यह कि भारत ने लोकदमन के जिस मार्ग पर चलने
की प्रतिज्ञा से रक्की है साम्यवाद के सिद्धान्त उसके अनुकूल नहीं हैं।
अतस्त यह कि भारत की जनता को साम्यवादियों पर तबतक विरवाध
नहीं होया जबतक कम्युनिस्ट पार्टी अपनी नीति को ही पूरी तरह से बदल
नहीं देगी और लोकदमन के सर्वनिदिश सिद्धान्तों धीरे-धीरे को मान्य
नहीं कर लेगी और यह एक स्पष्ट धीरे धामोचनिक घोषणा के द्वारा तथा
होपे के लिए हो। अतस्त यह कि वह दूसरे देशों के साम्यवादी हर्षों

अपना सम्बन्ध पूर्णतया तोड़ दे और अपने-आपको लोकतन्त्र में विश्वास करनेवाला एक समाजवादी बंध बना ले। भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद का धर्म है गांधीवादी समाजवाद। आचार्य विनोबा भावे अपने भूतपूर्व और स्वाम्यवाद-आन्दोलनों के द्वारा जो समाज-व्यवस्था स्थापित करने लगे हैं, उन्हें भारत उसी समाजवाद को स्वीकार कर सकता है।

हमारे अपने दिम में इस विषय में कोई उलझन नहीं है कि वास्तव में साम्यवाद एक गलत दर्शन है और सर्वोच्च प्रणवा लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध विपरीत है, परन्तु हम यह भी जानते हैं कि जातीयता या सम्प्रदायवाद साम्यवाद से भी बुरा है। साम्यवाद में कम-से-कम अन्तिम मध्य तो प्राक्वर्णक है, यद्यपि उसकी प्राप्ति का मार्ग गलत बहुत ही हिंसात्मक है। परन्तु जातिवाद में तो कुछ भी गलत ही नहीं है। इस प्रकार जातीयता और साम्यवाद हमारे सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र के दो मुख्य शत्रु हैं और दोनों ने पक्की साठ-गाठ कर ली है। जो लोग सर्वोच्च अर्थात् गांधीवादी के विचारों के लोकतन्त्र में विश्वास करते हैं, उनको इस जुगुप्सी का पूरी क्षमता के साथ और योजनापूर्वक मुकाबला करना है। यद्यपि बुराई है जातीयता। यदि इसका उपाय समय पर नहीं किया गया तो यह आतंकवाद या साम्यवाद का रूप धारण कर सकती है। जो हो इस मार्ग से लोकतन्त्र या समाजवाद को हम नहीं प्राप्त कर सकते बिना राष्ट्रीयता गांधीवादी चाहते थे कि भारत समझे और प्राप्त करे।

१८

सम्प्रदायवाद और साम्यवाद

साम्यवाद एक जीवन-दर्शन है। इसके प्राथमिक प्रणेता मार्क्स थे। बाद में लेनिन एंवर्स और स्टालिन ने इसे विकसित किया। साम्यवादी विचारधारा का मुख्य तत्त्व है सिद्धान्त प्रवृत्ति-विज्ञान और समन्वय। उनका कथन है कि धार्मिक प्रगति वर्ग-संबन्ध से ही सम्भव है जो हिंसक क्रान्ति करवाती है और जिसका अन्त सर्वद्वारा-वर्ग की तानाशाही में होता है। रूस-चीन और पूर्व यूरोप के कई देशों में उनके

कार्यक्रम का आधार इन्टरनल शैतिकवाद रहा है। भारत के भी साम्यवादी यद्यपि बात तो साम्य और लोकतन्त्र की ही करते रहते हैं। परन्तु जब-जब उन्हें मौका मिला है नाबुक परिस्थितियों का लाभ उठाकर हिंसक उपद्रव पैदा करने का बराबर यत्न करते रहते हैं। राज्यों के पुनर्मिलन मजदूरों की हड़तालें केतिहर मजदूरों के मामलों आदि में उन्होंने जो कुछ किया तो प्रायः ही है। यद्यपि वे लोकतन्त्रीय कार्य पद्धति की कुहाई देते हैं तथापि उनका काम करने का असली तरीका यही रहता है। अपने क्षेत्र में वे किसी भी राजनीतिक बल को काम करने नहीं देते। न वे नावज-स्वातन्त्र्य को मानते हैं न छापाखाने की स्वतन्त्रता को। भारत के साम्यवादियों को यदि इस देश में सत्ता हमियाने का अवसर मिले तो सारे समाज पर अपनी सत्ता से छा जाने और हिंसा से काम लेने की नीति में वे ठक करेगे यह मानने के लिए हमारे पास कोई कारण नहीं है।

भाषीजी सदा कहा करते थे कि उनका रास्ता सर्वोच्च वर्गान्-परिहितक समाजवाद का है और सर्व-संवर्ष तथा हिंसा पर आधारित साम्यवाद का विद्वान् मतलब असत है। यह यह कहते कभी पकते नहीं थे कि साम्य युद्ध सबसे पहली चीज है और उद्देश्य बाह्य कितना ही अच्छा हो यदि उसकी प्राप्ति के लिए युद्ध सामनों का उपयोग किया जाता है तो उससे अच्छा साम्य भी दूषित हो जाता है। इस कारण उन्होंने साम्यवादियों की नीति और कार्यक्रमों को सदा गलत बताया और तमाम सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों को लोकतन्त्र और सहिष्णुता के मार्ग में ही सुलझाने का आग्रह रखा। राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए भी उन्होंने झूठ मुठवा और हिंसा को कभी प्रशंसा नहीं दिया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हिंसा और मोहकन कभी एक साथ नहीं रह सकते। वे सदा एक-दूसरे की बात करते रहे। एकाधिकारवाले (टोटलिटैरियन) राज्य में व्यक्ति अपनी सारी आजादी खो देते हैं। यह चीज बुनियादी तौर पर सर्वोच्च के विरुद्ध है एकदम विपरीत है। भाषीजी के सम्मानार्थ परिहितक समाज में व्यक्ति और समाज दोनों पूरी तरह से आजाद रहेगे और उन्हें अपने विचार प्रकट करने और विश्वास का पूरा-पूरा अवसर मिलेगा उन्होंने अपने स्वराज्य की सम्पत्ति आम राज्य पर आधारित की है। साम्य समाज का

रूप में स्वीकार कर लिया है। इसके प्रवर्तक महात्मा गांधी हैं। इस पद्धति का मुख्य सिद्धान्त बड़ी है जो संसार के सभी शिक्षा-शास्त्रियों को मान्य है प्रत्यक्ष—काम करते-करते सीखना—उत्पादक काम करते-करते विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करना। बुनियादी शिक्षा का धर्म शिक्षण—काम नहीं बल्कि काम के द्वारा शिक्षण है। मतलब यह कि भाषा गणित, भौतिक विज्ञान समाज-विज्ञान इतिहास भूगोल आदि विषयों का ज्ञान कटाई, कुनाई, सुतारी लोहारी आदि वस्तुकारियों के अनुबन्ध से दिया जाय। शिक्षा के साथ हमारी विविध विकास-योजनाओं को जोड़ने की मौलिक समस्या का व्यावहारिक हल मिलेगा इस बुनियादी शिक्षा पद्धति में है। बुनियादी छात्राएँ छात्रों और बच्चों में भी हमारे बच्चों को इन योजनाओं से सम्बन्धित विविध कामों के लिए तैयार करने में बहुत मद्दतदार होंगी। वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं की भाँति बच्चों को निरे बाबू बना-बनाकर निकालने के बचने से छात्राएँ हमारे बच्चों-बच्चियों को ऐसे सलम और उत्साही युवक और युवतियाँ तैयार करके भेज सकेंगी जो नवीन भारत के निर्माण में जी-जाप से जुट सकें। इनको काम की उमराव में धनियाँ से-लेकर दर-दर भारे-भारे नहीं घुमना होगा। कड़े परिश्रम उपयोगी काम और स्वावलम्बन की हिम्मत उनमें होगी और वे अपने भाग्य के निर्माता स्वयं होंगे।

प्रत्येक राज्य में केवल प्रयोग के रूप में कुछ छात्राएँ खोल देने से अब काम नहीं चलेगा। प्रयोगों की अवस्था को हम कभी के पार कर चुके हैं। अब तो तमाम प्राथमिक और माध्यमिक छात्राओं को अनिवार्य बुनियादी पद्धति की छात्राओं में योजनापूर्वक बचल देना जरूरी है। विश्वविद्यालयों की शिक्षा के स्वरूप में भी आमूल परिवर्तन करने की जरूरत है। जो हो बुनियादी छात्राओं से निकलनेवाले जो विद्यार्थी कालेजों या विश्वविद्यालयों में शिक्षा लेना चाहें उन्हें किसी प्रकार अनुमति नहीं अनुमत्त होनी चाहिए। इसके विपरीत उन्हें प्रोत्साहन और हर प्रकार की सुविधा दी भी जानी चाहिए।

छात्राओं के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी की पढ़ाई की व्यवस्था इस प्रकार कर दी जाय कि बुनियादी शिक्षा पानेवाला विद्यार्थी संक्षमपक्ष में अंग्रेजी

के ज्ञान की कमी के कारण किसी प्रकार की अनुविधा अनुमद न करे। माया के रूप में अंग्रेजी के हम विरोधी नहीं हैं। वह यदि सबसे अधिक महत्व प्राप्त नहीं तो संसार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषाओं में से एक अक्षय्य ही है। परन्तु केवल इस कारण वह हमारे राष्ट्रीय जीवन में देवी भाषाओं का स्थान नहीं ले सकती और प्राप्तकर शिक्षा के क्षेत्र में तो हरगिज नहीं। हिन्दी और अन्य भाषाओं को न केवल छात्राओं और कानूनों में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाना चाहिए, बल्कि अनेक भारतीय मेधाओं के लिए भी परीक्षा का माध्यम है ही हों। हमारे युवक अपनी शिक्षा में एक विषय के रूप में अंग्रेजी अथवा अन्य किसी विदेशी भाषा का भी अध्ययन अवश्य कर सकते हैं, परन्तु हमारे सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में अंग्रेजी को मात्र को अस्वाभाविक स्थान दिया जा रहा है वह तो एकदम अनुचित है।

कुछ लोगों का यह क्वास है कि बुनियादी शिक्षा में बूक उद्योगों की शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता है, इसलिए वह वर्तमान शिक्षा से महंगी पड़ेगी। भाषाई विनोबा मावे ने एक बार इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा था कि उद्योगों की शिक्षा के लिए छात्राओं में अलग से विशेष खर्च की कोई जरूरत नहीं होगी चाहिए। उनकी यह निश्चित राय है कि मात्र गहरों में और गांवों में जो दस्तकारियां बापी हैं उनका उपयोग अनुबन्ध के तौर पर बच्चों को सिखाने में हो सकता है। इस प्रकार बच्चों की शिक्षा के आधार के लिए बहुत-सी दस्तकारियां उपलब्ध हो सकेंगी और किसी भी छात्रा के साथ अलग से कोई उद्योगछात्रा नहीं जोड़नी होगी। यदि इस विद्वान्त पर सही-सही तौर पर और मूक-बूक के साथ समत किया गया तो बगैर किसी अतिरिक्त खर्च के सारे देश में बुनियादी शिक्षा का प्रचार हो सकेगा। इसके अलावा यह भी याद रहे कि बुनियादी शिक्षा केवल गांवों के लिए ही नहीं है, वह तो एक नई प्रकार की और सम्पूर्ण स्वतन्त्र शिक्षा-पद्धति है। इसलिए उसका प्रसार गहरों और गांवों दोनों अथवा एक साथ होना चाहिए। देश के गहरों की आधारभूत दस्तकारियां गांवों की दस्तकारियों से अलग प्रचार की होगी। यदि दस्तकारियों का प्रारम्भ केवल गांवों में ही किया जाता है तो भोय समझते हैं कि गांवों का महत्व कुछ कम है। वे गहर के साथों की नीयत में एक भी करने लगते हैं। नदाम राज्य

में इस प्रकार की भूमि हो गई थी। ऐसी भूमि दूसरी जगह नहीं होनी चाहिए।

कुछ प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों का सुझाव है कि भारत में कोई भी निजीजी उपाधि प्राप्त करने के लिए सभी योग्य माना जाय जब वह कुछ महीने अनिवार्य रूप से समाज की सेवा करे। यह सरीर-भर धीर समाज सेवा का कार्य मुश्किलों को विकास-योजनाओं में काम बिताने में भी निश्चय ही काफी मददगार होगा। समाज के अन्दर से इस प्रकार नवयुवकों की अनिवार्य धरती करने का समय आ गया है। इसलिए जसपर तुरन्त प्रयत्न करने योग्य एक व्यवस्थित और व्यावहारिक योजना प्रबन्ध तैयार कर लेनी चाहिए। इस प्रकार यदि हम शिक्षा-व्यवस्था में सममानुभूत सुधार कर लें और समाज शिक्षा-संस्थाओं में किसी-न-किसी प्रकार का समाजोप-योगी सरीर-भर अनिवार्य कर दें तो हम इस प्राचीन भूमि की शक्ति बहाल देने में प्रबन्ध ही सफल हो सकेंगे। राष्ट्र के सच्चे और सफल संयोजन के लिए उपयुक्त शिक्षा-व्यवस्था का होना बहुत जरूरी है। इसलिए इस काम में हम बितनी भी जल्दी सम्मान हो भय बाय और सारी शिक्षा-व्यवस्था को नया रूप दें।

२

शिक्षा और लोकतन्त्र

संविधान की ५१वीं धारा में लिखा है, “राज्य इस कार्य के अन्दर ऐसा बल करे कि चौदह वर्ष के अन्दरवाले सब बच्चों—लड़कों और लड़कियों—को भी शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य रूप से मिलने लग जाय। परन्तु यह देखकर कुछ होता है कि यह लक्ष्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है और न इसके लिए कोई निश्चित योजना ही है।

हमारा क्या है कि इसमें मुख्य कठिनाई जन की दृष्टि नहीं है, बितनी इस निर्णय की कि राष्ट्रीय संयोजन में हम शिक्षा को कितनी प्राथमिकता देते हैं। इस दृष्टि से जब हमने दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ का प्रयत्न किया तो हमें यह देखकर कुछ हुआ कि पहली पंचवर्षीय योजना की अपेक्षा दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए एकही पंद्रह करोड़ का प्रति-भुक्त बहुत कम है।

घसत बात यह है कि हम तो चाहते हैं कि प्राथमिक शिक्षा साठ से बीसह वर्ष के अन्दर के सभी बालकों को प्रसार मिले और बच्चों की इस आयु-पर्याप्त में हम उपा भी नहीं करना चाहते क्योंकि मोक्षतन्त्र व्यापक आधार पर काम करे, इसके लिए यह जरूरी है कि इस योजना में और प्रगती योजना में भी हम शिक्षा को बहुत अधिक प्राथमिकता दें। प्रधान मंत्री ने कहा था कि टोकियो की नगरपालिका सड़कों की सतियों और सामान्य प्रबन्ध पर बहुत कम खर्च करती है और शिक्षा परोक्ष्य जैसे समाज-सेवा के कार्यों पर बहुत अधिक। यह उचित ही है। इसलिए हम भी बहुत जोर देकर कहना चाहते हैं कि हमें भी शिक्षा पर और बाह्य तौर पर प्राथमिक शिक्षा पर काफी अधिक खर्च करना चाहिए। हमके घनाबा मिन्न-मिन्न प्रकार के विकास-कार्यों का यदि समन्वय लिया जाय तो इस कार्य के लिए और भी रकम उपलब्ध हो सकती है। बहादुरन के लिए बाकी और ग्रामोद्योगों पर खर्च की जानेवाली रकम का काफी बड़ा अंश बुनियादी सामाग्रियों में उत्पादक बलकारियों के लिए दिया जा सकता है। इसी प्रकार का समन्वय सामुदायिक विकास-यात्राओं और राष्ट्रीय विकास-ग्रन्थों की प्राथमिक शिक्षा और समाज-शिक्षा की प्रवृत्तियों में दिया जा सकता है। प्रधान मंत्री ने कई बार कहा है कि शाताघों के लिए मकान बनाने के खर्च में काफी बची बची जानी चाहिए। पेड़ों के नीचे भी बने लेकर हमें सन्तोष मान लेना चाहिए और इसके लिए मात्र कम की मांगि सम्भी छट्टियाँ वर्षों में देने के बजाय वर्षों में दी जाएँ। मकान की जरूरत हो भी तो बहुत अधिक मागत का मकान बनाने की परेधा कम मागत का मकान स्थानीय सामग्री काम में लेकर बनाया जाय। सामाग्रियों के लिए जनकार्य-विभाग की वर्तमान धरें और भस्ते बहुत लचीले हैं। उनमें सामूल परिवर्तन करने की जरूरत है। भक्तियों पर इनका अधिक खर्च करने की परेधा अन्धे धितकों पर यह रकम खर्च करना अधिक उपयुक्त होगा। शितकों के बेतन का एक अंग रहने की मांगि पंचागनों में समाज कंर में पञ्चनों पर भी लिया जा सकता है।

मनन यह कि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य निःशुल्क और कार्बनिक करने के प्रयत्न को हम सभी हृद कर सबसे अब बुराभी नहीं करें का पीटनी

हूए सम्प्रदाय-सूचक शब्दों को क्यों नहीं हटा दिया और इनके अन्दर राष्ट्रीय आत्मावरण क्यों नहीं निर्माण कर दिया। हमें यह प्रयत्न तो करते ही रहना चाहिए, जिससे ये प्रतिगामी विचार हमारी आनेवाली पुष्टों के दिनों को धब धबे हुए पित्त न करने पायें और केन्द्रीय शासन इस विधा में कोई साहसमय कदम उठावेया सभी राज्यों की सरकारों को भी प्रवेशों में इस प्रकार के कदम उठाने की हिम्मत होयी।

आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई जातियों को आर्थिक सहायता और आश्रय वृत्तियाँ देने की हमारी नीति में जातिवाद और सम्प्रदायवाद का धर्म शास्त्र और भी प्रकट हो जाता है। आज सोचो मैं अपनेको इन पिछड़े वर्गों में गिमाने की बीड़ मानी हुई हूँ। भारत जैसे गरीब देश में स्वभावतः बहुत-से लोग पिछड़े हुए हैं परन्तु इसका धर्म यह तो नहीं कि पिछड़े हुए पिये पये वर्ग के सब-के-सब आश्रमी होने परीव है कि उनको सरकारी खजाने से आर्थिक सहायता दी जाय। इसलिए उचित यह है कि शासन से आर्थिक सहायता उन्हींको दी जाय जो सधमुच गरीब हों न कि उनको जो महज किसी जाति जाति या वर्ग के हैं। जातियों के नाम पर यदि आर्थिक सहायताएं दी जाती हैं तो स्वभावतः जाति-अन्धता की उम्र बढ़ाने की वृत्ति समाज में बनी रहती है। अनुमूर्खित जातियाँ और अज्ञ-जातियों को एक निश्चित धर्म के लिए एक स्वतन्त्र वर्ग में रखा दिया गया है। तबतक उनको राज्य से धनस्य ही विशेष रियायतें मिलती रहीं परन्तु उनमें भी इनको आर्थिक और सामाजिक सुधार करना चाहिए, ताकि अन्त में हम ऐसी स्थिति निर्माण कर सकें जब जातिगत भेद-भावों को हम पूरी तरह से मिटा सकें।

आज भारत के सार्वजनिक जीवन में जो अंतरनाक बीज हैं। पहली बीज है साम्यवाद और उसकी हिंसा और वर्ग-संघर्ष की नीति। साम्यवाद का वर्गविहीन समाजवादा नश्य नि-सम्बेह अण्डा है। परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए जिन उपायों का अवलम्बन किया जाता है वे मलमल हैं। वे स्वयं नश्य को भी प्रदूषित बना देते हैं। दूसरी अंतरनाक बीज है जातिवाद और सम्प्रदायवाद। यह तो सारा-का-सारा पीने से ऊपर तक प्रदूषित और अनाशीपन से भरपूर हुआ है और राष्ट्रीय एकता की नींव को ही कमजोर

धीरे सदाब करता है।

२२

कम विकसित देश में विरोधी दल

श्री जयप्रकाशनारायण ने अपने एक भाषण में कहा था 'भ्रष्टा हो या बुरा भारत में संसदीय लोकतन्त्र का मार्ग पसन्द किया है। लोकतन्त्र की यह पद्धति सर्वोत्तम है, ऐसा हम नहीं कह सकते। फिर भी हर देश के कुछ नियम होते हैं। तदनुसार संसदीय लोकतन्त्र का यह एक बुनियादी नियम है कि इसमें तबतक अच्छी तरह से काम नहीं हो सकता जबतक सामने कोई शक्तिशाली विरोधी दल नहीं होगा। यह विरोधी दल सदा घातों में उस शासक शासकीय दल के हर काम को देखता रहता है जिसके कारण शासकीय दल को सदा सही मार्ग पर चलना पड़ता है।"

दूसरी तरफ़ आचार्य बिनोबा मावे कहते हैं कि सब दल मिलकर एक सामान्य राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाने और उसके आधार पर देश का ध्यान प्रवर्ध हो। वह कहते हैं कि चूंकि देश में विचार भेद रहेंगे इसलिए राजनैतिक दल भी रहेंगे ही। परन्तु वह चाहते हैं कि विचार भेद के ये संघर्ष विरलविद्यालयों महाविद्यालयों और विद्यालयों तक ही सीमित रहें। इनको जनसमाज में लाकर उसमें कुछ भेद नहीं करना चाहिए। इसमें असली सामाजिक और आर्थिक अकरतों की बातें प्रसंग रखनी रह जाती हैं और इन बुद्धिवादों में लोग उलझ जाते हैं। आचार्य बिनोबा की यह दृढ़ राय है कि पश्चिम में जिस प्रकार का संसदीय लोकतन्त्र चल रहा है वह भारत के लिए बहुत उपयोगी नहीं है। भारत जैसे कम विकसित देश में यह जरूरी है कि हमारे भले आदमियों की शक्तियाँ समाज की भावी हानत मुबारने में लय जानी चाहिए। इसलिए वह चाहते हैं कि राजनैतिक मत्ता विवेकित कर दी जाए ताकि संघर्षों अपने-अपने गाँव की सेवा में लय जाय और सामाजिक समाज की सामाजिक आर्थिक दशा-मुबार की योजनाएं बनाकर उनके प्रमन में ले लय जाय। ऐसी स्थानीय लोकतन्त्री संस्थाओं में विरोधी दलों के लिए बहुत अधिक स्थान नहीं होगा। पुराने बमाने की संघर्षों आक्रक के संसदीय लोकतन्त्र की पद्धति की संस्थाएं नहीं थीं। वे सारे

समाज को एक मानकर बलपूर्वक और पंचायत के सारे सदस्य मिलकर एक दिम से उसकी सेवा करते। महात्मा गाँधी भी भारत में इसी ममूमे का लोकतन्त्र चाहते थे। उन्होंने एक सामान्य केन्द्र की कल्पना की थी। वह केन्द्र गाँव था। उसके बाद बिना प्रान्त और सारे देश के एक-से-एक बड़े ऐसे अनेक वर्तुम हों। परन्तु सबका केन्द्र-बिन्दु गाँव ही होना।

अब तो यह है कि पश्चिम के देशों में भी संसदीय लोकतन्त्र सब प्रकार से निर्दोष साधन-पद्धति सिद्ध नहीं हुई है। अनेक बार सांसदवर्ग सफलता के साथ लोकमत की उपेक्षा कर देता है और विरोधी दल निष्फल और बेकार बन जाता है। सीरैंका के प्रधान मन्त्री ने एक बार कहा था कि सांसदर कम विकसित देशों में हमें दूसरे प्रकार की साधन-पद्धति का विकास करना होगा जिसके ध्वज पर सारे राजनैतिक दलों का प्रतिनिधित्व हो और वे सब मिलकर राष्ट्र की विकास-योजनाओं को सफल बनायें। भारत की पंचायतों में इसी समन्वय की पद्धति से काम होता था। उसमें विरोधी दल नाम का कोई अलग दल नहीं होता था। हमारे जैसे प्राथमिक दृष्टि से कम विकसित देश में विरोधी दल की पद्धति महँगी पड़ेगी। वह यहाँ नहीं पुँसा सकती। यहाँ केवल विरोध के लिए विरोध की पुँजाइय नहीं है।

हमारे देश में ऐसे बहुत-से लोग और समूह हैं जो प्रगति के और सामाजिक तथा प्राथमिक विकास के मार्ग में सधा रोड़े धटकाने का काम करते रहते हैं ऐसे प्रतिक्रियावादी और समाज-विरोधी तत्त्वों से हमें हमेशा सजना पड़ता है और जब विरोधी दल अपने नजदीक के स्वार्थों को पूरा करने के लिए इन प्रगति-विरोधी तत्त्वों को बढ़ावा देने का बल करते हैं तब इन दलगत प्रवृत्तियों को रोकने में हमें अपनी शक्तियाँ अपनायी पड़ती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि विकास की बहुत-सी योजनाओं पर रुक अछर पड़ता है और प्रगति की रफ्तार अकारण बीभी पड़ जाती है। यह कोई अजम्बी बात नहीं कही जा सकती जबकि होना तो यह चाहिए कि देश में मिलने भी जन-जन के सामन हैं वे सब जनता की हानत छुनारने के काम में लग जाने चाहिए।

२१

मनुष्य और यन्त्र

प्रायः भारत में मनुष्यों और यन्त्रों के बीच होड़-सी लगी हुई है। एक तरफ़ साक्षी-करोड़ों लोग काम की और रोजी की माँग कर रहे हैं और दूसरी तरफ़ यहां के उद्योगपति और यन्त्रशास्त्री ऐसे यन्त्र माने या बनाने की विद्या में हैं कि उन्हें मनुष्यों पर अधिक निर्भर न रहना पड़े। यह सब विज्ञान और यन्त्र-शास्त्र की प्रगति के नाम पर हो रहा है। बहुतेरी नयी मशीन योजनानों के विमर्शने में देश में घनेकबाँध बाँधे जा रहे हैं। ईंट पत्थर के स्थान पर हम सीमेंट और कंक्रीट का उपयोग कर रहे हैं। मनुष्यों की बेकारी और रोजी की दृष्टि से इन नयी पद्धतियों में कितना फर्क पड़ जाता है, इसका हमारे इंजीनियर और यन्त्रशास्त्री मायब ही कभी ध्यान करते हैं। मगर बूने-परपर से काम लिया जायतो योजनानों में बहुत-से आश्चर्यों की रोजी मिल सकती है। सीमेंट कंक्रीट की पद्धति में काम प्रबन्ध जल्दी होता है, परन्तु भारत जैसे देश में जहाँ इनसे सारे आश्चर्यों की रोजी देने की समस्या है, यह पद्धति सावधानक नहीं है। देश के विभिन्न भागों में हजारों मल-बू (ट्यूब वेल) जोड़े जा रहे हैं परन्तु इसके लिए मनुष्यों हाथ बँटाये जानेवाले यन्त्रों से काम लेने के बजाय घमरीयाँ से घसिना आदिनी कीमती यन्त्र बँटाये जाते हैं। इनकी मरम्मत के नाम अथवा खस्ती हो जाता है, परन्तु ये हजारों-लाखों लोगों की रोजी लेकर इतना महान् राष्ट्रीय प्रमाण में माप लेने का अवसर नहीं प्रदान कर सकते। गाँवों के कारीगर धाने हाथ-करवे मशीन इन्की बोलू और कपड़े की छाँई का काम आदि करके किसी प्रकार अपना पैट भरने का प्रयास करते रहते हैं परन्तु उद्योगपतियों से मानो यह देखा नहीं जाता। वे इन कामों के कार-घाने और बिने सौमने के लिए नये-नये नयूने के यन्त्र बँटाते ही जा रहे हैं जो इन गाँवों के कारीगरों की रोजी छीनते जा रहे हैं। हमें बीड़ी के उद्योग से कोई प्रेम नहीं परन्तु यह आज एक लाख आदमियों की रोजी दे रहा है। अब बीड़ीयाँ बनाने के लिए बी देश में ही नये यन्त्र तैयार होने लग गये हैं जिनसे यदि पूरा मौका दिया गया तो यूरोपीय में काम करनेवाले लोग

सात घाबमियों की रोमी पर ये पानी फेर देंगे ।

मुख्य मुद्दे को साफ करने के लिए ये तो केवल कुछ उदाहरण दिनाये हैं । यह समझना बुरा है कि यन्त्र स्वयं कोई मशी या बुरी चीज है । वह तो उसका सही या गलत उपयोग उसे ऐसा बना देता है । उदाहरण के लिए समय बचानेवाले यन्त्रों को घायब कोई बुरा नहीं कहेगा । ऐसी मोटरें हवाई जहाज जैसे घाबोंमन के साधनों को हम सब अच्छा ही मानते हैं । घस्त्रालय मुर्खों में संहार के साधन हैं । मनुष्यों की हत्या के लिए इनका उपयोग करने की कोई समाह नहीं होगा । परन्तु मुख्य बात तो है उत्पादन के साधनों की । ये तो प्रकार के होते हैं—मजदूरों की बचत करनेवाले और मजदूरों को काम देनेवाले । मजदूरों की बचत करनेवाले यन्त्र उन बेरोजों के लिए अच्छे माने जायेंगे जहाँ काम करनेवाले घाबमियों की कमी है । परन्तु जहाँ बोज काम के घभाव में मजदुरी की हासत में महीनों बेकार रहते हैं वहाँ तो ऐसे यन्त्र संकट-स्वल्प ही होंगे । एक यन्त्र जो संयुक्त राज्य अमरीका में बरदान के समान माना जा सकता है वही भारत जैसे अशिक्षित देश में जहाँ पंजी कर्म और मजदूर बहुत हैं अमिषाप बन जायगा । हमारा अन्तिम साधन तो मनुष्य का कल्याण है । जो यन्त्र मनुष्य को बेकार किये उसकी उत्पादन-शमता बढ़ा सकता है, वह प्रथम ही स्वागत योग्य होता । परन्तु जो यन्त्र मनुष्यों को बेकार कर देते हैं अथवा उन्हें अपना मुताम या जड़ पुर्जा बना देते हैं, वे कभी मनुष्य-समाज के लिए मात्र लाभक नहीं माने जा सकते । इसलिये हमें याद रखना चाहिए कि हमारी समस्त आर्थिक और औद्योगिक विकास की योजनाओं में मनुष्य का स्थान सर्वोपरि रहे ।

आज भारत के सामने पूरी और आंशिक बेकारी की कठिन समस्या है । भारत के और बाहर के भी विशेषतः इसके कई उपाय सुझते हैं । परन्तु दिन-ब-दिन यह अधिकधिक स्पष्टता के साथ अनुभव किया जा रहा है कि अत्यंत उत्पादन को विकेंद्रित करके हम उसे यूहोद्योग ग्रामी-द्योग और छोटे उद्योगों के स्तर पर नहीं ले जायेंगे जोधों को हम अधिक काम नहीं दे सकेंगे । प्रसन्नता की बात है कि घासम ने ग्रामीणों की अपनी आर्थिक नीति के एक आनन्दक धन के रूप में मान लिया है । बड़े

वैमाने पर उत्पादन करनेवाले समस्त कारखानों में जिनमें कोई पन्द्रह करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है कुल मिलाकर तीस लाख घादमी काम कर रहे हैं। फिर भी जो लोग बड़े कारखाने खोलकर भारत की बेकारी की समस्या को हल करने के सपने देख रहे हैं—हम तब्य़र मान लें कि इसके लिए कहीं से पूंजी भी मिल जायगी—ले यह नहीं समझ पाते कि इन कारखानों में पैदा किये गए मान को खपाने के लिए हम बाजार कहीं से लावेंगे ? बड़े कारखानों में छोटी-सी पानी सोझने की बात करना भी बुरा है क्योंकि वह तो छोटे उद्योगों में भी किया जा सकता है। इस प्रकार केवल धर्मशास्त्र की दृष्टि से भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि अपने देश के नागरिकों के लिए जीविका का साधन निर्माण करने के लिए सासुर छोटे छोटे उद्योगों और सामोद्योगों का अधिक-से-अधिक विस्तार करें। घादी का अध्यात्म केवल कुछ गांधीवादियों की श्रृंखला नहीं है बल्कि हमारे सविधान के मार्ग-दर्शक सिद्धान्तों के धर्म के लिए वह अनिवार्य आवश्यक है। तभी इस देश में शांति और लोकतन्त्र की रक्षा हो सकेगी। पूंजी के प्रभाव और इस सारी धावादी को लेकर यदि हम इस छोटे धमरीका जैसे अत्यन्त समृद्ध और अति विकसित देशों की मकल करने की कोशिश करें तो वह हमारे लिए आत्मनाश का मार्ग होगा। हमारी समस्याएं चीन और जापान से अधिक मिसत्री-बुलन्ती हैं जो छोटे और मूहोद्योगों के घर हैं। मूहोद्योगों और सामोद्योगों की केवल बातों से काम नहीं बनेगा। बिक्रेती-करण या मीठ ये दो ही विकल्प हमारे सामने हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि सामोद्योग तो बड़ी के कीटों को उलटे घुमाकर हमें पीछे की से जायमे और आर्थिक विकास के मार्ग पर ला रहे प्रगति के दमियों का मुह पकट देंगे। यह भी कहा जाता है कि विकेंद्रित पद्धति से उत्पादन की मात्रा बढ़ जायगी तथा हमारी सम्पत्ता का स्तर मिर जायगा। परन्तु ये सारी बातेंनाएँ बल्ल हैं। यह सच है कि प्रारम्भ में कुछ समय हमें यावद कुछ मोटी मोटी चीजों में काम चलाना पड़े परन्तु इस मुग में मात्रिक प्रगति हमनीसेजी में हो रही है कि विकेंद्रित पद्धति के अन्त बहुत जल्दी उत्पादन कीमत और सुन्दरता में केन्द्रित पद्धति के दमियों को पीछे टांग देंगे। औद्योगिक शक्ति का प्रारम्भ पत्थर के औपने के उद्योग के

साध हुआ। कोयले के कारण स्वभावतः इस औद्योगिक युग में कुछ केन्दीकरण घनिभार्य का परन्तु बिजली की शक्ति उपलब्ध हो जाने के कारण अब उद्योगों का विकेंद्रीकरण करके उन्हें गांवों में ले जाया जा सकता है। अब शांति के लिए ऐटम की शक्ति उपयोग करने के प्रयोग शुरू हो गये हैं और हम धाया कर सकते हैं कि दस-बीस वर्षों में फिर औद्योगिक मशीनों की बनावट में एक बदरपस्त क्रान्ति घासेगी। हमें विश्वास है कि यह ऐटम की शक्ति उद्योगों को पूरी तरह से विकेंद्रित कर देगी। सच तो यह है कि प्राथमिक विज्ञान और यन्त्र-शास्त्र धीरे-धीरे केन्द्रित उद्योगों को प्रबलान्ति बनाते जा रहे हैं और अब घासेवाले युग में विकेंद्रित उत्पादन ही औद्योगिक विकास का वैज्ञानिक तरीका बन जायगा। यंत्रों में आवश्यक सुधार हो जाने पर गृहोद्योगों और छोटे उद्योगों में तैयार होनेवाला मात्र जीवत मात्र बड़े उद्योगों में बने मात्र की अपेक्षा सस्ता पड़ेगा। अमरीका जैसे अत्यन्त उद्योग-अधान देश में भी अब उद्योगों की विकेंद्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐटम के इस युग में अब राष्ट्र की रक्षा की दृष्टि से भी उद्योगों का विकेंद्रीकरण जरूरी हो गया है। ऐटम के युद्धों में बड़े कारखानों पर बड़ी आसानी से हम आने जा सकते हैं। मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच के झगड़े भी विकेंद्रीकरण में बड़े सबरपार हो सकते हैं क्योंकि छोटे उद्योगों और गृहोद्योगों में मशीनों के मासिक और काम करनेवाले घसग घसग नहीं होंगे। कारीगर स्वयं मशीनों के मासिक होंगे। औद्योगिक सहकारी समितियाँ न केवल उत्पादन की दृष्टि से अधिक सामवायक रहेंगी अपितु समाज-अस्थान की दृष्टि से भी वे बहुत अच्छी रहेंगी।

तो अब निर्णय करने का समय आ गया है। अब इस बात की बात पर नहीं दाबना चाहिए। अब गांधीजी के विचार की प्रवर्ध-रचना को घस जाने के सिवा कोई चारा नहीं दिखाई देता। बेकारी बढ़ित और भूख हमारे सामने दुस्मन हैं। जबतक हम सारे देश में गृहोद्योगों प्रागोद्योगों और छोटे-छोटे उद्योगों का आस नहीं बिछा देंगे तबसे छुटकारा नहीं होया। स्थापित स्वार्थवाले उद्योगपति निषण्य ही इसका विरोध करेंगे क्योंकि अब घोषण के और मुताफा कमाल के सारे रास्ते उनके लिए बन्द हो जायेंगे परन्तु यदि इस प्राचीन भूमि में भोजतन्त्र और शांति की रक्षा करनी है तो

उनकी बात मानने से हमें साफ इन्कार कर देना चाहिए। राजनीति में 'बीरे-बीरे' के लिए मुंजाइस नहीं होगी। संसार बड़ी तेजी-से घाये बढ़ रहा है और हम निर्बल नहीं बैठ सकते। हमें बहुत जल्दी करनी चाहिए। प्रगति और स्वतन्त्रता का मूल है निरन्तर सावधानी। कल्याण राज्य का कर्तव्य है कि पहले अपने नागरिकों की भलाई का ख्याल करे। मन्त्रों को मनुष्यों का भाविक नहीं सेवक समझ जाना चाहिए। मनुष्यों की धपेला मन्त्रों की वहि धमिक महत्त्व दिया गया तो उसका परिणाम होना बरबादी और संकट।

२४

हमारी उद्योग-नीति

आज से कुछ साल पहले प्रधान मन्त्री ने भारत सरकार का उद्योग नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव संसद में पढ़कर सुनाया था। यह प्रस्ताव अप्रैल सन् १९४८ में स्वीकृत किये गए प्रस्ताव से वहीं अधिक अच्छा था यद्यपि इसके भी आधारभूत सिद्धान्त तो वे ही थे। इस सम्बन्ध में यह याद रखना जरूरी है कि सन् १९४८ वाला प्रस्ताव रीण के विभाजन के तुरन्त बाद और भारतीय संविधान के तथा पहली बचचर्चीय योजना के बनने में पहले स्वीकृत किया गया था। पिछले कुछ वर्षों में देश के अन्दर बहुत-से महत्वपूर्ण परिवर्तन और बढनापं हो चुकी है। भारत ने अपने राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक मन्त्र के रूप में समाजवादी समाज-रचना को स्वीकार कर लिया है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उद्योग-नीति सम्बन्धी हमारे देश के प्रस्ताव में सामाजिक लाभ और सहकारी-समितिओं पर अधिक जोर दिया जाय। सरकार के उद्योग-नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार उद्योगों को तीन वर्गों में बाँट दिया गया है। पहले वर्ग में वे उद्योग आते हैं जिनके विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी राज्य की होगी। दूसरे वर्ग में ऐसे उद्योग होंगे जिन्हें राज्य घाटे चमकर प्राहिस्ता-प्राहिस्ता अपने हाथों में लेगा। इस क्षेत्र में मधे-मध कारखानों की स्थापना करने का काम राज्य करेगा। परन्तु इसमें निजी उद्योगपति भी सरकार के प्रबलों में सहयोग देंगे। तीसरे वर्ग में छह सार उद्योग होंगे। इनके विकास की जिम्मेदारी और

घौर सिद्धान्तों के बारे में सज्जना प्रज्ञान प्रकट करती है। हमारी बुद्धि यात्री समस्याओं को हल करने का तरीका यह नहीं है। इन्हें हमें स्वभाव पूर्वक घौर एक-दूसरे के दृष्टिकोण को ठीक तरह से समझकर हल करना चाहिए। श्री एकाम्बरान द्वारा प्राविष्ट सुत काठमे के एक लाख मन्त्र से प्रार्थना सम्बर चरखे से हमारा कोई खास सेना-सेना नहीं है। उसके बयाने किसी दूसरे मन्त्र को भी हम अपना सकते हैं जो हमारी जरूरतों को घौर सतों को पूरी कर दे परन्तु मुझे भी बात तो यह है कि हमारे राष्ट्रीय संयोजन में इस प्रकार के छोटे-छोटे परन्तु प्रचण्ड काम देनेवाले मन्त्रों का होना बड़ा जरूरी है इतना तो स्वीकार कर लिया जाय।

दूसरी बात यह है कि प्रगते पाच या दस बघों में देश से बेकारी को पूरी तरह से मिटाने की एक सफ़लीसवार योजना बना ली जाय। बड़े पैमाने पर केन्द्रित उत्पादन करनेवाले उद्योग घौर छोटे उद्योग इनमें से अधिक महत्व का क्लिको माना जाय इस विचार को सेड़ना बेकार है। कभी-कभी पुराने विचार घौर संजीव भावुकता की दृष्टि से इस प्रकल पर विचार किया जाता है, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हो सकता तलट उससे हमारे कार्य को हासि ही पहुँचने की सम्भावना है। हमारा मुख्य जोर तो है सेटी घौर उद्योगों की उपज बढ़ाने पर घौर उन लोगों को काम देने पर। अगर हमारे देश के उद्योगपति कोई ऐसी बिस्तृत योजना बना सकते हैं कि जिसके द्वारा देश से बेकारी मिट जाय घौर साथ ही बाहर के बाजारों पर कब्जा करने के लिए दूसरे राष्ट्रों के साथ अनुचित होड़ भी न करनी पड़े तो उनकी योजना को हम मान लेंगे घौर छोटे उद्योगों तथा ग्रामोद्योगों पर इतना जोर नहीं देंगे। प्राचार्य बिभोबा भावे ने तो महत्तक कह दिया है कि यदि केन्द्रित उत्पादन करनेवाले बड़े-बड़े कारखानों घौर उद्योगों के भासिक देश से बेकारी मिटा सकते हैं तो वे चरखे को जसा देने के लिए तैयार हैं। इसका अर्थ यही है कि देश में छोटे-छोटे उद्योगों घौर ग्रामोद्योगों पर जो इतना जोर दिया जा रहा है उसकी बड़ में कट्टर-गम्भी सम्भावना नहीं है। असली घौर बुनियादी समस्या है मानवी प्रार्थना उन लोगों को पेट भर रोटी देने की जो अपना पसीना बहाकर काम करने के लिए तैयार हैं।

हमारे प्रासिक घौर प्रायोगिक संयोजन का एक घौर महत्वपूर्ण पहलू

है जिसकी हमें चिन्ता करनी चाहिए। यह है प्रशिक्षित आबमियों का। खुशी की बात है कि उद्योग-जीति-सम्बन्धी प्रस्ताव में इसपर भी विचार किया गया है। उसमें कहा गया है कि उद्योगों के सार्वजनिक (सांख्यिक) क्षेत्र की जरूरतें बढ़ती जा रही हैं। इसी प्रकार छोटे-छोटे उद्योगों और सामोद्योगों का भी विकास हो रहा है और इनके लिए धातन-व्यवस्था पक्की और प्रशिक्षित कारीगर निर्माण कर ही रहा है। इसी प्रकार निरीदाकों की भी जरूरत लगातार बढ़ती जायगी। सार्वजनिक क्षेत्रों तथा निजी उद्योगों का काम सीखने की इच्छा रखनेवालों के प्रशिक्षण की भी बहुत बड़े पैमाने पर व्यवस्था करने की जरूरत है। विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थाओं में व्यापार-संचालन-सम्बन्धी प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए आवश्यक कदम उठाये जा रहे हैं। हम आशा करें कि औद्योगिक विकास और शिक्षा में आवश्यक सुधार एवं इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की ओर भी सरकार अधिक ध्यान देगी। कौसी अजीब बात है कि एक ओर तो शिक्षा में बेकारी बढ़ रही है और दूसरी तरफ हमारी अनेक विकास-योजनाओं के लिए प्रशिक्षित आबमी नहीं मिल रहे हैं।

समाजवादी समाज के निर्माण की धार कोई भी योजना सीजिये उसमें निश्चय ही मौकुराही के हार्यों में संचालन-मत्ता बसे जाने का बहुत बड़ा खतरा होता है। यद्यपि राष्ट्रीयकरण की कल्पना में एक हब तक सत्ता का केन्द्रीकरण होता ही है। फिर भी यह धारणा आवश्यक है कि धार्मिक और राजनैतिक मत्ता को बिभेन्नित करने की हर प्रकार से सावधानी रखनी जानी चाहिए। धार्मिक केन्द्रीकरण से भौतिकीय शक्तियाँ पैदा नहीं पानी और मौकुराही औरबार बन जाती है। इसलिये हमारे संयोजन को इन दो खतरों से बचा लेना बहुत जरूरी है। खुशी की बात है कि धामन के ध्यान में यह बात है, नवोक्ति १९५६ के उद्योग-जीतिवाले प्रस्ताव में सत्ता के बिभेन्नितरण पर भी वास खीर पर खीर दिया गया है। कहा गया है कि सार्वजनिक मामों में धार्मिक-से धार्मिक आजादी हो। परन्तु इनका ही काफी नहीं है। धानी बुनियादी धार्मिक जरूरतें पूरी करने में हमारे गांव स्थापनी रहे इसके लिए यह जरूरी है कि धानी योजनाएँ वे खुद ही बनावे

घर और शासन इसमें उन्हें हर तरह का प्रोत्साहन है और ध्यान बढ़ाये। कि पहले बताया जा चुका है उद्योगों के अत्यधिक केन्द्रीकरण से मध्यम और समाज की बुद्धि और क्षमता का विकास रुक जाता है, अर्थात् राष्ट्र की परिवर्तन प्रणाली का मोड़ भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। इस लिए हमारी उद्योग-नीति के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरणवादी बात कभी सर्वाधिक से प्रोत्साहित होने की जाय और इस काम में साम-संवाय से तथा सहकारी उद्योग-समितियों निश्चय ही बहुत बड़ा काम कर सकती हैं।

२२

छोटे उद्योगों का अर्थशास्त्र

हाल ही में कुछ दिन हुए एक धारण में इंटरनेशनल प्लानिंग टीम—अन्तर्राष्ट्रीय संयोजन दल—आया था। उसने भारत के छोटे उद्योगों की जांच की। इसके प्रतिवेदन ने देश में फैली हुई पूरी और आंशिक बेकारों की समस्या को हल करने के उपाय के रूप में शासन और उद्योगपतियों का ध्यान एक बार फिर छोटे और नुहोद्योगों पर केन्द्रित कर दिया। प्रतिवेदन का यह कथन सही कि भारत में अपने उद्योगों के लिए घर में ही काफी प्रशस्त बाजार है और वह "संसार के उत्तम बाजारों में से एक है।" इन विदेशी विशेषज्ञों ने साफ कहा है कि छोटे उद्योगों का विकास बहुत-बहुत कल्पनातीत बीमा है। इस अध्ययन-अन्वेषण पर मुख्यतः यह अंतर पड़ा है कि छोटे उद्योगों के विकास के बीमेपन का बुनियादी कारण प्रबन्ध का दोष है। इस कारण एक तो उनमें इस युग के अनुकूल उत्पादन-समर्थन नहीं आ पाई है और दूसरे उत्पादन के उपकरणों में या तो यहां के लोग सुधार करना नहीं चाहते या कर ही नहीं सकते। इस संयोजन दल का मुद्दा है कि विभिन्न छोटे उद्योगों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षात्मक खोले जाने चाहिए।

विदेशी विशेषज्ञों ने छोटे उद्योगों में सुधार के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की हैं उनका जरा गंभीरता से परीक्षण करना उचित होगा। प्रतिवेदन में कहा गया है कि जबतक छोटे उद्योगों के उपकरणों में अद्यतन सुधार नहीं किया जाएगा इस मौलिक युग की प्रतिस्पर्धा में इनमें काम करनेवाले कार्य-

मरों धीर कलाकारों के प्रयास बेकार जायेंगे। जबतक इन कारीगरों को अधिक चीजें धीर अधिक संपत्ति पैदा करने के साधन उपलब्ध न कर दिये जायेंगे तबतक न तो इनकी मजदूरी बढ़ सकती है धीर न इनकी रहन-सहन का स्तर ही बढ़ा हो सकता है। घाप जिसको पैदा ही नहीं करते उसका विमा जन-वितरण कैसे करेंगे? बिरोपकों ने कहा है 'मुभार को घाप रोकेंगे धीर समय के साथ बलसे से इन्कार करेंगे तो यह यत्न होगा। हमसे छोटे उद्योगों की सारी प्रगति रुक जायगी। वे पिछड़ जायेंगे।' उनकी यह भी राय है कि साधुनिक मुभारों से कारीगर बेकार नहीं होंगे बल्कि उनके लिए काम के नये-नये क्षेत्र खुलेंगे। यंत्रों धीर उपकरणों से मुभार करने से चीजें अधिक धीर अधिक तादात में बनने लगेगी। उनकी कीमतें घरेगी सब मांस भी प्रबल बढ़ेगी धीर इससे अधिकधिक कारीगरों की मांग होगी। पोटें फाउण्डेशन टीम ने इन विचारों का जरा गहराई से परीक्षण करने की जरूरत है। हमें पता नहीं कि ये सोच घातिल भारत कामोद्योग संघ के प्रधान केन्द्र पर कर्पा गये से या नहीं धीर इन्होंने गांधीजी के विचारों का समझने का यत्न भी किया या या नहीं। जबतक हमें पता बना है, ऐसा कोई प्रयत्न इन्होंने नहीं किया है। यह दुर्भाग्य की बात है। बिदेसी बिरोपकों के ज्ञान से लाभ उठाकर उत्पन्न की प्रक्रियाओं से हम मुभार करना जरूर चाहते हैं परन्तु यदि ये बिरोपक यहां यह क्या न निकर घाते हों कि मांधी भी प्रयत्न उनके छात्रियों ने इस विषय में पिछले वर्षों में कुछ भी नहीं सोचा है तो वे बड़ी भूल करते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि स्वयं गांधीजी यंत्रों के बिरोधी नहीं थे। वह जरा से मुभार करना चाहते थे धीर इसके लिए उन्होंने घण्टे-घण्टे इनाम भी घोषित किये थे। भारत के कामोद्योगों में क्वा-नवा मुभार हो सकते हैं इसके लगातार प्रयोग बहु वर्षों में करते रहत थे। इसमें सिद्ध है कि वह यंत्र-कमा प्रयत्न हममें घण्टे-घण्टे साधुनिक मुभारों के बिरोध नहीं थे। वह बिरोध ये यंत्रों के पामलपन के धीर मजदूरों की बचत करने के सामर भारत जैसे देश में जहां पूंजी तो है कम धीर मजदूर है बहुत। वह ऐसे यंत्रों का स्वागत करते थे जो गांधी में—भौराओं में रहनेवाले करोड़ों लोगों के धम को हलका कर सकें। बिजली के उपयोग के भी बिरोध वह नहीं

और शासन इसमें उन्हें हर तरह का प्रोत्साहन है और प्राग पड़ावे कि पहले बताया जा चुका है उद्योगों के अत्यधिक केन्द्रीकरण से न केवल व्यक्ति और समाज की बुद्धि और सक्ति का विकास बढ़ जाता है अपितु राष्ट्र की परिवहन-मणाली का बोझ भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। इस लिए हमारी उद्योग-नीति के अग्रम में विकेन्द्रीकरणवासी बात कभी धाँधों से प्रोत्साहन देने की जाय और इस काम में ग्राम-संघामतों तथा सहकारी उद्योग-समितियों निश्चय बहुत बड़ा काम कर सकती हैं।

२५

छोटे उद्योगों का प्रवर्धनात्मक

हाल ही में कुछ दिन हुए जब भारत में इंटरनेशनल लैबरिय टीम—अंतर्राष्ट्रीय संयोजन दल—आया था। उसने भारत के छोटे उद्योगों की जाँच की। इसके प्रतिवेदन ने देश में फैली हुई पूरी और आंशिक बेकारों की समस्या को हल करने के उपाय के रूप में शासन और उद्योगपतियों का ध्यान एक बार फिर छोटे और बृहोद्योगों पर केन्द्रित कर दिया। प्रतिवेदन का यह कथन सही कि भारत में अपने उद्योगों के लिए घर में ही काफी प्रचुर सामग्री है और यह “सस्तर के उत्तम बाजारों में से एक है।” इन बिदेसी विशेषज्ञों ने साफ कहा है कि छोटे उद्योगों का विकास बहुत-बहुत आवश्यकतापूर्ण बीमा है। इस सम्बन्धन-मन्त्रालय पर मुख्यतः यह प्रसर पड़ा है कि छोटे उद्योगों के विकास के बीमेपन का बुनियादी कारण प्रबन्ध का दोष है। इस कारण एक तो उनमें इस युग के अनुसूय उत्पादन-समता नहीं था पाई है और दूसरे उत्पादन के उपकरणों में या तो बड़ा के जोर मुबार करना नहीं चाहते या कर ही नहीं सकते। इस संयोजन दल का सुझाव है कि विविध छोटे उद्योगों के प्रशिक्षण के लिए सिसजानाम खोले जाने चाहिए।

बिदेसी विशेषज्ञों ने छोटे उद्योगों में मुबार के सम्बन्ध में जो सिद्धांतों की हैं उनका जरा बारीकी से परीक्षण करना उचित होया। प्रतिवेदन में कहा गया है कि जबतक छोटे उद्योगों के उपकरणों में अद्यतन मुबार नहीं किया जायता इस यांत्रिक युग की प्रतिस्पर्धा में इनमें काम करनेवाले कारी-

गरीब और कलाकारों के प्रवास बेकार जायये। बसतन इन कारीगरों को अधिक बीज और अधिक सपत्ति पैदा करने के साधन उपलब्ध न कर दिये जायेंगे तबतक न तो इनकी मजदूरी बढ़ सकती है और न इनकी रहन-सहन का स्तर ही ऊँचा हो सकता है। आप जिसको पैदा ही नहीं करते उसका विभाजन-वितरण कैसे करेंगे? बिरोपनों ने कहा है, 'सुधार को आप रोकने और समय के साथ चलने से इन्कार करेंगे तो यह गलत होगा। हमने छोटे उद्योगों की सारी प्रगति रुक जायगी। वे पिछड़ जायेंगे। उनकी यह भी राय है कि प्रापुनिक सुधारों से कारीगर बेकार नहीं होंगे बल्कि उनके लिए काम के नये-नये क्षेत्र खुलेंगे। यंत्रों और उपकरणों में सुधार करने से बीज धन्नी और अधिक ताराब में बनने लगेंगी। उनकी बीमों बढ़ती तब मांग भी घबड़ बढ़नी और इससे अधिकाधिक कारीगरों की मांग होगी। फोड फ़ाउन्डेशन टीम ने इन विचारों का जरा गहराई से परीक्षण करने की बक़रत है। हमें पता नहीं कि ये लोग प्राचिन भारत प्रायोद्योग संघ के प्रधान केन्द्र पर बर्षा गये थे या नहीं और इन्होंने गांधीजी के विचारों को समझने का यत्न भी किया या ना नहीं। बहराँतक हमें पता चला है, ऐसा कोई प्रयत्न इन्होंने नहीं किया है। यह दुर्भाग्य की बात है। बिदेसी बिरोपनों के ज्ञान से लाभ उठाकर उत्पादन की प्रक्रियाओं में हम सुधार करना चाहते हैं परन्तु यदि ये बिरोपन यहाँ वह क्या न लेकर पाते हों कि गांधी जी समझा उनके छात्रियों ने इस विषय में पिछले बर्षों में कुछ भी नहीं सोचा है तो वे बड़ी भूल करते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि स्वयं गांधीजी यंत्रों के बिरोधी नहीं थे। वह करते थे सुधार करना चाहते थे और हमके लिए उन्होंने घण्टे-घण्टे इनाम भी पोषित किये थे। भारत के प्रायोद्योगों में क्या-क्या सुधार हो सकते हैं इसके सगाठार प्रयोग वह बर्षों में करने रहने थे। इसमें सिद्ध है कि वह यंत्र-जमा घषवा इलम घण्टे-से-घण्टे प्रापुनिक सुधारों के बिद्वत् नहीं थे। वह बिद्वत् थे यंत्रों के पागलपन के और मजदूरों की बचत करने के छालकर भारत जैसे देश में जहाँ पूँजी तो है कम और मजदूर हैं बहुत। वह ऐसे बर्षों का स्वागत करते थे जो बाबों में—मौराहों में रहनेवाले करोड़ों लोगों के धन की हलबा कर सकें। बिजली के उपयोग के भी बिद्वत् वह नहीं

ने । उन्होंने कहा था “धनर हमें भावों के दूर पर में बिजली मिल सकती है और दायीय अपने बगी में बैठकर बिजली से अपने घोषार बना सकें तो मुझे कई आपत्ति नहीं होगी । इन सारी बातों में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है मनुष्य । वह बेकार न रहे । यह सब है कि हमें देश का कुल उत्पादन बढ़ाना है । निश्चय ही उत्पादन के तरीकों में सुधार लो करना ही होगा । परन्तु केवल उत्पादन बढ़े और लोगों की घाय घबाल रोनी और करीबने की चिन्ता न बढ़े तो इससे हमारी मूल समस्या हम नहीं होगी । इसलिए हमारा उद्देश्य है सबको काम देना घबाल बेकारी का निर्मूलन और अधिकतम उत्पादन । फिर यह भी हमें ध्यान रखना चाहिए कि अपने माल को आपत्ति के लिए हम बाहर के बाजारों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रह सकते । यह तो तभी सम्भव होगा जब हमारे उत्पादनों के साधनों में अधिक पूँजी की अपेक्षा अधिक मजदूरों को काम दिया जा सके ।

इसलिए आर्थिक सुधार और आधुनिकीकरण के हम निरुद्ध नहीं हैं । मुझे की बात यह है कि छोटे उद्योगों और बुद्धोद्योग में उत्पादन के साधनों के सुधारों की दृष्टि में हम कहीं अपनी मर्बादियों को न मूल काम नहीं तो हम नई सम्म्याण ढाँड़ी कर लेंगे । इसलिए आर्थिक सुधार भी किस प्रकार का और किस हद तक हो यह देश-देश में और एक ही देश के विभिन्न प्रदेशों में बड़ा की परिस्थितियों के अनुसार धन-धन-धन यह देखना होगा । अमेरिका और रूस में मनुष्य कम है । भारत में मनुष्य अधिक है । अतः उत्पादन के साधनों में बड़ा की सुधार होने उनका हेतु होगा मनुष्य की बचत करना किन्तु हमारे यहां वे ही आर्थिक सुधार उपयोगी और लाभदायक होंगे जो धन बचाकर अधिक मनुष्यों को काम दे सकें । स्वयं भारत में भी की धन राजस्वान के लिए उपयोगी होगा वह बाबलकोर-कोबीन में नाम नहीं देना क्योंकि राजस्वान में आबादी बिरल है और बाबलकोर कोबीन में घनी । इसलिए आधुनिक आर्थिक सुधारों के उपयोग में सदा बड़ी सावधानी अध्ययन और संयोजन की जरूरत है । सबसे वैज्ञानिक प्रवृत्ति और बेकारी का संयोजन का ध्यान रखना पड़ता है ।

धन-सरकार को अधिक भारत जाती और सामोसोय बोर्ड की प्रवृत्तियों और प्रयोग तथा नये छोटे उद्योगों के बोर्ड की प्रवृत्तियों में सार

सत्य और सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा या तो प्रत्येक अलग-अलग काम होया या संघर्ष पैदा होया। यह काम हमें अपने हम और बिभाग को सुना रखकर करना होगा। किसी भी बात को बढ़ा के साथ पकड़कर बैठने से काम नहीं चलेगा। हमारी दृष्टि वैज्ञानिक और युनिटसंघत हो। साथ ही वास्तविकता को भी न भूलें। न तो पुरानी बात का घाघर रख न नवीनता की बिच करें। यह धारमबातक होया।

१६

मिसें, हाथकरघे और छापी

कपड़ा उद्योग जांच-समिति (टेक्स्टाइल इन्वैस्टिगटरी कमेटी) का प्रतिवेदन का सार यह है कि जब मिसें में बुनाई के लक्ष का अधिक विस्तार नहीं किया जाना चाहिए। अनुमान है कि सन् १९६० के करीब की छापी १८ गज की वार्षिक मांग के हिसाब से देश में कुल ७२० करोड़ पज कपड़े ही जरूरत होगी। इसके अतिरिक्त १०० करोड़ गज कपड़ा निर्यात के लिए और हमारी अपनी जरूरतों के लिए यदि १६ करोड़ गज कपड़ा हम और दिन सेते हैं तो समिति का सुझाव है कि बेकारों को काम देने के लिए तथा 'पूँजी की बचत के लिए भी इसके अतिरिक्त कपड़े की पूर्ति हमें कपड़े के विकेंद्रित उद्योग के द्वारा कर लेनी चाहिए।' हाथकरघों को अधिक कार्यक्षम बनाने के लिए समिति की राय है कि उन्हें 'घरि' द्वारा बनाने की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। अन्तिम ब्ययना यह है कि पण्डू-बीछ बय के बाद लगभग सारे हाथ-करघे मुधरे हुए करबों में घर्षान् राबिन-बानित विवेकिठ करबा-उद्योग में बन्म आयेंगे। बहुत धंधे और सुन्दर बसानाय ममूनों के कपड़े बनाने के लिए बोर्ड १० करोड़ हाथ से ही बमते रहेंगे।" इस सम्बन्ध में हम समिति का अनुमान है कि घरि के उपयोग के कारण लगभग २ ००० बारीयर हर बय बेकार होंगे। ऊपर जो १६ करोड़ पज के अतिरिक्त कपड़े का अधिक घाया है उनके लिए अधिक मून की भी जरूरत होगी। यह मून पैदा करने के लिए १०५ लाख अतिरिक्त तबुए (मिसें के) लगाने होंगे जिसकी पूर्ति २० ००० तबुएबामी ५८ मून मिलें गयी करवे या १० ०० तबुएबामी ६८ मून-मिसें राही करके भी

जा सकेंगी। वह भी सुझाया गया है कि गुण्टकस में स्थापित सहकार पद्धतिवाली कुछ मिलें बनाने से भी इस बकरत की पूर्ति की जा सकती है। समिति की निश्चित राय है कि रंथीम साड़ियाँ बनाने का काम पूर्ण तरह से हाथकरवा उद्योग के लिए ही सुरक्षित रहे। केवल बनावट की सुविधा के ब्याल से ही नहीं बल्कि “कमबोर विभाग को भीमिठ रखने के ब्याल से भी यह अत्यन्त जरूरी है। हाथकरवों पर बने कपड़े की कीमतों के मिलों में बने कपड़े की कीमतों के बराबर लाने के लिए एक सम्झौत यह कि मिलों पर प्रतिरिक्त या उत्पादन कर लगा दिया जाय परन्तु समिति ने इसे ‘व्यावहारिक’ नहीं बताया। फिर भी समिति इस नतीजे पर पहुँची है कि ‘हाथकरवे और सफ़्त वालिठ बरेसू करवों को इस समय जो छंद प्राप्त किया गया है, वह अभी अवश्य जारी रहे। यह भी कहा गया है कि ‘हाथकरवों द्वारा मसमस बायलों धादि की बुनाई पर रोक नहीं लगाई जाय।

कपड़े के मिल-उद्योग के बारे में समिति की राय यह है कि “हर साल ५ लाख करवे हटाकर उनके स्थान पर नये अपने-आप बसनेवाले (माटोमेटिक) करवे लगाने की इजाजत दी जाय। इस बटि से बीच वर्ष में वर्तमान करवों की संख्या में से लाख करवे गये हो जायेंगे। समिति ने हिसाब लगाया है कि इस सुधार के कमस्वरूप प्रतिवर्ष ४ बुनकर बेकार होंगे—यदि मान लें कि एक कारीगर साधारणतः १९ नये करवों को संभाल सकता है। समिति की सिफ़ारिश यह भी है कि “मिलों में कपड़े का उत्पादन ३० करोड़ गज के करीब सीमित कर दिया जाय और यह कि योजना-काल की अवधि में मिलों में लाख धबका सुधरे हुए नये करवे कठई नहीं बढ़ाये जाय। समिति ने धागे कहा है कि सूट की मिलों का सम्झौत सीधे हाथकरवों से कर दिया जाय।

समिति का प्रतिवेदन पढ़कर सन्तोष भी होता है और निराशा भी। सन्तोष इस बात पर कि समिति मिलों में करवे बढ़ाने की सलाह नहीं देती। यह भी सन्तोष की बात है कि हाथकरवों के लिए जो क्षेत्र सुरक्षित कर दिया गया है उसे भी वह मंजूर कर लेता है और श्री धाबमी १८ गज के हिसाब से जितने भी अधिक कपड़े की बकरत हो वह सब विकेंद्रित

मदति से ही बन। मिले और हाथकरघों के मुबार के कार्यक्रम को समिति ने पन्द्रह से बीस वर्ष की अवधि में फैला दिया है। हेतु यह है कि "सोगों की रोजी मिलती रहे और सामाजिक तथा धार्मिक उत्पल-मुपल एकाएक न हो।" परन्तु निराशा इस बात पर हा रही है कि उसने समस्या को सही और पर समझकर साहस के साथ उसे सुलझाने की हिम्मत नहीं दिखाई। संवत्सरीय योजनाओं की प्रगति के बारे में जो ताजे-से-ताजे समाचार आये हैं उनमें ज्ञात होता है कि देश में बेकारी अधिकाधिक गम्भीर रूप बरस करती जा रही है। अतः आज सबसे बड़ी प्रश्न यही है कि इन लोगों को काम क्या दें? सूत्री करण्डे का उद्योग हमारे बड़े मुर्मवर्धित उद्योगों में से एक है। यह एक ऐसी चीज पैदा करता है जिसकी मांग सबत्र है। अतः हमें आशा तो यह की कि यह कमेटी ऐसी कोई योजना सुझावेगी जिसके द्वारा गादी और हाथकरघों का व्यापक बिस्तार करके देश के अधिकाधिक बेकारों को रोजी दी जा सकेगी। इसके बिपरीत यह तो उलटे २४ ०० और धार्मिक कारीगरों को बेकार करने की योजना सामने रत रही है और सो भी छः वर्षों में ३ करोड़ रुपये हमारी जेब से निचालकर। समिति का अनुमान है कि देश में कुल १२ लाख हाथकरघे काम कर रहे हैं। हमें यह संख्या सही नहीं लगती। समिति की राय है कि अब हाथकरघों की संख्या को बढ़ाना उचित नहीं होगा। इसलिये बपड़े की बड़ी हुई मांग को पूरी करने के लिए इन्हें शक्तिशालित करवों में बदल देना चाहिए। हमने आशा की थी कि प्रतिबेदन में छहों और मावों में फैली हुई बेकारी पर ताम और पर विचार किया जायगा और उसे दूर करने के उपाय के रूप में हाथ बटाई और लाठी के पहलू पर विशेष जोर दिया जायगा। परन्तु यह कुछ नहीं हुआ। साइबलैण्डाइन पर होने वालीम धृष्ट की छोटी-सी गिपोहें तैयार करने में समिति ने बार्डर महीने लगा दिये और अब यह मिफारिम करती है कि "कुछ बरिष्ठ लोगों को रोजी मिलती रहे इस हेतु में कुछ समय तक हाथबटाई जारी रखनी ही पड़गी।" इसलिए गादी के प्रश्न पर विचार करने के लिए धनग समिति की नियुक्ति करना उचित होगा। यह तो जने पर नमक छिड़कनेवासी बात है।

याद रह कि हमारे सामने आज मुख्य समस्या है मानवता की। देश

के अन्तर काम करने शायद जितने भी मनुष्य हैं उन्हें उपयोगी काम मिलना ही चाहिए। यह उनका हक है। हमारे संविधान में भी इस मौलिक अधिकार को माना है। पूर्व और पश्चिम के समान प्रगतिशील देशों ने माना है कि अपने नागरिकों को रोज़ी कमाने का साधन उपलब्ध कर देना उनका कर्तव्य है और यदि वे यह नहीं कर सकते तो जो बेकार हैं उन्हें बेकारी का पर्याप्त मासिक भत्ता दें। परन्तु ऐसे निर्बाह-व्यय देने की अपेक्षा कहीं अच्छा मार्ग है उन्हें उपयुक्त काम देना। जो मनुष्य बगैर परिश्रम के खाता है, उसकी भैतिक हानि तो होती ही है, परन्तु धार्मिक और मानसिक हानि भी होती है। धार्मिक धार्मिक संयोजन का बुनियादी उद्देश्य है बेकारी मिटाना। इसीलिए हमारे संयोजकों को चाहिए कि वे ऐसी धार्मिक और औद्योगिक योजनाएं बना लें कि जिससे बड़े छोटे सामोसों और मूहोसों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक धार्मिकों को काम दिया जा सके। जनों में सुधार करने के बिना हम नहीं हैं। परन्तु धार्मिक सुधारों की बुनियाद में इसी की बुद्धि हो कि वे उस देश की परिस्थितियों के अनुकूल हों। इस दृष्टि से देवें तो कहना हीया कि कपड़ा-उद्योग आंच-समिति इस विद्यालय देश में फैली व्यापक बेकारी को दूर करने के हेतु से सारी समस्या को नहीं देख सकी है।

२७

मानविक सुधारों का अर्थशास्त्र

पहले महाभूट के बाद जर्मनी को अपने सब उद्योग को नष्ट हो गये थे फिर से सभ्य करने पड़े। इस बार उसने बड़ी सावधानी से काम लिया और समय तथा भास की जरूरी मर्यादों के भी-बो भीय पहले वे सबको हटा लिया। इस प्रक्रिया का नाम है रीथनलाइजेशन। भूट के बाद के जाल में यह सुधार एक नया शास्त्र ही बन गया। वर्तमान अर्थशास्त्र की भाषा में रीथनलाइजेशन का अर्थ होता है नये-नये धार्मिकारों का उपयोग व्यवस्था में वैज्ञानिक सुधार और प्रक्रियाओं का सम्मिलन। इस धर्म का संकुचित अर्थ करके इसे धर्म और पर दुरु करार देना अनुचित होगा। औद्योगिक प्रवर्तकों को दूर धार्मिक बुद्धि की कसीदी पर कसने का मूल रीथन

साहज्यमान करता है। इसलिए इसको एक नम नुस्खा कहना भूल होगी परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस क्रिया—रैशनलाइजेशन—का हम धन्यता और मूलतः उपयोग तो नहीं कर रहे हैं? इसका अर्थ केवल इतना है कि हम अपने धार्मिक और औद्योगिक प्रयत्नों को धिक्का रूप हर देश और प्रदेश में बदलता चलाता है, वैज्ञानिक की दृष्टि से इस करने का मूल करें। रैशनलाइजेशन का अर्थ धमकीका जैसे एक देश में जहाँ विपुल बल है और मजदूरों की कमी है एक हो सकता है और दूसरे भारत जैसे देश में जहाँ पूँजी कम और मजदूर बल है, विपुल बल हो सकता है। इसलिए धमकीका के अंग का रैशनलाइजेशन भारत में करने की बात करना विपुल बुद्धिहीनता की बात होगी।

भारत में धार्मिक संयोजन करनेवालों के सामने सबसे बड़ी और बुनियादी समस्या है। यहाँ धीरे धीरे की बेकारी—पूरी और धार्मिक भी। सब तो यह है कि यह धर्म-धार्मिक हमारे राष्ट्र की पूँजी है, जिसका उपयोग हमें राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ाने में अधिक-से-अधिक कर लेना चाहिए। इसलिए धार्मिकी प्रत्यक्ष यन्त्रों के नहीं यन्त्रों के अधिकारबुद्धि उपयोग के बिना के। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर मण्डल के आइरैक्टर की डेविड मोर्स ने सन् १९५३ के अपने प्रतिवेदन (रिपोर्ट) में लिखा है, 'मनुष्य राष्ट्र धमकीका और केनेडा जैसे देशों में जिस प्रकार के कीमती और मजदूरों की बचत करनेवाले यन्त्रों का उपयोग किया जाता है उनका उपयोग करने का प्रयत्न ऐसे देशों में करना अनुचित होगा जहाँ मजदूर बहुत हैं, विपुल पूँजी की कमी है। इसलिए भारत जैसे देश में औद्योगिक पुनः संगठन के लिए उपयुक्त नीति तो सबको पूरा काम देकर अधिक-से-अधिक उत्पादन लेने की ही होगी। अधिक लोगों को काम देकर ही मजदूर उत्पादन बढ़ाने का ध्यान न रखना हानिकारक है। कम विकसित देशों के लिए यह भूल धारमनाश का कारण होगी। इसी प्रकार अपने देश के बेकारों और धार्मिक बेकारों को काम देने का ध्यान न रखकर केवल औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने का ही ध्यान करना भी राष्ट्र के प्रति सबसे बड़ा अन्याय होगा। इसलिए हमारी धार्मिक बीमारी का सही उपाय तो यही होगा कि हम अपने सब धार्मिकों को पूरी रोजी दें और उनके पूरा-पूरा उत्पादन भी लें।

सिया है। परन्तु इस अनुचित और प्रत्यायपूर्ण धारोप का हम बहुत जोर के साथ प्रतिजार्ज करेंगे। यन्न-शास्त्र में की गई प्रवृत्ति का नाम यदि गृहोद्योगों और ग्रामोद्योगों को दिया जाय तो निश्चित ही उनकी कार्य-क्षमता और उत्पादन-क्षमता काफी अधिक बढ़ाई जा सकती है। हेनरी फोर्ड के समान संसार-मसिद्ध उद्योगपति ने भी स्वीकार किया है कि 'बड़े कारखाने ग्राम-स्तरीय पर लाभदायक नहीं होते। इसलिए केवल वस्तुओं की कीमतें घटाने के लिए ही नहीं बल्कि उत्पादन में लगनेवाला घन शक्ति में उत्पादकों को बाँटने के लिए भी बड़े-बड़े उद्योगों को छोड़कर गाँवों में ले जाना चाहिए।' जो हो चाहे हमारे देश में कॉन्फेस पार्टीमें स्वतन्त्र समारोहों और मइलों के समान गांधीयान स्मारकों के रूप में घन का जो सुखदापूर्ण प्रदर्शन किया जा रहा है, उसे एकदम बन्द करने के लिए हम तो बहुत धातुपूर्वक कहेंगे कि गरीबी का भी बकर बंटवारा हो। जबकि हम गांधीजी के सपने का नया भारत बनाने जा रहे हैं गरीबों और धनीयों के बीच इस भीड़ी खाई को हम कदापि बरबाद नहीं कर सकते।

२८

हमारी श्रम-नीति

केन्द्रीय श्रम-मन्त्री श्री मुजबारीलालजी मन्दा ने कुछ दिन पहले संसद में कहा था कि सरकार कोई समिति बनाना चाहती है जो इस बात का पता लगाती रहेगी कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले मजदूरों के सम्बन्ध में जो कानून बनते जाते हैं उनका पालन कैसे हो रहा है। उन्होंने यह भी बताया कि भगड़े मिटाने और समझौता कराने के काम को अधिक पति देने के लिए उनका मन्त्रालय इस शाखा के प्रभवे को बढ़ा रहा है और श्रमिकों की मजदूरी सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उनका मन्त्रालय बहुत-कुछ करना चाहता है। परन्तु आर्थिक कठिनाइयाँ उनके कर्मों को रोकती रहती हैं। यों सन् १९४७ के बाद मजदूरों के वेतन में पच्चीस प्रतिशत की वृद्धि हो गई है परन्तु यदि १९३९ में दिये गए वेतन में तुलना करें तो उसकी वृद्धि केवल तीन प्रतिशत ही हुई है।

मन्दाजी ने बताया कि वर्तमान राज्यों के बल पर भी उत्पादन

तो बढ़ाया जा सकता है और यदि ऐसा हो सके तो आज देश को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वे नहीं रहेगी। उन्होंने यह भी कहा कि जब मजदूर उत्पादन बढ़ा देंगे और साथ ही धन्यभाजन की रक्षा भी करेंगे तब वे समाज से बाह्य वारिष्मतिक की मांग भी कर सकेंगे। मजदूरों की भाकांताओं को पूरी करने में लोकमत का भी प्रभाव नो पड़ेगा ही। इसलिए मजदूरों के संघटनों को लोकमत की अपने विपक्ष में नहीं जाने देना चाहिए। उन्हें जनता की नजर में यह सा देना चाहिए कि वे उसके लिए क्या कर रहे हैं।

आगे बात का सार यह है कि अपने अधिकारों के साथ-साथ मजदूरों को अपने कर्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिए। दुर्भाग्य की बात है कि अधिकतर मजदूर-संघटन केवल अधिकारों पर ही अधिक जोर देने हैं और उत्पादन बढ़ाने की बरम प्रावणकता का ध्यान नहीं करते। जबतक बेमनों का सम्बन्ध प्रावणकता में उत्पादन के साथ नहीं जोड़ दिया जाता तब तक सर्वसाधारण जनता की सहानुभूति और सहयोग मजदूरों के साथ नहीं हो सकती। और वही तो उपमांसा है। हमारा लक्ष्य है कि मजदूरों के नेताओं और घासन को मिलकर उद्योगों में बतन का प्राचार समय के बरने काम को अधिक बना देना चाहिए। बहुत-से देशों में यह पद्धति प्रचलित है भी। इसने कुशल और सममसार मजदूर अधिक लाभ कर सकेंगे और देश की समृद्धि को बढ़ा सकेंगे। भारत-जैसे कम विकसित देश में यह और भी जरूरी है कि उद्योगों में तथा सेती में भी बेउन नाम के ऊपर प्राचारित कर दिया जाय। इस प्राणा करते हैं कि सम-सम्बन्ध मजदूरों में सम्बन्ध रगनेवाने बानुमों पर इस दृष्टि में फिर विचार करके उनमें ऐन उचित संगोपन कर दिया। मजदूरों की प्राधिक स्थिति हम सभी सुधारना चाहते हैं। भारत में हम तो मानते हैं कि सम्मिलित सत्ताराम्य धर्मात् कोधोपेरे टिक बॉमनदेश में उत्पादन के सारे साधनों पर मजदूरों का ही स्वामित्य हो बरम्प पद अभी सम्भव होवा जब मजदूर अपने अधिकारों के समान ही अपने कर्तव्यों का भी बरान करेंगे।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएं

जमीन-सम्बन्धी सुधार, बाढ़-नियन्त्रण और उद्योगों में सुधार के मूल बड़े अंतिम और मुश्किल हैं। इन्हें बड़ी सावधानी और सघनता पूर्वक सुलझाने की आवश्यकता है। परन्तु अपने-आप में मुश्किल होने पर भी वे प्राप्त बन जाते हैं यदि हमारे सामने अपने उद्देश्य साफ हों। ऐसे कठिन प्रश्न जब कभी हमारे सामने उपस्थित हों तो उनको हल करने का एक बड़ा सुन्दर सुसम्बन्ध हमें महात्मा गांधी ने बता दिया है। उन्होंने कहा है 'जब कभी तुम्हें आगे का मार्ग सूझ न पड़े या तुमपर स्वार्थ घबरा मोह सघारी गांठ से तब इस कसीटी से काम लो। उस परीब-से-परीब और कमजोर-से-कमजोर भारतीय की सूरत को बाह करो जिस तुमने कभी देखा हो और फिर अपने-आपसे पूछो कि तुम जो कष्ट उठाना चाहते हो उससे इस परीब को किसी प्रकार भी लाभ हो सकता है। उसे इसका कोई उपयोग होगा? दूसरे कष्टों में जो पेट में धन्न के अभाव में और धारमा में ज्ञान के अभाव में सूखों मर रहे हैं उनके लिए तुम्हारा यह कष्ट स्वराज्य को नजदीक लानेवाला है? यदि इस तरह पूछो तो तुम्हारा सारा अन्वेष्ट और मोह घायल जायगा। राष्ट्र की महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करते समय राष्ट्रपिता का यह सुवचन सदा हमारे ध्यान में रहना चाहिए, क्योंकि लोकतांत्रिक राज्य का मुख्य उद्देश्य तो आखिर यही है न कि जो हमारे पैरों तले कुचने जा रहे हैं उन्हें ऊपर उठाया जाय और अभी तक अन्धके हाथों में सत्ता और सम्पत्ति केन्द्रित रही है उन्हें धान्तिपूर्वक कुच नीचे लाया जाय। जबतक सम्पत्ति का अन्वेषण परीबी का भी पुन वितरण हम वर्तमान समाज में नहीं करते तबतक नवीन और समृद्धिवादी भारत का निर्माण हम नहीं कर सकेंगे। सामाजिक और धार्मिक समानता के नदीर केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता का बहुत अधिक मूल्य नहीं होगा।

उदाहरणार्थ जमीन-सम्बन्धी सुधारों में हमारा मुख्य काम उन लोगों की रक्षा का होगा जो जमीन को लुप्त जोतते हैं। लक्ष्मण लाल राज्यों में जमीन पर से हमने मध्यमकों को हटा ही दिया है, परन्तु जोतनेवासे अभी

पूरी तरह सुरक्षित नहीं हो पाये हैं। सब तो जिन्होंने एक घण्टा समय सब जमीन का नयाग नहीं दिया है। उनको छोड़कर सोच सब जोतनेवालों को कामकाज मा जहाँ जकरत हो। राष्ट्रीय प्राप्ति द्वारा बेकामी से बचाया जाना चाहिए। सबसे अधिक जरूरी बात यह है कि जो करोड़ों लोग पचासों वर्षों में जमीन पर मजबूरी करके किसी तरह अपना पैदा करते घाम हैं उन्हें रोजी का कोई निश्चित साधन देकर हम निश्चित कर दें। जहाँ तक मजदूरों के सुधार का प्रश्न है, उसमें भी बुनियादी सवाल तो हमारे सामने पड़ी है कि पहले हम अपने उन करोड़ों देश बाइयों का पैदा करने का धनसा-सा सामन दें कि जो काम करने की इच्छा और पकड़ होने पर भी बेकार बैठे हैं। लोकतन्त्र के विचार में हमने ध्यानपूर्वक दिया है कि जिनका भी छोटी काम करने सामक है उन सब भारत-वासियों को काम दिया जायगा। अब इस बुनियादी राष्ट्रीय नीति के बिना जो भी काम जाना हो उसपर ध्यान करने से पहले हमें ही बार विचार कर लेना चाहिए। कारखानों में मुझे हुए मजदूर लगाने पर बेकार होनेवाले धारमियों का हम काम देने की कोशिश करेंगे केवल इतने से काम नहीं चलेगा। हमारी उद्योग-नीति के मुख्य सिद्धान्त के तीन मूल हैं। सबसे पैदा-कर जाना मिले उत्पादन अधिक-से-अधिक हो और सामाजिक तथा धार्मिक स्वायत्त हो। जीवन के समान क्षेत्रों में बेकारी के प्रश्न को हम करने का हम निश्चय नहीं करेंगे जबतक हम देश में अपने लोकतन्त्र की नींव मजबूत होना बहुत कठिन है। जमीन के समान उद्योगों और कारखानों में भी छोटे-से-छोटे मजदूर के हितों की रक्षा करने की हमारी सर्वोपरि नीति हो। बाइयों के नियन्त्रण के प्रश्न पर विचार करते समय भी यह ठीक है कि हमें प्रश्न के सार सामाजिक और स्थायी बहुल के पहलुओं पर विचार करना होगा। परन्तु हमें भी सबसे पहले हमें उन मजदूर बेकामियों की समस्या पर ही विचार करना चाहिए, जिनका इन बाइयों में सबसे अधिक—जीविका का सामन भी—नष्ट हो गया है। गरीब-जै-यरीय धारमियों की भिन्न पर जीवन नहीं रहना चाहता। यह चाहता है कि अपने बच्चे की छोटी आय। इसलिए उसे काम देना हमारा जबाब है। मजदूरों के अवाहों के लिए निश्चित मार्ग बना

जैसे जैसे स्थायी महत्व का सम्बाध समस्य सेनेबासे उपाय तो बाह में होते रहेंगे ।

इसी प्रकार और भी कई ऐसे उदाहरण गिनाये जा सकते हैं जहाँ हम उन लोगों की मदद करने का यत्न नहीं करते जिन्हें इसकी सबसे पहली जरूरत होती है । हम देखते हैं कि सहरों की सड़कों को चौड़ा किया जा रहा है, उनपर बामर भी फैसा दिया जाता है, जबकि हजारों गांवों में कच्ची सड़कें भी नहीं हैं । हम सहरों और कस्बों में पानी के नल तवाने की चिन्ता करते हैं जबकि हमारे गांवों में साबुन-करोड़ों को पीने का पानी पाने के लिए भी मीसों बनकर बना पड़ता है । बड़ी-बड़ी नदियों पर बांध बनाकर हम किसानों के लिए सिंचाई की सुविधा कर रहे हैं परन्तु उन वैशाही मजदूरों के लिए हम क्या कर रहे हैं, जिनके पास जमीन नाम मान को भी नहीं है ।

कारखानों को बिलसी देने के लिए राज्य सरकारें बजिन से बननेवाले या बलशक्ति से बननेवाले बड़े-बड़े बिजलीघर बना रही हैं । परन्तु गांवों के कारखानों को रोटी देने की भी हमें चिन्ता है ? प्रवास के लिए भी हम कमी गांवों को पहले बिलसी देने का प्रयास करते हैं ? सामुदायिक विकास योजनाओं में और राष्ट्रीय विकास कर्षों में भी हमारी अधिकांश योजनाओं में उन्हीं लोगों की सहायता करने की नीति है जिनके पास जमीन या बावबायें हैं । हेतु यह होता है कि सरकार की रकम डूब न जाय परन्तु जिनके पास जमीन या रोबी का धन्य कोई साधन नहीं है उनका क्या होगा ? उनके लिए भी कोई प्रामोद्योग या गृहोद्योग सहकारिता के आधार पर खोलने का हम यत्न करते हैं ? योजनाएँ तो पड़ी हैं परन्तु उनपर धमक करने की जरूरी हमें नहीं है । गांवों में सबसे अधिक तकनीक निरक्षर ही हरिजन हैं । अधिकांश राज्यों में उन्हें अपनी जमीनों पर से हटा दिया गया है परन्तु उन्हें अभी तक नई जमीन नहीं दी गई है यद्यपि इसकी योजनाएँ हैं । गांवों के कुंधों से अभी तक उन्हें सम्मान पूर्वक पानी नहीं देने दिया जाता । हरिजन विद्यापिठों को कुछ धन प्रतिया और बुककों की सरकारी दफ्तरों में या धन्य संस्थाओं में भुक्त भगहें दे देने से क्या होता है ? देश के कोने-कोने में उनकी सामाजिक और

प्राथमिक प्रतिष्ठा बढ़ाने का पूरा यत्न हमें करना है। यहाँ से मिले नई-नई धीर प्राणीमान इमारतें ठेकी से बन रही हैं। परन्तु दिल्ली जैसे सड़कों में भी पपीहों के झगड़े कंठे ही बढ़ रहे धीर प्राणी की इन भूमि में हम कस्याप राज्य या सर्वोदयी राज्य लाने की बातें करते हैं। बड़-बड़ कारखानों के धन्दर नये-नये-नये मगर लाने की हम बिस्ता करते हैं। परन्तु क्या धपने छोंपड़ों में बैठकर मर-मर काम करने-बाने कारीगरों की समस्याओं का समझने धीर बुद्धिमान की हमें बिस्ता है ?

जो लोग कुछ करना चाहते हैं जनता की सेवा की जिम्मे बिस्ता है धीर उसकी रहन-सहन के स्तर को जो उठाना चाहते हैं उनके बारे में मे कुछ बातें बिनाई गई है। हमारा मतलब यह हर्षवज्र नहीं है कि कस्याप राज्य की योजनाओं के बारे में हमारे धन्दर बिस्ता की कमी है। परन्तु हमें धपने धन्दर एक वृत्ति निर्माण करनी है जिसने जकड़ी कामों को पहले हाथ में लेने की बाध हमें मुक्त धीर बड़ी-बड़ी इमारत खड़ी करने की बातें करने से पहले सबहों धीर छाड़्यों को भरकर पहले जमीन को समतल बना लें। यदि हम मकान बनवाना चाहते हैं तो वहाँ की जमीन हमें पहले सैपार करनी होगी। वहाँ की मन्दगी को हटाना होगा धीर खड्डों को तो भरना ही होगा। इसी प्रकार हमें जमीन भारत का निर्माण मजबूत नींव पर करना है तो पहले असमानताओं धीर विषमताओं को हटाना होगा धीर समाज में जो सबसे कुरी हालत में है उनकी तरफ पहले ध्यान देना होगा। जो धायमी नदार के धन्द में खड़ा है उसका न्याय पहले करना होगा। प्राणी की कल्याण का स्वराज्य लाने का माय यही है।

२०

सबसे बड़ा शत्रु—ब्रैकारी

राज्य के हर नागरिक का यह जग्य-सिद्ध धपिचार है कि उसे काम धीर पोखी मिलनी चाहिए। उपयोगी काम के बगैर लोगों को बिछा देने की पद्धति कुटी है। उसने मनुष्य के धीर, मन बुद्धि धीर चरित्र—मन की हाथि होती है। वास्तव में मनुष्य की प्रतिष्ठा इसीमें है कि वह धपने पसीने की रोटी खाए। इसके लिए वह धपने धीर, मन धीर बुद्धि का

उपयोग करे। भारत में जीवन के तत्त्व-ज्ञान का सार यही माना गया है कि जो बगैर परिश्रम की रोटी खाता है वह खोर है। इसलिए यदि प्राथमिक प्राथमिक संयोजन मानता है कि काम करने सामक्य शरीरवासे हर मनुष्य को काम देना उसका पहला कर्तव्य है तो कहना होगा कि जबतक हम भारत में हर सक्षम मनुष्य को पूरा काम देने का प्रबन्ध नहीं कर देते तबतक हमारी सारी योजनाएं बुझा और बेकार हैं। सच तो यह है कि जबतक प्रत्येक नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्ध नहीं हो जाता सोच-सूची सासन स्थायी हो ही नहीं सकता। लोगों को पूरा काम दिये बगैर अधिक उत्पादन की योजनाएं बनाना राष्ट्र की हमारात बानू पर खड़ी करने की बातें करने के समान है।

दिल्ली मनुष्य-गणना के अनुसार भारत की जन-संख्या ११ ६८ करोड़ थी। इसमें २१ करोड़ मनुष्य खेती में लगे हुए थे। १ ७८ करोड़ दूसरे पेशे कर रहे थे। सब जानते हैं कि भारत का किसान वर्ष में कई महीने बेकार रहता है या उसे पूरा काम नहीं रहता। इसलिए अपनी थोड़ी धाय में पूंति करने के लिए उसे किसी सहायक बन्ने की बड़ी जरूरत रहती है। फिर इस समय बहुत अधिक लोग दूसरे किसी काम के अभाव में खेती में मजदूरी करने लगे हैं। इन सबको दूसरा काम देने की जरूरत है ताकि खेती वैज्ञानिक ढंग से की जा सके और उसे सामवायक भी बनाया जा सके। खेती के असावा जो कार्य दूसरा काम करते हैं उनमें से १ ७६ करोड़ लोग उद्योगों में काम करते हैं। इनमें से बड़े उद्योगों में काम करनेवालों की संख्या केवल २१ लाख है। शेष सब खानगी चीर पर काम कर रहे हैं या दस्तकारियों में लगे हुए हैं। गांधी ने रहनेवाले गरीब कारीगरों की स्त्रियों को भी पूरा काम नहीं मिलता। घराबे अपना पेट नहीं भर पाते। १९११ की जनगणना से ज्ञात होता है कि अन्ध व्यापार-व्यावसाय में २ २२ करोड़ परिवारों में ५६ लाख और खानगी—बरेलू मीकारियों में ४ १ करोड़ लोग लगे हुए हैं। व्यापार-व्यवसाय में लगे हुए लोगों में से अधिकांश छोटे छोटे दूकानदार घाड़तिये तथा धलाल हैं। यदि किसान अपनी सहकारी समितियां बना में ली बड़ी धासामी से इनकी भी रोबी जिन जायगी। अन्ध मीकारियों में जो लोग लगे हैं उनके पास भी पूरे समय का काम नहीं

है और वे एसी हैं कि उनका कोई नाम भी नहीं बताया जा सकता। हमारी जनसंख्या के इस पेटेबल विमाजन से प्रकट है कि पूरी और प्राथमिक बेकारी की समस्या हमारे देश में कितनी गंभीर है।

शिक्षित युवकों को काम देने का प्रश्न भी देश में बड़ा भयानक रूप धारण करता जा रहा है। एक तरफ तो केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें शहरों तथा गांवों में भी शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाती जा रही हैं परन्तु वर्तमान पद्धति के स्कूल और कनिष्ठ देश में शिक्षित बेकारों की संख्या लगातार बढ़ाते जा रहे हैं। ये शिक्षित बेकार हमारे लोकतन्त्र के लिए बड़ा भारी खतरा हैं। वे देश में जबरदस्त सामाजिक और प्राथमिक प्रचण्डता पैदा कर सकते हैं और इसका परिणाम राजनैतिक प्रचण्डता और अस्थिरता तो होगा ही। इस प्रकार शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में फैली हुई यह बेकारी हिंसक जन-मुचल पैदा करके हमारी गई आजादी के लिए खतरा पैदा कर सकती है। हमारा सच्चा दुश्मन साम्यवाद नहीं है। वह तो भूख और परिश्रम की भयानक बीमारी का केवल बाहरी चिह्न है। हमारा सबसे बड़ा दुश्मन तो वह पूरी तथा प्राथमिक बेकारी का खतरे है जो हमें नियंत्रण चाहता है।

बेकारी की गहरी का एक स्थायी हम यह है कि हम अपने प्राथमिक और औद्योगिक ढांचे में घामूल परिवर्तन कर दें और जमीन का नये सिरे से बड़े पैमाने पर बंटवारा किया जाय और इसके लिए एक कानूनी प्रावधान बनाया जाय। प्राच्य विनोद भावे चाहते हैं कि पांच करोड़ एकड़ जमीन बेजमीन मरीचों में बाँट दी जाय। इससे एक करोड़ परिवारों को काम और रोजी मिल जायगी। स्वयं योजना-आयोग की भी सिफारिश है कि कितनी ज़रूरी सम्भव हो ज़ोत की सीमा मुकर्रर कर दी जाय। और केवल जो स्वयं जोनें ज़न्हीके पास जमीन रहे और वे ही उसके स्वामी हों। दूसरे उपभोग्य वस्तुओं के उत्पादन का विवेकीकरण करने की दृष्टि से हमारी उद्योग-रचना में भी माहम के साथ घामूल परिवर्तन कर देना चाहिए। जबतक नूहोछोर्गो घामोछोर्गो और छोटे उद्योगों को पुनर्जीवन करने का नाम हिम्मत के साथ हम हाथ में नहीं लेते तबतक करोड़ों मरीच बेकारों को हम रोजी नहीं दे सकेंगे। यह केवल सपना ही बना रहेगा। बड़े उद्योगों

भूमि-सुधार

दूसरी तथ्यावली से पहले धातु जमीन के पुनर्वितरण का प्रश्न गुरुत्व और सम्पत्ति-पूर्वक ह्रास में सेना जहरी है। धातु धनोबा धातु भी अपने भूदान-यज्ञ-धान्योत्पन्न के द्वारा भारत के नेताओं का ध्यान इस प्रश्न पर केन्द्रित कर रहे हैं। अपने इस महत्वपूर्ण धान्योत्पन्न में उन्हें सफलता भी प्रकटी मिला है। देश के विभिन्न भागों में कुल मिलाकर उन्हें समग्र पंचायती राज लागू कर जमीन भूदान में मिला चुकी है। यद्यपि इस जमीन के वितरण का काम इतनी तेजी से नहीं हो रहा है फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि यहिना की पद्धति से धातु सुधार माने का यह प्रयोग धातु जमीनकारी सिद्ध हुआ है। इसने जमीन-सम्पत्ति प्रगतिशील और मौलिक सुधारों का वातावरण बहुत स्वस्थ और अनुकूल बना दिया है। अब विभिन्न राज्यों में जमीन-सम्पत्ति धातु सुधार कानून बनाने में हमें इस वातावरण का पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहिए। हमें स्वीकार करना होगा कि जमीन-सम्पत्ति सुधारों का काम हमें जितनी तेजी से करना चाहिए या हम नहीं कर पाये हैं।

हमें अब धातु तरह से जान लेना चाहिए कि धातु धातु की पूरा काम देने के लिए तथा साथ धातुों का उत्पादन बढ़ाने के लिए भी यदि जमीन-सम्पत्ति सुधारों के काम को हम गुरुत्व ह्रास में नहीं लेते तो हम जलता में धातुयुक्त उत्पाद नहीं पैदा कर सकते। जमीन प्रगति की अपनी बुनियादी है। मनुष्य उसमें धातु-बढ़ी नहीं कर सकता। इसलिए जमीन सम्पत्ति सुधारों को हमारे धातु सुधारों के समान नहीं समझना चाहिए। उन्हें स्वतन्त्र समझकर जमीन-सम्पत्ति ह्रासों में ले लिया जाना चाहिए। कभी-कभी कहा जाता है कि धातु को पहले धातु या उद्योगों के काम में धातु सुधार करने चाहिए, तब जमीनों के सुधार को ह्रास मथाना चाहिए। यद्यपि इस दलील में कुछ कम है फिर भी जमीन को दूसरे प्रकार की संपत्ति के समान नहीं समझा जा सकता जो मनुष्य के द्वारा कच्चे धातु से बनाई जाती है। फिर जिनके पास जमीन है, उन्हें अपनी धातु

बढ़ाने के लिए दूसरे जन्मे करने से नहीं रोकना जा सकता। उदाहरण के लिए अधिकतम जमीन की सीमा निश्चित करके अ-जमीन गरीबों में जमीन पुनर्वितरण कर देने के बाद सहकारी पद्धति पर छोटे उद्योगों और बृहो-द्योगों को ग्रामीण क्षेत्रों में फैलाने का काम शुरू किया जा सकता है। चीन और जापान जैसे देशों ने अपनी बड़ी हुई आबादी के प्रश्न को इसी प्रकार हल करने का प्रयत्न किया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में किये गए भूमि सम्बन्धी सुधारों में एक यह भी था कि मध्यमकों का एकदम हटा दिया जाय। यद्यपि अधिकांश राज्यों में यह किया जा चुका है फिर भी कहीं-कहीं ऐसे भाग रह गये हैं, जहाँ यह प्रसी होना बाकी है। इसी प्रकार सुधारों की जल्दी बुका दिने जाने चाहिए, बास तीर पर बिस्बाषों नाबालियों और छोटे-छोटे मध्यमकों को। मध्यमकों को हटाते समय यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि सम्बन्धित लोगों को प्रकाश कल न हो या उन्हें तप न किया जाय।

कास्तकारों को अपनी जमीनों और सातों के बारे में असुरक्षा न मामूम हो। इस हतु से उनके अधिकारों में सुधार-सम्बन्धी रहे-सहे कानून नी जल्दी बन जाने चाहिए और प्राक उन्हें जो अनेक प्रकार से और बहानों से बेवकाल किया जा रहा है वह तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। अनेक राज्यों में कास्तकार तथा चिकमी कास्तकार जानेजाने सुधारों के भय के कारण बड़ी ठकसीकों में आ गये हैं। सुधार-सम्बन्धी कानूनों के बनने में जो देर हो रही है उसके कारण बेवकालिया बहुत बढ़ गई हैं, अतः इन्हें रोकने के लिए तुरन्त कृषम जारी हो जाने चाहिए। पहले ही बहुत अधिक मुकदमा हो चुका है और गरीब कास्तकारों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इसमें जरा भी देरी नहीं होनी चाहिए।

जहां तक बुवकास्त के पुनः जारी करने का सम्बन्ध है, बुवकास्त का अर्थ बिस्कुम साफ कर दिया जाना चाहिए। जो बुवकास्त पर जमीन रक्षता जाई, उन्हें धमक माना में जमीन पर बुव मेहनत करनी ही चाहिए, इस प्रकार की कोई सर्ट उसमें हो। केवल पैसे लगाकर जमीन की बेसमान कल रहना काफी नहीं समझ जाय। कुछ राज्यों में साम्प्रदारी की प्रथा है। इसमें साम्प्रदारी को वह सब करना पड़ता है जो स्वयं कास्तकार को

बर्सा पड़ता है। परन्तु फिर भी उन्हें कारतकार नहीं माना जाता और उन्हें वे अधिकार नहीं हैं, जो कारतकार को होते हैं। यह दोष भी जितनी जल्दी सम्मन हो दूर कर देना चाहिए।

जमीन के किराये की पद्धति भी व्यवस्थित हो जानी चाहिए। इस मन्त्र में सर्व-सामान्य कानून के प्रसार किराये की अधिकतम सीमा भी निर्धारित की जानी चाहिए, जो जमीन के सामूहिक मूल्य के अनुकूल होने से एक इतिहास हो।

परन्तु सबसे अधिक जरूरी तो सारे राज्यों में जमीन की अधिकतम सीमा का निश्चय करना है। पहली पंचवर्षीय योजना में सुझाया गया है कि एक आरम्भ के बाद अनुकूल सीमा से अधिक जमीन न हो। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह अधिकतम सीमा क्या हो इस सम्बन्ध में कुछ धास सुझाव भी दे दिये गए हैं। कुछ मामलों में छूट देने की भी विचारित है। उसमें काफी उबारवा से काम लिया गया है। इसलिए इस समय के लिए कोई कारण नहीं है कि यह सीमा निश्चित कर दी गई तो उनका प्रसार उपज पर पड़ेगा। धन के लोगों का अनुमान यही है कि केवल आठ बड़े होने से उपज की घटत नहीं बढ़ती है। बड़े लोगों पर जन्मों की मरब देने पर भी धी एक उपज बढ़ नहीं पाती। धी आरम्भ के हिसाब से यदि उपज का हिसाब जोड़ें तो जरूर उपज बढ़ी हुई सामूहिक होती है। इसलिए यह सोचना मत है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार यदि जमीन की अधिकतम सीमा का निश्चय कर दिया जायगा तो उपज कम होगी। इसके विपरीत जमीन का पुनर्वितरण कर देने के बाद यदि जमीन पर बराबर मेहनत की जायगी आरम्भ की सुविधाएँ भी होंगी तो उपज घटने के बजाय उसकी बढ़ जायगी। इसलिए समस्त राज्यों में जितनी भी जमीनी सम्मन हो आवश्यक कानून बन जायें।

परन्तु जमीन-सम्बन्धी मुद्दों के कानूनों का बन जाना ही काफी नहीं है। हमारा अनुमान यह है कि कानून बन जाने पर भी उनका प्रभाव ठीक से कानून का प्रभाव यदि प्राप्त हो नहीं होता है तो जिनके सामने के लिए यह सब किया जाता है उन्हें लाभ नहीं मिलता उनसे उन्हें तंग किया जाता है और उनकी परेशानियाँ बढ़ जाती हैं। कुछ राज्यों में जमीनों के मुद्दों

बढ़ाने के लिए दूसरे धम्मे करने से नहीं रोकना जा सकता। उदाहरण के लिए अधिकतम जमीन की सीमा निश्चित करके बे-जमीन गरीबों में जमीन पुनर्वितरण कर देने के बाद सहकारी पद्धति पर छोटे-छोटे धीरे-धीरे लोगों को सामीप क्षेत्रों में फैलाने का काम शुरू किया जा सकता है। चीन और जापान जैसे देशों ने अपनी बड़ी हुई आबादी के प्रश्न को इसी प्रकार हल करने का प्रयत्न किया है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में किये गए भूमि सम्बन्धी सुधारों में एक यह भी था कि मध्यमकों को एकत्रित हटा दिया जाय। यद्यपि अधिकतम राज्यों में यह किया जा चुका है, फिर भी कहीं-कहीं ऐसे भाग रह गये हैं, जहाँ यह अभी होना बाकी है। इसी प्रकार मुधारजे भी जल्दी बुका देने वाले चाहिए, जिस तीर पर बिचबाधों नावागिनों धीरे-छोटे-छोटे मध्यमकों को। मध्यमकों को हटाने समय यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि सम्बन्धित लोगों को भ्रष्टाचार कष्ट न हो या उन्हें तंग न किया जाय।

कास्तकारों को अपनी जमीनों और बातों के बारे में असुरक्षा न सामूम हो। इस हेतु से उनके अधिकारों में सुधार-सम्बन्धी छे-छे कानून भी जल्दी बन जाने चाहिए और साथ उन्हें जो अनेक प्रकार से धीरे-बहालों से बेवजल किया जा रहा है वह तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। अनेक राज्यों में कास्तकार तथा सिकमी कास्तकार अनेकाने सुधारों के भय के कारण बड़ी तकलीफों में आ गये हैं। सुधार-सम्बन्धी कानूनों के बनने में जो देर हो रही है, उसके कारण बेवजसिया बहुत बढ़ गई हैं, अतः इन्हें रोकने के लिए तुरन्त हुनम जारी हो जाने चाहिए। पहले ही बहुत अधिक मुकदमा हो चुका है और गरीब कास्तकारों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इसमें जरा भी देरी नहीं होनी चाहिए।

जहाँ तक खूबकास्त के पुनः जारी करने का सम्बन्ध है खूबकास्त का धर्म बिल्कुल साफ कर दिया जाना चाहिए। जो खूबकास्त पर जमीन रखना चाहें, उन्हें प्रमुक्त भाषा में जमीन पर खुद मेहमत करनी ही चाहिए, इस प्रकार की कोई शर्त जसमें हो। केवल पैसे लगाकर जमीन की बेवजाल करते रहना काफी नहीं समझ जाय। कुछ राज्यों में साम्प्रदायी की प्रथा है। इसमें साम्प्रदायी को यह सब करना पड़ता है, जो स्वयं कास्तकार को

करना पड़ता है। परन्तु फिर भी उन्हें कारस्तकार नहीं माना जाता और उन्हें वे अधिकार नहीं हैं जो कारस्तकार को होते हैं। यह दोष भी जितनी जल्दी सम्भव हो दूर कर देना चाहिए।

जमीन के किराये की पद्धति भी व्यवस्थित हो जानी चाहिए। हम सम्बन्ध में सर्व-सामान्य कानून के अन्तर्गत किराये की अधिकतम सीमा भी मुकर्रर कर दी जानी चाहिए, जो जमीन के सामूची अयाज के प्रमुख गुने से अधिक हर्षित न हो।

परन्तु सबसे अधिक जरूरी तो सारे राज्यों में जमीन की अधिकतम सीमा का निश्चय करना है। पच्चीस पंचवर्षीय योजना में सुझाया गया है कि एक आदमी के पास प्रमुख सीमा से अधिक जमीन न हो। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह अधिकतम सीमा क्या हो इन सम्बन्ध में कुछ खास सुझाव भी दिये गए हैं। कुछ मामलों में छूट देने की भी सिफारिश है। उसमें काफी उदाहरणों से काम लिया गया है। इसलिए हम भय के लिए कोई कारण नहीं है कि यह सीमा निश्चित कर दी गई तो उसका असर उपज पर पड़ेगा। अनेक देशों का अनुभव यही है कि केवल खाते बड़े हान से उपज की प्रसूत नहीं बढ़ती है। बड़े ज़ातों पर मजदूरी की मदद लेने पर भी की एकड़ उपज बढ़ नहीं पाती। की आदमी के हिसाब से यदि उपज का हिसाब जोड़े तो ज़रूर उपज बढ़ी हुई मालूम होती है। इसलिए यह सोचना मस्त है कि इनकी पंचवर्षीय योजना के अनुसार यदि जमीन की अधिकतम सीमा का निश्चय कर दिया जायगा तो उपज कम होगी। इसके विपरीत जमीन का पुनर्वितरण कर देने के बाद यदि जमीन पर बराबर मेहनत की जायगी आदवादी की मुविपाएँ भी होंगी तो उपज बढ़ने के बजाय उसकी बढ़ जायगी। इसलिए समस्त राज्यों में जितनी भी जल्दी सम्भव हो आवश्यक कानून बन जाय।

परन्तु जमीन-सम्बन्धी मुबारों के कानूनों का बन जाना ही काफी नहीं है। हमारा अनुभव यह है कि कानून बन जाने पर भी उतना फलस टीठ में करने का प्रबन्ध यदि सामन से नहीं होगा तो जिनके साथ के लिए यह सब किया जाता है उन्हें लाभ नहीं मिलता उससे उन्हें तम किया जाना है और उनकी परेधानियाँ बढ़ जाती हैं। कुछ राज्यों में जमीनों के सुपार

सम्बन्धी कई आवश्यक कानून बन गये हैं। परन्तु उनके प्रमस का ठीक प्रबन्ध नहीं हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्ष माराज रहे—जिनकी जमीन कम हुई वे और जिन्हें जमीन मिली नहीं वे भी। इससे हमें सबक लेना चाहिए। जमीन-सम्बन्धी कानूनों का ठीक से प्रमस करने के लिए सबसे जरूरी चीज है कायदा का सही और प्रचलन होना। घने जंगलों में कायदा की हानि अत्यन्त असह्योजनक है। इसके परिणामस्वरूप सुधारों पर प्रमस करने में कदम-कदम पर टकावटें बाड़ी होती हैं। फिर सासन-प्रबंध में भी सच्चाई तथा ईमानदारी का होना बड़ा जरूरी है। ग्रामीणों को भ्रष्टाचार, ठिगाने और बेईमानी का मुकाबला प्रतिदिन करना पड़ता है जो प्रच्छेद-प्रच्छेद सुधारों को बेकार कर देते हैं।

हम माना करें कि हमारे राज्यों की सरकारें राष्ट्र के प्रति अपने इस कर्तव्य को समझकर अपने प्रयत्नों में जमीन-सम्बन्धी सुधारों को सर्वाधिक प्राथमिकता देंगी। जमीन के प्रश्न को ग्रहण के द्वारा सुलझाने का मार्ग प्राचार्य बिनोबा ने हमको दिखा ही दिया है। देश में इन सुधारों का नक्सा क्या होना यह दूसरी पंचवर्षीय योजना ने साफ तौर पर बता दिया है। इस प्रकार भूदान-यज्ञ और शासकीय कानून दोनों मिलकर हमारे देश में जमीन के प्रश्न को जल्दी हल कर सकेंगे। यदि सरकारी तथा पैर-सरकारी सभी शक्तियाँ ग्रामिक विकास के इस प्रश्न को सुलझाने में लग जायेंगी तो इस पदवानी संघ श्री प्राचार्यों को पूरा करने में हम अवश्य सफल हो सकते हैं।

३२

भूमि की उच्चतम सीमा

पंचवर्षीय योजना में साफ तौर पर बता दिया गया है कि जमीन सम्बन्धी भारत की नीति का एक बुनियादी सिद्धान्त यह भी होगा कि “एक आदमी के पास अधिक-से-अधिक कितनी जमीन रहे इसकी भी एक सीमा निश्चित कर ली जाय।”^१

प्रत्येक राज्य अपने वहाँ की परिस्थिति और क्षेत्री-सम्बन्धी परम्परा

^१ इस सम्बन्ध में एक कानून बन गया है।

को ध्यान में रखते हुए इस सीमा का निश्चय करेगा।

मुझे निश्चय है कि भागत सरकार और राज्य सरकार जमीन के बारे में बहुत दूरगामी सुधार जारी करने के प्रयत्न को सातवर बख्शीय किसानों को जमीन दिसाने के प्रयत्न को सबसे अधिक प्राथमिकता होगी। प्रकृत है कि जबतक ऐसी कोई उष्णनम सीमा निर्दिष्ट नहीं कर दी जायगी जे-जमीनों को बाटने के लिए पर्याप्त जमीन हमारे पास नहीं होगी। केवल इतना काफी नहीं होगा कि सब साथ कोई अधिक जमीन न ले। जबतक हम वर्तमान बह-अड़े छातों को जो सँकड़ों घोर कमी-कमी तो हमारे एकड़ के भी हैं हाथ नहीं सपामये तबतक अविध्य के सीमा-निर्धारण का कोई धर्म नहीं होगा।

इसका मतलब यह नहीं कि सारे राज्यों में घोर सब प्रकार की जमीनों की अधिकतम सीमा खर्च नहीं हो। निश्चय ही जमीन की दिसम के अनुसार प्रत्येक भाग में यह सीमा धनग-धनय हावी। फिर हमारा यह भी धारण नहीं है कि प्रारम्भ में ही यह सीमा बहुत कम हो। जबतक हमारे राष्ट्रीय जीवन के धन्य क्षेत्रों में बड़ी-बड़ी सामाजिक और धार्मिक विषय मतां भीजुए हैं केवल जमीनों के बारे में ही बहुत अधिक सत्ती बरतना उचित नहीं होगा। प्रारम्भ में उष्णतम सीमा का निश्चय करने में कुछ कठारता से भी काम लिया जाय तो इसे अनुचित नहीं कहा जायगा। परन्तु इन प्रकार की नयाना को टागना धरयन्त अनुचित होगा। हमारे देश में मात्र ४३ मात जेजमीन मजदूर हैं। सब इन जमीनारों का क्या हक है कि वे अपने पास सँकड़ों-हजारों एकड़ जमीने रखें? जमीन प्रकृति की देन है। धन्य न तो उसे घटा सकता है घोर न बढ़ा सकता है। इसलिए धार्मिक विषयता के प्रयत्न को मुमयाने का प्रारम्भ जमीन के प्रयत्न से ही करना उचित होगा। दुनरे क्षेत्रों की विषयता भी फिर नहीं चूँगी। तन्मति घोर आपदा के क्षेत्र में उनको भी धन्य हाथ में लिया जायगा। (एस्टेट द्यूटी) आयदाद-नर-सम्बन्धी कानून जिमका धमल १५ फरवरी १९५१ में धुक हो गया है इन दिना में सबसे पहला बहम है। साधन-जमानों घोर मिश्रारों के बीच की बड़ी दोबार को विराकर इनमें ममाना माने के लिए धन्य ही इसके बाद दुनरे कथम भी धन्य ही उठाये जाने चाहिए।

जातों की उच्चतम सीमा मुक़र्रर करते समय कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। जिन ज़मीनों की खेती सहकारी पद्धति पर हो रही उनकी जास रिवायत ही बाय। सम्मिश्र कुटुम्ब प्रजा को टूटने से बचाने के लिए यह उचित होना कि ऐसे परिवारों के पास जो ज़मीन हो उसकी सीमा तिरगुनी मानी जाय। सीमा निर्धारित करने के बाद सरकार के अधिकार में भी जानेवाली ज़मीनों का मुआवजा सूमि-आयोग द्वारा पच्चीस मातीस वर्ष की अवधि में पूरा किया जाय। इसके अलावा सीमा से अधिक ज़मीन पर केवल अधिकार कर लिया जाय। मुआवजे का प्रश्न न उठाया जाय। जैसा कि योजना आयोग ने सुझाया है वे ज़मीनें किसानों से इकरारनामा करके उन्हें जोतने के लिए दे दी जाय। और वे ज़मीन के मालकों को वार्षिक किराया चुका दिया करें। इस प्रकार बचैर मुआवजा दिये मालों एकड़ ज़मीन ग्रामीण सबहुरों को भी जा सकेगी।

देश में ज़मीनों के सुचारु-सम्बन्धी उपयुक्त कानून बनाने के लिए आचार्य विनोबा भावे के यूनान-यज्ञ-मान्योसन ने बहुत अच्छा वातावरण तैयार कर दिया है। सब तो यह है कि अब तो न केवल उच्चतम सीमा के लिए बल्कि निम्नतम धावश्यक सीमा के लिए भी लोगों का मानस तैयार हो गया है। विनोबा की राय है कि केवल उच्चतम सीमा निर्धारित करने से वे-ज़मीनों में बाँटने के लिए पर्याप्त भूमि हमें नहीं मिल सकेगी। उनकी राय है कि अब राज्य को जोतों की निम्नतम सीमा भी मुक़र्रर कर लेनी चाहिए। उदाहरण के लिए जो परिवार स्वयं खेती करना चाहे उसे राज्य पाँच एकड़ ज़मीन दे। उच्चतम सीमावाली बात पर अब विचार किया जाय जब इस प्रकार बुदकास्त करनेवाले सब किसानों को बाँट देने पर ज़मीनें बचें। इस सबका मतलब यही है कि अब देश ज़मीन-सम्बन्धी बुरागामी सुचारों के लिए तैयार है और अब ऐसे कानून के बनाने में देरी करना सामाजिक और धार्मिक प्रगति में बहुत बाधक होगा।

हम सबकी याद रखना चाहिए कि जब समाज में एक जास सीमा तक सामाजिक और धार्मिक स्वतंत्रता नहीं होगी हमारी राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई जास भ्रम नहीं होगा। समाज में धाव गरीबों और धनीयों बीच जो चीज़ी खाई पड़ी हुई है, उसे और धाधुनिक समाज में जो धन्य

विषमताएँ हैं उन्हें हम नहीं मिटा देंगे तब तक देश में धार्मिक स्वतंत्रता नहीं पा सकेगी। इसके अलावा भाज जिन करोड़ों के हाथों में रोजी के पर्याप्त साधन नहीं हैं उन्हें ये साधन भी देने होंगे। इसके लिए जमीन और राष्ट्रीय सम्पत्ति का वितरण-सम्बन्धी बड़े-बड़े मुद्दे पार करना अत्यन्त आवश्यक है।

३३

हमारी सेती की समस्या

ग्राम्य किसानों का देश रहा है और आज भी है। इस देश की उत्तर प्रतिष्ठित आभासी की जीविका का आधार सेती है और उनके परिश्रम और बुद्धिमत्ता पर देश की समृद्धि निर्भर करती है। धार्मिक संयोजन की हमारी सारी योजनाएँ तभी सफल हो सकेंगी जब किसान हमारे धान के लिए अनाज और हमारे कारखानों के लिए कच्चा माल पैदा करना रहेगा। सच तो यह है कि खाद्यान्न और कारखानों के लिए समन्वयित कच्चे माल के धारे में स्वावलम्बन हमारी योजना की जान मानी जानी चाहिए। जिस राष्ट्र को धन जैसी धरती मजदूर पहली और बुनियादी जरूरत के लिए भी दूसरों का मुँह देखना पड़ता है वह राजनैतिक दृष्टि में भी स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

देश में जमीन-सम्बन्धी मुद्दों पर हम हमेशा जोर देते रहे हैं ताकि जमीन पर परिश्रम करनेवाला उसका धर्मही भागिदार हो। इस बारे में पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना में एक मोटी-सी नीति बना ली गई है परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि जमीन-सम्बन्धी मुद्दों में हमारी प्रगति बहुत धीमी और रुक-रुककर हो रही है। जमीन-सम्बन्धी मुद्दों में न केवल किसानों की धार्मिक और सामाजिक स्थिति ध्यान में होगी बल्कि उसने धनी की उन्नति भी बढ़ेगी। कहना न होगा कि इस दृष्टि में मुद्दे सेती में जारी करना जितना जरूरी है। जो धारणी सूख जमीन पर काम करना है जमीन उसीके पास रहेगी यह विश्वास उसे हो जाना चाहिए और मजदूर प्रकार की बेचैनियों या जोतनेवालों का भगाया जाना बन्द हो जाना चाहिए। जमीन के जोतनेवाले भूमिपुत्र ही उसके भागिर हों।

भारत के किसानों की सामी सामग तभी सुधरेगी जब हम बाबोजोनों

गृहोद्योगों द्वारा अपनी आय बढ़ाने का मौका भी उन्हें देते। घाज घाहू और बेहारी सोर्गों के रहन-सहन में जो अन्तर है वह धीरे-धीरे हट जाना चाहिए। कारखानों उद्योगशाखाओं और काम करने की दूकानों का एक आम ग्रामीण क्षेत्रों में फैल जाना चाहिए, जिससे सबको पूरा काम मिल जाय और किसानों का जीवन परिपूर्ण और समृद्ध हो सके। जबतक हम ऐसा नहीं करेंगे भारत की अर्थ-व्यवस्था की नींव मजबूत नहीं होगी। हमें न केवल अपनी खेती का और उद्योगों का उत्पादन बढ़ाना है बल्कि करोड़ों बेकारों को सम्मान-युक्त रोजी भी देना है, जो बुरी हालत में घाज पड़े हैं।

भारत में लोकतन्त्री पद्धति से संयोजन करने का प्रयोग घुसकिया है। यह प्रयोग अभी सफल होगा जब हम धार्मिक और राजनैतिक सत्ता का व्यापक रूप से विकेन्द्रीकरण कर देंगे। इसके लिए हमें बाज-बाज में नये नये क़दम करने होंगे जो अपने गांवों के साम्य-विघात होंगे। प्रत्येक ग्राम समा राष्ट्रीय संयोजन की बुनियादी इकाई होगी। इस दृष्टि से आचार्य विनोबा का ग्रामदान ग्रामोत्थान प्रत्यस्त महत्वपूर्ण है। विनोबा चाहते हैं कि राष्ट्रीय संयोजन के मार्ग-दर्शन में प्रत्येक गांव अपनी-अपनी योजना बनावे। अपने परिषद के बल पर स्वायत्तम्बी बनना ग्रामदान का पहला सिद्धान्त है। स्वायत्तम्बन के इस सिद्धान्त के बगैर राष्ट्रीय-संयोजन को हम कभी सफल नहीं कर सकेंगे। इसलिए संयोजन में हमें अपना सारा ध्यान ग्राम-संघायतों और सरकारी समितियों पर केन्द्रित कर देना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार और योजना-आयोग ने राज्य की सरकारों का ध्यान ग्रामदान के विकेन्द्रीकरण के इस बकरी सिद्धान्त की तरफ़ दिशा दिया है। अब बकरत इस बात की है कि विकेन्द्रीकरण का यह काम व्यवस्थित रीति से और पूरी तरह से हो।

भारत में अन्धोत्पादन को बढ़ाने का सबसे वास्तव में साक्षीय अर्थ को आसतीर पर उसके नीचे के स्तरों को सुधारने का प्रयत्न है। किसान को प्रशिक्षण भी प्रशिक्षण और सिखाई की अधिक सुविधा की बकरत है परन्तु इससे भी बड़ी बकरत ऐसे शासन-यन्त्र की है, जो उसकी कठिनाइयों की तरफ़ तुरन्त ध्यान देकर उनको दूर कर सके। यदि किसान सिखाई के वर्तमान साधनों का भी पूरा-पूरा उपयोग करता रहे, अपने पास

आद का वैज्ञानिक रीति से उपयोग करे उसे मुझरे हुए बीज मिल जायं
 सेती के काम-काज सब सहयोगपूर्वक करें और सुझरे हुए धोखारों से काम
 ले तो वह अपनी उपज काफी बढ़ा सकता है। यह स्पष्ट समझ है कि यंत्रों
 से घेती करने से घेनी की फी एरुड उपज बढ़ जाती है। वास्तव में भारत
 को चीन और जापान की भांति पहरी (इन्टेन्सिव) घेती करनी चाहिए।
 फिर कूटाई सिचाई और कटाई घाबि की क्रियाओं में सहकारिता से काफी
 काम लिया जा सकता है। सेतों की धड़ों का हटाना बहुत-से सेतों की
 सामूहिक सेती का प्रयोग ग्रामदानी गांवों या नई आबादी की बस्तियों में
 किये जा सकते हैं परन्तु इस प्रकार की सेती में दो बातों का ध्यान रखना
 चाहिए। सहकारी सेती में जबरदस्ती न हो और दूसरे ऐसे सेत बहुत
 बढ़े-बढ़ न हों। सहकारी सेतों में किसानों के बीच व्यक्तिगत और निरुद्ध
 का सम्पर्क होना बढ़ा जरूरी है। यदि यह नहीं हुआ तो वह घेनी सहकारी
 सेती नहीं घेती का कारणाना बन जायगी और उसमें से सारी बुद्धियां
 घुस जायंगी या कारखाना में होती है।

परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह है कि घेती का नये रूप से संमटन लभी
 हो सकेगा जब हमारी शिक्षा-व्यवस्था बाल्यी और विकास-योजनाओं में
 सहायक बन जायगी। आज तो शिक्षा-सम्बन्धी सारी बुनियात गहरों में
 केन्द्रित कर दी गई है। इस कारण नये गांवों को छोड़ जोड़कर गहरों में
 घा रहे हैं और गांव जगड़ रहे हैं। जब यह प्रविष्टा जगड़ दी जानी चाहिए
 और साम्यमिक तथा उच्च शिक्षा की बुनियात गांवों में भी हो जानी
 चाहिए। जब घेनी और ग्रामोद्योग सारी शिक्षा के आधार बना दिये जाने
 चाहिए, शासकीय पर ग्रामीण क्षेत्रों में। सभी को सामूनी परम्परागत
 प्राथमिक पासाओं का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में लिया जा रहा है वह बेकार
 है। गांधीजी बुनियादी शिक्षा के प्रचार पर इनका अधिक जोर इसीलिए
 देते थे कि उसमें सारे विषयों की पड़ाई उलटाकर और शिक्षाप्रद काम के
 द्वारा की जानी है। इसीलिए प्राथमिक संयोजन को सटन करने की दृष्टि से
 भी बुनियादी शिक्षा का प्रचार अधिकारिक होना बहुत जरूरी है।

उत्पादन का अभियान

प्रसन्नता की बात है कि केन्द्र के उद्योग धीरे व्यापार-मन्त्रालय ने उद्योगों में तथा ग्राम्य क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने के लिए एक राष्ट्रीय उत्पादन मण्डल कायम कर लिया है। इस सम्बन्ध में आयोजित एक विचार-परिषद (सेमिनार) का समारम्भ करते हुए केन्द्रीय उद्योग-मन्त्री ने कारखानों के मालिकों तथा मजदूरों को भी सम्बोधन करते हुए देश की सम्पत्ति बढ़ाने के लिए उत्पादन में परस्पर सहयोग करने की अपील की। उत्पादन-मण्डल में सासुर कारखानेदारों, मजदूरों, यन्त्र-साधकियों, विज्ञानविभागों, संघ-बलों और विविध वर्गों के समाह्वारों के प्रतिनिधि होंगे। बिन-बिन प्रवेशों में सास-सास उद्योग केन्द्रित हैं। उनमें स्थानीय उत्पादन-मण्डल स्थापित करने में भी यह मंडल मजबूत करेगा। प्रारम्भ में यह उत्पादन-मण्डल वार्षिक उद्योगों के क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के उपायों और साधनों की ओर ध्यान देगा। उसके बाद यह परिवहन तथा खेती की ओर भी ध्यान देगा।

ग्रेट ब्रिटेन फ्रान्स पश्चिम जर्मनी आस्ट्रिया बेल्जियम और हार्लैण्ड जैसे देशों ने भी जो उद्योगों में बहुत धाये बड़े हुए हैं अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए बड़े प्रयत्न किये हैं और लगातार करते रहते हैं और इसके लिए र्गों में सुधार करते हैं। अपने साधनों का अधिक-से-अधिक अच्छा उपयोग किस प्रकार हो कि लाभ अधिक मुझी हों इसका प्रयत्न करते रहते हैं। भारत जैसे कम विकसित देश में जो ऐसे उत्पादन बढ़ानेवाले अभियानों की ओर भी जकड़त है। यह भी बाहिर है कि देश अधिक विकसित हो या कम ऐसे अभियान तभी सफल होंगे जब मालिकों और मजदूरों के बीच पूरा पूरा सहयोग होना। इस सहयोग में देश की सारी जनता का भाग है। कुछ उद्योगपतियों का तथा यह प्रयत्न रहता है कि वर्गों में ऐसे सुधार किये जायें जिनसे उत्पादन का व्यय बटे और वह अपना लाभ दूसरे उत्पादकों के मुकाबले में देश-विदेश में सबसे मूल्य में बेचकर अधिक लाभ उठा सकें। सुन्दर हुए वर्गों पर काम करनेवाले मजदूरों को मजदूरी भी

अधिक भी जाती है। प्राइवेटों को अधिक अच्छी और मुन्तर चीजें सस्त मूल्य में मिलने लग जाती हैं। इस प्रकार उत्पादन-सम्पत्ति को बढाने की और अधिक ध्यान देने से सारे राष्ट्र को लाभ होता है।

इसलिए यह जरूरी है कि यह उत्पादन-धर्मियान केवल उद्योगों तक ही सीमित न रहे। यह सारे अर्थ-क्षेत्र में काम करे। बास्लेब में हमारे देश में अन्नोत्पादन के बढाने पर धार्मिक संयोजन में सबसे अधिक धीर पहले ध्यान देना जरूरी है। हम आशा करते हैं कि कृषि और साध-अन्वय भी इसपर विचार करेगा। व्यापार-उद्योग-अन्वय के साथ मिलकर अन्य क्षेत्रों में इसी प्रकार उत्पादन बढाने की भी कोई सम्मिलित योजना बनायगा। अभी तो धानेबासे कई वर्षों तक भारत मुख्यतः कृषि-अन्वय इस ही रहने वाला है। परन्तु जनता का रोखी बेकर उसके रहन-सहन को ठार उठान के लिए हमें सामीप क्षेत्रों में छोटे-छोटे और धामोद्योगों तथा गृहोद्योगों का काम फैला देना होगा। इस दृष्टि से खेती और उद्योग के काम को हमें भारत में मूल मजबूत बना देना चाहिए। इसलिए हमें खेती के उत्पादन पर भी ध्यान देना है और सारे देश में घरों पर और दुकानों पर काम करने वाले छोटे-छोटे कारखाने भी फैला देने हैं, ताकि लोगों को रोखी मिले और औद्योगिक उत्पादन भी बढ़े। इस प्रकार खेती और उद्योगों की बुनियाद को हम मूल मजबूत करना है। इसलिए इनको सम्मिलित और समन्वित रूप से अर्थ-सहयोग के साथ धाम बढ़ाना चाहिए। योजना आयोग को अन्वयन की सकलता की दृष्टि से इसपर विचार करना चाहिए।

एक बात धीर है जिसपर इस विषय में सावधानी के साथ विचार होना चाहिए। खेती और उद्योगों का उत्पादन बढाने के प्रति उत्साह में हम नहीं हम अन्न के आनवी पहलू को न भुमा दें। हमारे संरक्षण के रण के दो पहलू हैं—उत्पादन धीर सब अनुषंगों को पूरा काम देना। यदि इन दो में से एक भी पहलू कमजोर रहा तो धानी धार्मिक योजनाओं में ठीक प्रगति नहीं कर सकेंगे। यह मण है कि हम यथेष्ट धान-आन्न धीर विनाम के आदिधाराओं का पूरा पूरा साम उठाकर हमें उत्पादन में उनका उपयोग करना चाहिए, परन्तु हमें नदा याद रखना चाहिए कि अन्न को

पूर्ण बनाने की धुन में हम कहीं मनुष्य को पंगु घबरा बैकार न कर दें। मनुष्य का सबसे अधिक ध्यान रखें। राष्ट्रीय उत्पादन-वृद्धि-आन्दोलन का समारम्भ करते हुए केन्द्रीय उद्योग-मन्त्री ने कहा था कि उत्पादन-वृद्धि के इस अभियान में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा कि बाणिज्य सुधार के कारण कहीं बेकारी न बढ़ने पावे। परन्तु इतना ही काफी नहीं है। मध्य अधिकाधिक लोगों को काम देने का रहे। इसलिए कोई ऐसा भी संयोजन या यन्त्र निर्माण किया जाना चाहिए, जो उत्पादन-वृद्धि के साथ अधिकाधिक लोगों को काम दिला सके। स्थानीय उत्पादन-मण्डल इस बात का पूरा ध्यान रखे और समय-समय पर आवश्यक उपाय-बोझा भी करते रहें।

हमारा सुझाव है कि ये उत्पादन-मण्डल उद्योगों में सुबरे हुए यन्त्रों को सगाने से पहले यह देखें कि नये यन्त्र लगाने से कहीं आवश्यक बेकार तो नहीं होंगे। यदि ऐसा हो तो पहले उनको दूसरा काम देने का प्रयत्न करें।

जमाना ऐसी से घागे बढ़ रहा है। इसमें उत्पादन के पुराने साधनों को लेकर हम सदा नहीं बैठे रह सकते परन्तु नये यन्त्रों के लगाने से बेकारी घाटी है। इसलिए संयोजकों का पहला और पवित्र कर्तव्य यह है कि समाज में बेकारी न बढ़े इसका वे ध्यान रखें। बेकारी से दुःख बढ़ता है। प्रत्येक लोकतन्त्री राज्य में राष्ट्र के हर नागरिक को—जिसका खरीद काम करने लायक है—काम मिलना ही चाहिए, जिससे वह सम्मान के साथ अपने पैरों पर खड़ा रह सके। यह उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है और राष्ट्र के संयोजकों का यह कर्तव्य है कि वे इसका प्रयत्न करें। आर्थिक संयोजन के इस मानवी पहलू का ध्यान रखना भारत जैसे कम विकसित देश में और भी जरूरी है। यदि मनुष्य-शक्ति का इस प्रकार उपयोग करने का क्यास नहीं रखा गया और केवल उत्पादन ही बढ़ाते गये तो उससे बेकारी बढ़ेगी और बेकारी का घबराहट मनुष्य का पतन और बहुत भारी दुःख।

जाबज की मिस्री का सबाहरण सीजिये। कुछ वर्ष पहले भारत में जाये जानेवाले जाबसों का साठ प्रतिशत हाथ-कुटाई से तैयार किया जाता

या परन्तु पिछले कुछ वर्षों में जाबल को मिस इतनी बढ़ गई है कि अब यह प्रतिष्ठित बहुत गिर गया है और बेहात में बेकारी बहुत ही बढ़ गई है। इसी प्रकार लेम की मिर्चों ने देहात की हजारों धानियों को बेकार कर दिया है। हम नहीं चाहते कि जाबल के छिन्नक निकासने या लेम निकासने के से ही पुराने तरीके सदा काम में लाये जायें। उनमें सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि वे बस्ती और ग्रामिक प्रणाली काम कर सकें परन्तु हमें ग्रामों के और मनुष्यों के उपयोग में पूरे विवेक और अनुमन से काम लेना चाहिए। योजना-आयोग का यह मुख्य काम है। उसका यह कर्तव्य है कि ग्रामिक-से ग्रामिक उत्पादन के साथ-साथ ग्रामिक-से-ग्रामिक मनुष्यों को काम किस प्रकार दिया जाय ऐसा ग्रामिक संयोजन करें। जो संयोजन-यन्त्र इस संतुलन को नहीं साध सकता है उसके हाथों में इस क्षेत्र में या अन्य किसी देश में नरोंओं के भाग्य की ज़ाबतदारी नहीं छपी जा सकती।

दूसरी पचबर्षीय योजना में करीब एक करोड़ नये धारमियों को विभिन्न राज्यों में रोजी मिलने का प्रयत्न किया गया है। हम नहीं जानते कि इसकी देखभाल करने के लिए योजना आयोग ने कोई समिति नियुक्त की है या नहीं और कि सारे देश में और उत्पादन के असंग-असम क्षेत्रों में सदा इस बारे में किस प्रकार प्रगति हो रही है। मुझे हुए ग्रामों के प्रयोग से यह सम्भव है कि अगले कुछ वर्षों में उत्पादन काफी बढ़ जाय। सचमुच यह अच्छी बात है क्योंकि जबतक देश की सम्पत्ति नहीं बढ़ेगी हमारा जीवन-स्तर ऊँचा नहीं उठेगा। परन्तु गरीब और उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने की बिन्ता में यदि संयोजन में लोगों को रोजी देने के पहलु पर भी हम आवश्यक ध्यान नहीं देंगे तो अपने बुनियादी कर्तव्य के पालन में हम बुरी तरह असफल सिद्ध होंगे। इसलिए हमारे संयोजन के द्वारा ग्रामिकाधिक धारमियों को काम मिलाता जाता है और मिलाता जायगा या नहीं इसका सदा ध्यान रगनेवाला कोई उच्च रचना अत्यन्त आवश्यक है।

ग्रामिक उत्पादन और साथ ही ग्रामिकाधिक लोगों को काम भी मिलाता रहे इसके लिए ग्रामिक विचारों की योजनाओं के अन्तर्गत जो विवेक प्रकट करना बहुत आवश्यक है। केव्ही संयोजन में बड़े अनुशासन का बोध आ जाता है, जिसके कारण स्थानीय प्रकरकों की तरफ ध्यान नहीं आ

पाता। इसलिए बहुत धन्य हो यदि हम अपने संयोजन को जिनों के स्तर तक विकेंद्रित कर दें। जिला-विकास-परिषदें अपने-अपने क्षेत्र की उत्पादन उपयोग और काम देने-सम्बन्धी जरूरतों को मासूम करके उसका सचित प्रभाव बहुत अच्छी तरह कर सकेंगी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में ऐसी विकास-परिषदों की नियुक्ति पर काफी जोर दिया गया है। परन्तु जरूरत है विकेंद्रित उत्पादन की योजना पर देश में सबसे अधिक जोर देने की। सब तो यह है कि हमें अपने धार्मिक जीवन की ठेठ जड़ में—अर्थात् ग्राम तक—पहुंचना चाहिए। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यह न इष्ट है और न सम्भव ही। परन्तु हम अपने धार्मिक जीवन का संयोजन ऐसा व्यवस्थित कर सकते हैं कि हमारे सामाजिक जीवन की जितनी भी इकाइयां अपने सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी समझ सकें और उसपर प्रभुत्व कर सकें व्यवस्थित कर सकें। लोकतंत्र की पद्धति में जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहन दिया जाय। इसके लिए व्यापक विकेंद्रीकरण आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना लोगों में भीतर से उत्साह पैदा ही नहीं होगा।

हम आशा करते हैं कि योजना-आयोग और भारत-सरकार के विभिन्न मन्त्रालय इन सब प्रश्नों पर समन्वित रूप से विचार करेंगे ताकि भारत अपने धार्मिक संयोजन और उसपर प्रभुत्व करने का कोई ऐसा समुदाय तैयार कर सके जो उसकी समस्याओं को हल कर सके और अन्य देशों का भी मार्ग-दर्शक बन जाय। दूसरे देशों की विधि और पद्धतियों की केवल नकल करने से हमारा काम नहीं चलेगा। भारत की अपनी प्रकृति प्रत्यक्ष है। हमें अपने धार्मिक विकास की योजना उसके अनुरूप ही बनानी चाहिए। गांधीजी ने राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति का मार्ग हमको बताया था। विनोबा धार्मिक क्षेत्र में वही काम कर रहे हैं। हमें गांधीजी और विनोबा के अनुभव और मार्ग-दर्शन का पूरा लाभ उठाकर भारत के धार्मिक संयोजन का उपयुक्त और संतुलित तरीका ढूँढ़ लेना चाहिए।

१२

भूदान-यज्ञ का धर्मशास्त्र

सन् १९२१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी ३१६५ करोड़ थी। इनमें से ४४८ करोड़ खेतिहर मजदूर हैं जिनके पास जमीन नहीं परन्तु दूसरे की जमीन पर काम करते हैं और ११ लाख मनुष्य ऐसे हैं जिनकी जमीन होने पर भी वे उसपर काम नहीं करते। वे केवल जमीन का मुताफ्फा लेते हैं। देश में कुल खेती योग्य जमीन कोई तीस करोड़ एकड़ है। इसमें पत्थरी की और खेती योग्य बंजर जमीन भी गिन ली गई है। जैसा कि हम सब अच्छी तरह जानते हैं हमारे यहां औसत बोट का आकार दूसरे अनेक देशों की तुलना में बहुत छोटा है। उत्तर प्रदेश में औसत दाठा छ. एकड़ का है, वहां मध्यप्रदेश में ४१ एकड़ का, बंगाल में ४४ एकड़ का पंजाब में दस एकड़ का बिहार में ४१ एकड़ का और मध्य प्रदेश में ८१ एकड़ का है। यदि पच्चीस एकड़ को अधिकतम सीमा मान लिया जाय तो शायद राज्य में इससे अधिक जमीनें बितने आदमियों के पास हैं इसके सही-सही आंकड़े धान उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी हमना तो कहा जा सकता है कि पच्चीस एकड़ से ऊपरवाले दाठों की जमीन कुल मिलाकर काफी हो सकती है। यह जमीन बेजमीन मजदूरों को बाटी जा सकती है और ग्रामीण दाठों के लोगों में जमीन की भी स्वाभाविक वृद्धि है उसका कुछ संशुद्ध किया जा सकता है। आचार्य बिमोबा भावे के भूदान-यज्ञ आन्दोलन की बुनियाद में यही सबसे पहला सिद्धान्त है। गांधी में रहनेवाले लोगों के दिनों में जब और वायु के सभान जमीन की मूल का होना बिम्बुल स्वाभाविक और उचित है। माना प्रकृति की देन के रूप में जमीन धान का भी उन्हें हर प्रकार सहज है।

इसलिए किसी भी परिवार के पास केवल उतनी ही जमीन हो जितनी उसके लिए आवश्यक पशु पक्षी करने के लिए जरूरी हो। हमने अधिक जमीन रखने का किसीको अधिकार नहीं। हम नैतिक सिद्धान्त के पालन के लिए तथा कृषिज्ञान में लिखित राज्य के आर्थिक सिद्धान्तों के पालन के लिए भी राज्य को चाहिए कि वह जितनी भी जरूरी सम्भव हो, खेतिहर

मजदूरों में व्यापक रूप से जमीन बांट दे। भारत में एक सामंशिक खाते का आकार पांच से लेकर दस एकड़ तक माना गया है। इस हिसाब से खाते की अधिकतम सीमा पच्चीस एकड़ अनुचित नहीं रखी जा सकती।

तो इस जमीन का वितरण किस प्रकार हो ? साम्यवादी देशों में जमीन श्रमियों से जमीन खीन ली गई है और उन्हें कोई मुआवजा नहीं दिया जा रहा है। परन्तु भारत के संविधान में मौखिक अधिकारोंवासी भारत के अनुसार तो राज्य को भी जमीन से उनका मुआवजा देने के लिए बंध बांधा हुआ है। परन्तु सभी जानते हैं कि मुआवजे की बरें चाहे कितनी ही कम मुकदरों की जाय इसकी कुल रकम मिसकर इतनी बड़ी—करोड़ों-भरों की—हो सकती है कि भारत जैसा गरीब देश वह नहीं चुका सकता। तो फिर उपाय क्या हो ? आचार्य विनोबा साम्यवाद की इस चुनौती का जवाब देने की कोशिश कर रहे हैं। वह इस प्रकार कि अहिंसा के मार्ग से जमींदारों को राजी किया जा सकता है कि वे अपने पास की अतिरिक्त जमीन बँट कर कोई मुआवजा सिद्धे-बेजमीन मजदूरों को दे दें। जैसा कि रॉबर्ट ट्रम्बल ने 'न्यूयॉर्क टाइम्स' पत्र में लिखा है "विनोबा गांधी-यात्रा बूमकर लोगों को समझा रहे हैं कि जिनके पास बहुत अधिक जमीन है, वे अपना कुछ हिस्सा उन लोगों को दें जिनके पास कुछ भी नहीं है। विनोबा की इस मनोवा हम सब ने लाखों-करोड़ों गरीबों और जमीन के भी आकर्षित और प्रभावित किया है और वे 'भूमि के दाता भगवान' माने जाने लगे हैं। यह सच है कि जमीन की यह समस्या बहुत बड़ी है और यह अकेले विनोबा से हल नहीं होनी परन्तु उनकी यह हसल जमीन-सम्बन्धी सुधार के कानून के लिए बाधा बनाने का बहुत गहनपूर्ण काम कर रही है। इसके अलावा विनोबा का मुदान-यज्ञ-आन्दोलन भारत में साम्यवादी हलकों का करारा जवाब भी है।

कुछ लोग पूछते हैं इस प्रकार आचार्य विनोबा को जो जमीन दी जाती है, उनका बँटवारा किस प्रकार होगा ? आचार्य विनोबा का विचार है कि प्रारम्भ में बेजमीन मजदूरों को जमीन की किस्म के अनुसार पाँच-पाँच दस-दस एकड़ के टुकड़े और साथ में खेती करने के कुछ साधन भी दिये

जायें। फिर सारी जमीन को एकत्र करने के बजाय सहकारिता का तत्त्व नेती के कामों में—इसने निर्यात-निर्यात आदि में—साबू किया जाय। इसी प्रकार नेती की उपज बेचना बीज संभ और जाय करीबना आदि के लिए भी सहकारी-समिधियां बना भी जायें। इस पद्धति से एक तो लोगों को जमीन-सम्बन्धी मुक्त प्राप्त होगी और दूसरे, हर परिवार समय-समय पर लगाकर काम करेगा तो काम भी अधिक होगा और उपज भी अधिक आयेगी। कुछ लोग कहते हैं कि पारिवारिक पद्धति से खेती करने की अपेक्षा बड़े-बड़े नेतों की नेती अच्छी और अधिक लाभदायक होती है। परन्तु यह ठीक नहीं। विनोबा की बात कोई भावुकता में कही गई बात नहीं है। वह प्रत्यक्ष अनुभव-स्वभाव और मानस-शास्त्र के अध्ययन के आधार पर कही गई है। बड़े-बड़े पर्यवर्त्ती और प्रत्यक्ष अनुभव भी यही कहना है।

पी.सी.एन. बकीस ने अपनी 'प्लानिंग फॉर ए गार्टेन इकॉनमी' नामक पुस्तक में लिखा है, 'वेतन को जिन चीजों की सबसे पहले जरूरत है, उनमें से एक है जमीन का पुन-वितरण। जहाँ खेती मुख्य उद्योग नहीं है ऐसे देशों में बड़े-बड़े कारखानों का भस्म हो परन्तु जहाँ नेती को जीवन में स्थान है वहाँ लोग जमीन-सम्बन्धी ऐन किसी मुद्दे को बरदाश्त नहीं करेंगे जिसमें जमीन का पुन-वितरण और बड़े-बड़े जीना को छोटे-छोटे भागों में तोड़ने की व्यवस्था नहीं होगी। यह साग इनने बेगबर नहीं है। दूसरे देशों में जमीन-सम्बन्धी मुद्दे जितने घाय बड़े हुए हैं, हमका उनका पता है।"

सर मास्टर डालिंग का यूगोस्लाविया की सहकारी नेती पर एक लेख मैग्नेटर मासिकपत्र में छपा है जिसमें यह लिखन है— 'हम प्रयोग में न केवल किसानों का ध्यान में मका दिया है बल्कि राज्य और किसानों को भी ध्यान में मका दिया है। सामूहिक नेती में भी गानगी नेतों की अपेक्षा उन्नत बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए सामूहिक नेती में बीज बरबादी भीतर भगद काम की टाममन्स और समय का अपव्यय भी जाना है।

प्राप्याकर्मिदाजी ने हान ही में लिखी अपनी किताब 'यार्न एगेंस्ट वेजेंट' में बताया है कि मार्क्स ने बड़े-बड़े कारखानों की बड़े जोरों में विमर्श की है परन्तु फिर भी पूर्वी यूरोप में आज भी छोटे-छोटे गाव

सोवियत रूस सामूहिक भेती का घर है परन्तु वही भेती के इस सामूहिकरण का किसानों ने बड़ा खोरबार विरोध किया था। बोरीन बोरीनर ने अपनी पुस्तक 'रेवोल्यूशन इन इस्टर्न यूरोप' में लिखा है कि सोवियत रूस के इस प्रयोग में बहुत-से कड़वे सबक मरे पड़े हैं। वह लिखते हैं—

'सामूहिकरण का परिणाम हुआ दो वर्ष का अकाल और बहुत-से मवेशियों का बच जिसकी पूर्ति आगे बस वर्ष तक नहीं हो सकी।'

कोलखोज (सामूहिक भेती) के प्रतिरिक्त रूस में ऐसे हुए बड़े भेती पर काम करनेवाले मजदूर को आगे एकड़ से लेकर ढाई एकड़ तक का जमीन का एक छोटा-सा टुकड़ा स्वतन्त्र दिया जाता है जिसपर वह जो चाहे वह कर सकता है। इस छोटे-से टुकड़े पर कभी विद्यालय अपने परिवार की जरूरत की चीजें बोते हैं और दिन लगाकर मेहनत करते हैं। जैसा कि 'दि सेन्ट ऐन्ड दि पेजेंट इन रूमनिया' के लेखक ने लिखा है वास्तविकता यह है कि भेती का आकार ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, वी एकड़ उपज का परिमाण घटने का कारणों से बढ़ता जाता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि इन छोटे-छोटे भेतों में सहकारिता की कोई गुनाहम नहीं है बल्कि सच तो यह है कि ऐसे किसानों को अपने भेतों के कामों में आपस में गुप्त सहयोग करना चाहिए। 'उससे बड़ा लाभ है। अपने भेतों को वे मिलाने नहीं परन्तु कामों में अर्थात् जुलाई-नवंबर तक की कटाई, बेचना अपनी निजी तथा सती की जरूरतों की वरीदना इन सबमें वे एक-दूसरे की पूरी मदद कर सकते हैं। वे सहकारी बैंक स्थापित करके सहकारी कर्ज का प्रबंध कर सकते हैं मवेशी की बीमारी अपना प्रतिबंधा धादि से बचने के लिए कोई बीमा-योजना बना सकते हैं। अपना सिपाई प्रतिरिक्त पानी की निवासी कुम्हानम बटु-पानम और उनमें का संयोजन धादि बावें ग्राम-सभा की सहायता से सहकारिता के आधार पर कर सकते हैं। जन बहुत छोटे हों तो उनको मिलाकर एक बड़ा भेती भी बना सकते हैं।

बेजमीन मजदूरों में बेकारी कम करने तथा उनकी बेमीन-जम्ब की भुल को धास्त करने के लिए भी बेमीन का बड़े पैमाने पर पुनर्वितरण

आवश्यक है। बिनोबा का भूदान-आन्दोलन सम्भाव्य और सहानुभूति-पूर्वक बगैर मुद्राबन्ध के जनमानों से बरीबों को जमीनें बिसाले के लिए बाटा करण बनाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यह बाटाकरण ही देश को खूनी कालि से बचा सकता है जिसके लिए साम्यवादी इतने उत्साहमें हो रहे हैं।

इस दृष्टि से आचार्य बिनोबा का भूदान-यज्ञ-आन्दोलन केवल भारत की नहीं समस्त संसार की एक जबरदस्त समस्या को सुलझाने की दिशा में एक अत्यन्त महान कार्य है। इस निःशस्त्र कालि के बीच सारे देश में जाने में आचार्य को बहुत भारी सफलता मिली है। इस कार्य की महत्ता को आज सायब हम पूरी तरह नहीं पहचान पाएँ परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि आज सत् और असत्, हिंसा और अहिंसा तथा शान्त नवनिर्माण तथा बिनाशकारी पागलपन के बीच संसार में जो महान संघर्ष बिड़ा हुआ है, उसमें बिनोबा का यह भूदान-आन्दोलन एक जबरदस्त शक्ति के रूप में इतिहास में सदा याद किया जायगा।

३६

ग्रामदान की कालि

केरल के कालावी ग्राम में हुए सर्वोदय-सम्मेलन में ग्रामदान-आन्दोलन से उत्पन्न होनेवाली बहुत बड़ी-बड़ी सम्भावनाओं को सारे देश के सामने रख दिया है। भारत में जमीन का प्रश्न नठिन और अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसके हल का इसमें एक सुन्दर रास्ता मिल जाता है। प्रधान मंत्री भी नेहरू ने इस आन्दोलन का यह कहकर स्वागत किया था कि सहकारी बेटी के प्रयोग के लिए यह आन्दोलन आदर्श बाटाकरण तैयार करने का काम करेगा। इस आन्दोलन के प्रत्येक पहलुओं पर आचार्य बिनोबा से चर्चा करने का अवसर मुझे मिला था। इसलिये इस महीन और कालिकारी हमसफ की एक साफ तस्वीर देना उपयोगी होगा।

प्रारम्भ में आचार्य माने ने हर किसान से उसकी जमीन का केवल छठ हिस्सा बाब के बेजमीन मजदूरों के लिए भूदान में देने की मांग की थी। इस प्रकार बिनोबा अभी तक लगभग पचासीस लाख एकड़ जमीन

राम में प्राप्त कर चुके हैं। परन्तु उत्तर प्रदेश बिहार और बाद में उड़ीसा या तामिसनाड के कुछ ग्राम-वासियों ने अपनी सारी-बी-सारी छोटी-सी जमीनें पुनर्वितरण के लिए बिनोबा को भूदान में देना स्वीकार कर दिया। भूदान-आन्दोलन के इस नवीन रूप को ग्रामदान कहा गया है। बिनोबा इस ग्रामदान आन्दोलन को पहिया के घेरे में एक महान् क्रांति मानते हैं और कहते हैं कि इसका महत्व बहुत गहरा है। कल्पना तो कीजिये कि एक गाँव के चारों ओर-किताब अपनी जमीनों का स्वाभाविक स्वेच्छा पूर्ण छोड़ देते हैं और फिर इन जमीनों का बंटवारा प्रत्येक को उनके घर के अनुषंग की संख्या के अनुसार सबकी सम्मति से किया जाता है। यह कितनी बड़ी बात है। किनासा कहा त्याग है सहयोग की कितनी महती भावना है। अनुषंगों के बिना और किसानों को बरभनवासी इतने भी बड़ कर और अधिक भारभर्यजनक कोई क्रांति हो सकती है? कोरापुट में एक किसान के पास बीबीन एकर जमीन थी परन्तु ग्रामदान के बाद जमीनें फिर से बाँटी गईं तब उसे केवल साठे तीन एकर जमीन ही मिली थीर एक-दूसरा बेजमीन मजदूर या उसे पाँच एकर जमीन मिल गई क्योंकि उसने यहाँ अधिक अनुषंग से और खूबी यह कि इन बीबीन एकरों का बाँटा में साठे तीन एकर का दान बड़ी इतमनापूर्वक और समर्पण की भावना से बिनोबा के हाथ से लिया।

ग्रामदानी गाँवों में कुछ रक्के का इसका हिस्सा सहकारी पञ्चन की सम्मिलित रैनी के लिए रक्का जाता है। इसकी उन्न को गाँव के सार्वजनिक कामों में जैसे पंचायत-शासन पाठशाला सुविधा-गृह सञ्चार्य है। यदि गाँव के लोगों की इच्छा हो तो सारे गाँव की जमीनों की कारण सहकारी पञ्चन से कर सके हैं। बिनोबा इस प्रकार की सहकारी रैनी को पसन्द करते हैं परन्तु वे इसमें किसी तरह जबरदस्ती नहीं करना चाहते। सब काम सुधी-सुधी हो। यदि गाँव के लोग गाँव की सारी जमीन को दो तीन या चार, पाँच-पाँच के भागों में बाँटकर सहकारी रैनी करना चाहें तो ऐसा भी कर सकते हैं। मुख्य बहना यह है कि सहकारी रैनी के प्रावधानों से बड़े न हो कि इससे काम करनेवाले परिवार ग्राम में निरुद्ध न

सम्भव न रह सके। सहकारी लेती पूर्णतः स्वच्छ की वस्तु हो ऊपर से सादी न बाम। ग्रामीणों को सहकारिता के साथ समझ दिये जान और प्रारम्भ में प्रयोग भी करके दिखा दिया बाम। इससे बहुत लाभ होगा। वे इसके लाभ को अपने-आप समझ बायेंगे।

यदि सारे गांव की जमीनों की या उसके दो-तीन बड़े-बड़े भाग करके उनकी सहकारी पद्धति पर सम्मिलित तौर पर कास्त करना सम्भव नहीं हो तो सब परिवारों को अलग-अलग जमीनों दे दी जायें। वे केवल उपयोग के लिए होंगी। इनपर उनका ज्ञानगी स्वामित्व नहीं होगा। इन जमीनों को न वे बेच सकेंगे और न रंहन रह सकेंगे। इन परिवारों के पास वे तभी तक रहेंगी जबतक समस्त ग्राम की योजना के अनुसार वे इनकी प्रच्छी तरह कास्त करेंगे। इन परिवारों से छाछा की जावगी कि वे मने ही सम्मिलित रूप से लेती न करें परन्तु लेती की विविध प्रक्रियाओं में पूरी तरह से एक-दूसरे को सहयोग दें अर्थात् जोतना निबाई कटाई, सिंचाई, साब देना फसल को बेचना इनसब कामों में वे एक-दूसरे की मदद करें। इस प्रकार की पारस्परिक मदद भी एक प्रकार की सहकारिता ही समझी जावगी परन्तु मुख्य बात यह है कि सारी जमीन गांव की होपी परिवारों की ज्ञानगी नहीं। प्रत्येक परिवार से ग्राम-सभा जमीन का किराया वसूल करके शासन को दे दिना करेगी।

बिजोबा की राय है कि खेत या जोत के आकार के अनुसार जमीन का उत्पादन नहीं घटता-बढ़ता। भारत जैसे देश में गहरी (इंटेन्सिव) लेती करना बहुत जरूरी है। बेशक जमीन के टुकड़े बहुत छोटे न हों और बीच में मेड़ें बनाकर जमीन बेकार भी न जाने ली जाय। जापान में जमीनों को अलग-अलग बताने के लिए प्रत्येक खेत की सीमा पर असम रंग की फसल बो ली जाती है। भारत में ऐसा किया जा सकता है। इसके अलावा लेती के बिठने ली कामों में सम्भव है सहकारी पद्धति से काम लिया जाय।

जो-जो ग्राम अपनी सारी जमीनों को सहकारिता की पद्धति पर जोतने के लिए तैयार हों उनका हम स्वागत करें और उस गांव की ग्राम-सभा को जागत-बर्ष सिंचाई अच्छे बीच धादि की सुविधाएं देकर उसे प्रोत्साहन दें। ग्रामबासी शनों में सामुदायिक विकास-योजनाएं जास तौर पर लोती

काम या बेकास तीर पर अधिक मुबिधाएँ हैं। यदि हम के देशों में सामूहिक
धेती का प्रयोग सम्पन्न रहा है क्योंकि वही यह किसानों की इच्छा के
बिना उनपर जारी नहीं की। यदि साम्यवादी गांधी से लोग अपनी इच्छा से
सामूहिक सहकारी लेनी करना पसन्द करें तो निश्चय ही यह सम्पन्न
होती। मुझे की बात है कि सहकारिता में लोगों को विश्वास हो और दूरा
करवाह है।

ग्रामवादी लोगों की ग्राम-समाधों में प्रत्येक परिवार का एक प्रतिनिधि
होता है। इन ग्राम-समाधों में प्रत्येक काम जैसे सहकारी बैती कानूनी
प्रण धर्म विकास-कार्यक्रम आदि के लिए धन-समय समितियाँ होती
हैं। समा में जहाँ तक सम्भव हो निश्चय सर्वसम्मति से ही होने हैं। बिना
बहुत पसन्द करें कि सासन और सामूहिक विकास-योजना में इन ग्राम
वादी लोगों की मदद करे और अपनी सामूहिक विकास-योजनाएँ तथा
राष्ट्रीय विकास-योजनाओं की प्रवृत्तियों को इनके काम के साथ जोड़ दिया
जाय। यह बहुत चाहते हैं कि राज्य सरकारें जल्दी-से-जल्दी एक कानून
बना दें जिससे ग्रामवादी लोगों को कानूनी मान्यता दे दी जाय ताकि
राष्ट्रीय कार्य और सहभागिताएँ आदि उन्हें मिलने में आसानी हो जाय और
ग्राम-समा के द्वारा गांधी का समान सरकारी खदानों में धन दिया जा
सके। सभी ग्रामवादी गांधी को कई प्रकार की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं।
उदाहरणार्थ यदि कोई किसान अपनी जमीन खूदान में देना है तो राज्य की
सरकार और सहकारी विभाग उसे ठीक-ठीक या अन्य बर्ज देने से इन्कार
कर देते हैं। जमीन का दान हो जाने पर भी राष्ट्रीय कार्यकारी मण्डल के
लिए सभी स्थिति में पीछे पड़े रहते हैं। यदि ग्राम 'ग्राम-मण्डल' को कानून
द्वारा मान्यता दे दे और यह ग्राम-मण्डल द्वारा समान बर्ज कर दिया करे
और उनकी कार्य तथा भी बर्ज भी देवे समय जाय तो ये कठिनाइयाँ दूर
ही लगती हैं।

बिनावा की यह भी बहुत इच्छा है कि धन के ग्रामवादी गांधी नवीन
प्रकार का जीवन शुरू कर दें। जमीन के पुनर्निर्माण के साथ जीवन के
पुराने मूल्य भी रहन जाय। नवीन ग्राम रचना में वे बार-बार पर अधिक
धोर देने हैं—

१. जमीन का श्वाय-पूर्वक पुनर्वितरण और सहकारी बेटी ।
२. ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन और जनका विकास ।
३. बुनियादी शिक्षा का प्रारम्भ ।
४. भारतीय पद्धति से और नवीपधियों के उपयोग द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा ।

इसके अलावा भी गांधी के नव-निर्माण के अनेक दूसरे काम हैं । परन्तु वे चार अर्थात् प्रधान ग्रामोद्योग बुनियादी शिक्षा और आरोग्य नवीन ग्राम रचना के आधार-स्तम्भ हैं । बिनावा यह भी बहुत चाहते हैं कि ग्रामीणों को अपनी सूझ-बूझ का विकास करने तथा अपनी बीबनाएं दूर बनाने का मौका देना चाहिए । अवश्य ही राज्य इसमें उनकी मदद करे, परन्तु गांधी की बहुत अधिक आर्थिक और राजनैतिक सत्ता देने की जरूरत है । बिनावा की राय है कि यदि हम अपने लोकतन्त्र की स्थापना करना चाहते हैं तो हमें ग्रामराज स्थापित करने की दिशा में तुरन्त कदम उठाने चाहिए । वह कहते हैं "बिना परिमाण में सत्ता सरकार के पास से ग्रामीणों के हाथों में जायगी उसी परिमाण में अहिंसा बढ़ेगी और शासन की सत्ता कम होवे-होवे अन्त में वह अक्षय्य हो जायगा ।

इस प्रकार भुदान और ग्रामदान का ग्रामोद्योग दिन-ब-दिन अधिक अधिक प्रतिकारी रूप धारण करता जा रहा है । सब तो यह है कि सर्व सत्तावाद (ऑथॉरिटेरिजिज्म) की चुनौती का बही सबसे जोरदार और अधिक अक्षय्य जवाब है । वह जीवन के सूक्ष्मों में ही अन्ति कर रहा है और यह सब होय वर्ग-संघर्ष और हिंसा हैं नहीं अहिंसा लोकतन्त्र और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया के द्वारा । इसके अलावा भुदान और ग्रामदान का ग्रामोद्योग सबसे पिछड़े हुए और गरीब-से-गरीब लोगों पर असर डालने की सक्ति रखता है । शासक ही केवल सभी लोगों को कर्ब दे सकता है, जिनके पास जमीन या अन्य किसी प्रकार की आयदाव है । जिनके पास कुछ नहीं है, उन्हें राज्य से अवतक कोई मदद नहीं मिल सकी है । इस विषय में ग्रामदान हमें एक नया रास्ता दिखाता है । ग्रामराज का सहकारी मार्ग गरीब-से-गरीब आदमी की जरूरतें भी पूरी करने का सफल यत्न करता है । इसीलिए ग्रामदान का ग्रामोद्योग

आर्थिक-सामाजिक प्रोत्साहन का पात्र है।

१७

करो के सम्बन्ध में नई नीति

राजनैतिक स्वतन्त्रता के बाद भी लक्ष्मी स्वतन्त्रता का सभी धार्मिकों को प्राप्त होना चाहिए जब हम देश में हर धर्म के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता भी स्थापित कर सकेंगे। भारतीय संविधान में राजनीति के धार्मिक सिद्धांतों में लिखा है, "शासन का कर्तव्य है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए वह रोजी उपलब्ध कर दे। और वह भी कि "धर्म-सम्बन्धी नीति का अर्थ इस प्रकार न हो कि सम्पत्ति और उत्पादन के साधन इस तरह केन्द्रित हो जाय जिससे सर्वसाधारण का अधिकार हो।" राज्य इस बात का पूरा प्रयत्न करे कि "अकारण-मनों को रोजी का अभाव घिसा की कमी और बेकारी बुझावस्था बीमारी युक्त और अन्य प्रकार की अकारण वृद्धि का अभाव में शासकीय सहायता मिलती रहे।" संविधान का शासन को वह भी आदेश है कि "बहु धार्मिक कानून के द्वारा या कोई धार्मिक संपत्ति निर्माण करके या अन्य किसी प्रकार से ऐसा प्रयत्न करे कि लक्ष्मी में उद्योगों में तथा अन्य काम करनेवाले मजदूरों का काम निर्वाह के योग्य मजदूरी प्रदान करने-सहन के योग्य काम करने की सुविधाएं, कुरसठ का पूरा लाभ तथा अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के अवसर मिलते रहें और बात और पर ध्यान करे कि सामान्य धर्मों में व्यक्तिगत रूप में या सहकारिता के आधार पर गृहोद्योगों को भी प्रोत्साहन मिलता रहे। अर्थ है कि ये नारी बातें सभी सम्बन्ध होती जब हम अपनी वर्तमान धर्म-रचना को योजना-बद्ध तरीकों से ठीक करेंगे।

धार्मिक संयोजन के तरीके दो हैं एक तो डिस्टेंटरवाही का और दूसरा लोडरवाही का। पहले तरीके में व्यवस्था से बाध लिया जाता है और बड़ी जोरदार सामाजिक उन्नति-युक्त होती है। दूसरा तरीका धार्मिक है। इसमें समाज के सभी धर्मों का सम्बन्ध और सहयोग होता है। भारत में अस्थाव राज की स्थापना के लिए दूसरे धार्मिक लोडरवाही तरीके को अधिक प्रयत्न माना है। यह मानना समझ है कि डिस्टेंटरवाही बढ़ति हो सकेगी यह

तरीका—मोकलमी तरीका—यह भीमा ही होता है। हमने संतुलित ग्राम व्यवस्था को अपनाते का निश्चय किया है जिसमें पूँजीशाही और डिपेंडेंट शाही इन दोनों धोरों को छोड़कर मध्यम मार्ग का अवलंबन किया जाता है। राष्ट्र-पिता गांधीजी ने भी स्वतंत्र भारत के लिए इसी मार्ग को चयन बताया था। इस प्रकार के सामाजिक और धार्मिक सुधार माने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हमीन बेटी उद्योग शासन और सार्वजनिक कोष से सम्बन्धित दूरगामी सुधार सेमी से जानेबाने उपयुक्त कानून बनाये जायें।

यह कहना सही नहीं है कि भारत में करों का बोझ पहले ही बहुत भारी है और अब करों को अधिक बढ़ाने की युवावृष्ट नहीं है। राष्ट्रीय आय और करों का अनुपात भारत में ७ प्रतिशत है जब कि चीनका में वह ११ प्रतिशत जिस में १६ प्रतिशत संयुक्त राज्य अमरीका में २६ प्रतिशत और इंग्लैंड में ४१ प्रतिशत है। यह भी धार रहे कि भारत में धावाही का केवल ६.२४ प्रतिशत आय-कर होता है जबकि इंग्लैंड में ४४ प्रतिशत संयुक्त राज्य अमरीका में ३७ प्रतिशत आस्ट्रेलिया में ३४ प्रतिशत और कनाडा में २० प्रतिशत लोग आयकर देते हैं। निश्चय ही हमारे देश में करों को बढ़ाने की धमी काफी युवावृष्ट है और धमी तो कितनी ही विकास-सोचनाएँ चल रही हैं। वे लोगों की हस्तियत और भी अच्छी कर देंगी। जैसा कि स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र बस ने अपने 'इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में लिखा है 'कर तो सूर्य की किरणों के समान हैं। वे पृथ्वी से पानी खींचकर वर्षा के रूप में पुनः उसे सीढ़ा देते हैं जिससे अच्छी फसल आती है। सब तो यह है कि सबकुछ इसीपर निर्भर करता है कि करों का उपयोग किस प्रकार होता है। भारत के लोगों को यदि यह निश्चय हो जाय कि इन करों का उपयोग उम्मीकी और जानेबानी पुस्तों की घलाई के लिए होया तो उन्हें खर्च से अधिक कर लगाने पर भी कोई शिकायत नहीं होगी परन्तु इस लाभ के सिद्धान्त के बजाया लोगों की शक्ति का भी ध्यान अवश्य रक्खा जाना चाहिए। भारत जैसे अधिकसित देश में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के रूप में जो राज्य-कोष एकत्र किया जायगा वह जनता के सभी वर्गों से इकट्ठा किया जायगा। नतीज मध्यम और धनी वर्ग

के लोगो पर उनकी हैसियत के अनुसार यह बोझ बंट जायगा।

इस समय साधन-संपत्तियों और निर्यंत्रों के बीच एक बहुत बड़ी खाई है। इन खाई को तुरन्त एक ग्याय युक्त कर-प्रणाली द्वारा व्यवस्थित रीति में भर दिया जाना चाहिए। धनर गरीबों को यह विश्वास हो जायगा कि दामन धमीरों की धमीरी कम करके समाज में समानता लाने का निश्चय कर चुका है तो वे इस घतिरिक्त बोझ को खुसी-खुशी उठा लेंगे। हमें मानना होगा कि वर्तमान धार्मिक और सामाजिक रचना ऐसी है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का जाने पर भी समाज में जो धनरमैवासी नियमताएँ हैं वे कम नहीं हुई हैं। फिर धमीरों को समाजवादी की गरमी का अनुभव कैसे होगा? और जबकि उन्हें इस गरमी का अनुभव होने नहीं मयता उनमें हम यह धारा नहीं कर सकते कि वे नवीन समृद्ध भारत के निर्माण के महान किन्तु बहिन कार्य में प्रसन्नता के साथ योग दे सकेंगे। मेरा मुझब है कि हमारी धार्मिक नीति का लक्ष्य यह हो कि एक साधारण परिवार की मासिक आय कम-से-कम १०) हो और समाज में सबसे अधिक आय इसमें बीच मुनी धर्पण हो हजार मासिक से अधिक न हो। यह भी ध्यान रहे कि यह १२ का अनुपात कुछ समय के बाद ११० तक हमें ले जाना चाहिए।

इस उद्देश्य की निधि के लिए मैं कुछ ठोस प्रस्ताव भी रखना चाहता हूँ।

१ धनवानों को यह अनुभव करा देना चाहिए कि भारत में यदि लोक-संघ को सफल बनाना है तो उनकी सोचा इसीमें है कि वे जनता की भलाई के लिए धार्मिक करों का बोझ सहकर के अपनी सम्पत्ति कम करने के लिए खुसी-खुशी तैयार हो जायें। यह सच है कि इस देश में १२०) में ऊपर जिसकी धार्मिक आय है ऐसे व्यक्ति केवल १२८६ हैं। परन्तु माय ही यह भी सच है कि प्रति वर्ष कर बसूत करनेवालों के जाल में बीच करोड़ रुपये बच जाते हैं। इसलिए सरकार तथा धनवानों को चाहिए कि यह रकम राष्ट्रीय कोष में प्रतिवर्ष धा जाया करे। करों को बुराना एक राष्ट्रीय पार—मेरा शोध—माना जाना चाहिए और इसलिए उसपर सजा होनी चाहिए।

२ १००००) में ऊपर की धामशक्तियों पर धाय-कर और उच्च

कर (सुपर टैक्स) की बरें अधिक भारी कर दी जायें। इसी प्रकार कमार्सि आनवाली घाम और बंदर कमार्सि हुई घाय पर भी बरें अधिक-अनन्य हों। इंग्लैंड की नाति भारत में भी कुटुम्ब के आकार के अनुसार भत्ते देने की प्रथा शुरू कर दी जानी चाहिए। यह मानना पसंद है कि इससे परिवारों की बुद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा।

३. आमदा-सम्बन्धी कर (एस्टेट टैक्सी) सभी बहुत कम है। इसे एक करोड़ के ऊपर की आयदाओं पर ७५ प्रतिशत तक बढ़ा दिया जाना चाहिए, परन्तु इसमें अनुचित छक्की न हो। करदाताओं को यह भुविबा दी जाय कि वे अपने जीवन-काल में ऐसी हीर पर सरकारी कोष में आम दाद-कर जमा करवाने लग जायें। इस कर से भी आम हो उसे जमीन खेती के विकास के लिए जमा कर दिया जाय।

४. बिलास की चीजों पर बिज्जी-कर की बरें भारी हों, किन्तु प्रायो-द्योग और कुहोद्योगों से बनी चीज पूरी तरह कर-मुक्त रहें। भारत सरकार को चाहिए कि बिज्जी-कर की बरें, जितनी बम्बी संभव हो सभी राज्यों में समान कर दे। राज्यों के बीच चलनेवाले व्यापार-सम्बन्धी प्ररतों को भी समिसम्ब ठीक तरह से हल कर देना चाहिए। फिर बिज्जी-कर भी केवल एक ही जगह लिया जाय जगह-जगह नहीं। करो-सम्बन्धी सभी मामले बम्बी से निपटा दिये जायें। लोगों को परेशान न होना पड़े। काम की विधि के नियम सरल-से-सरल हों।

५. जमीन के सपान की वर्तमान पद्धति हटा दी जाय और उसके स्थान पर बेटी का घायकर जारी कर दिया जाय। एक निश्चित सीमा से बिनकी घाय कम हो उन्हें करो से एकदम मुक्त कर दिया जाय और अधिक घायबानों पर भारी बरें लगा दी जायें। इस पद्धति से जमीनों का बिन्नरन भी अपने-आप बाजिब हीर पर हो जायगा।

६. जमीन पर से तो सामन्तवाद भारत में लबलब उठ गया है। अब यह उद्योग-रोष से भी उठा दिया जाना चाहिए। मैनेजिग एजेंट की प्रथा एक प्रकार से सामन्तवाद ही है। इसे तुरन्त बड़-भूम से बरत देना चाहिए। मुताफे की उन्मत्त सीमा निश्चित कर दी जाय। इसी प्रकार मैनेजिग

एजेन्डस का पारिष्पमिक भी बसमी मुलाफे का साथे साथ प्रतिगत भुकरेर कर दिया जाय ।

७ लोग करों की चीटी नहीं करने पाव और लागगी कमपनियों पर प्रावस्थक नियन्त्रण रहे इसलिए जरूरी है कि इनके हिसाबों की जाच पास कीय और प्रमापित (वार्टर्ड) हिसाब-किरीयकों द्वारा अनिवार्य कर ही जाय । छात्र सारी जाच कामकी तीर पर होती है । हमने क्यों वो टासने के लिए झुठे हिसाब तैयार किये जात है ।

८ हमारे देश में बहुत बड़ो-बड़ी रकमें प्रमापित के तीर पर बेकार पड़ी हुई हैं । इनपर यदि कर लगा दिया जाय तो या तो लोग इसे मजदूरों तक ले जाने मर्ये या किसी उपयोगी काम या व्यापार में लगा देंगे । दोनों हासनों में लोगों को रोजी मिलने की सम्भावनाएं बढ़ जायगी ।

९ प्राथिक नीति का अन्तिम उद्देश्य यह हो कि महत्वपूर्ण और मातृ-उद्योगों (मवर इन्डस्ट्रीज) का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय और उपयोग्य वस्तुओं के उद्योगों को विनैगिठ कर दिया जाय । यह उद्देश्य कपड़ा लेन चीनी कमड़ा वायत्र विमानसाई पादि उपयोग्य वस्तुओं के संविश्वासित बड़े उद्योगों पर उत्पादन-कर लगाकर इन्हीं वस्तुओं के गृहोद्योगों और प्रामाण्यों को मरद देकर सिद्ध किया जाय । सरकार ने हान-करपा-उद्योग तथा लाही की मदद के लिए मिल के कपड़े पर कर लगाकर इस सिद्धान्त को पहले ही मास्यता दे दी है । वही सिद्धान्त दूसरी उपयोग्य वस्तुओं के उद्योगों पर भी लागू कर दिया जाय ।

१० पम्पानों में पम्पों की बुलि को प्राप्ताहृ देने के लिए ग्रास प्रचार की पार्मिक संस्थाओं को दिये जानेवाले शानों की रकमों को पांच प्रतिगत है । बड़ाकर कम प्रतिगत तक घाय-करों से मुक्त कर दिया जाय । इन कर-मुक्त संस्थाओं में प्रामता दे दी हो जो राष्ट्रीय विकास-योजनाओं में जाती हो ।

११ पंचवर्षीय योजना में स्थानीय बाधों की योजनाओं के लिए जनता ने जो प्रगंमनीय उपाहृ दिनाया है उसने सिद्ध है कि क्यों की योजना बनाते समय लोगों को साबा और प्रबल लाभ ही बहु सिद्धान्त सदा ध्यान में रहे । गाधारण राष्ट्रीय योजनाओं के लिए लोगों पर मोचा

या अप्रत्यक्ष कर लगाने की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में लोगों के साम की जो स्थानीय योजनाएँ हों और जिनकी जरूरत वे महसूस करते हों उनके लिए मदद प्रभाव या धन के रूप में दान द्वारा सहयोग देने के लिए लोगों को राजी किया जाय तो बहुत अच्छा हो। इसी प्रकार में राष्ट्रीय वस्त्र योजना राष्ट्रीय वस्त्र कोष और राष्ट्रीय योजना मन्त्रालय के प्रभाव-पत्र बेचते समय साथ योजना या हेतुओं के लिए इन एकमों को निविष्ट कामों के लिए अंकित कराने की पद्धति भी शुरू की जा सकती है।

१२ देश में बेकार पड़े हुए मन की बाहर निकलवाने के लिए ग्रामीण जनता के लिए छोटे-छोटे बैंक या बीमा-योजनाएँ बनाई जायँ। व्यापारी बैंकों को भी प्रोत्साहन दिया जाय कि वे ग्रामों में अपनी शाखाएँ खोलें। उन्हें यह भी सहुलियत दी जाय कि वे इन शाखाओं में काम करनेवाले प्राथमिकियों को भले ही कम तनक्वाह हों। डाकघरों की बीमा-योजनाएँ सभी सरकारी नौकरों तक ही सीमित हों। उन्हें आम जनता के लिए भी लागू किया जा सकता है।

१३ देश के बूढ़ोछोड़ों और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने तथा सीमा शुल्क (कस्टम्स) की धाय बढ़ाने के लिए प्रसाधन-सामग्री (कौस्मेटिक्स) सुसंभित चीजें फलों के छिलके चीनी का सामान बिस्कुट मिठाईयाँ धराबें मोटरेट, सिगरेटें कपड़ चाकू-कैंची बर्तन बिबेसों से आनेवाली बिजात की चीजों पर भारी प्रभाव-कर लगा दिया जाय। इन चीजों की बाहर से बहुत मात्रा में आयात के कारण लोगों की स्वदेशी वृत्ति मजबूत हो गई है। देश के उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उसे फिर से बिभाजित बहुत जरूरी है।

१४ सभी तक करों की संपत्ति गाँवों से धापी रही है और सहरों में उसका उपयोग हुआ है। परन्तु अब इस प्रक्रिया को उल्टा देना जरूरी है। प्रारम्भ इस प्रकार किया जा सकता है कि किसी भी प्रदेश से जो सीधे का-बसूम किये जायँ उनका पचास प्रतिशत वहीं की स्थानीय विकास योजनाओं के लिए खोड़ दिया जाय। विपरीत के या विशेष लाभवासे कर (बैटरमेन्ट सेबीज) उन्हीं गाँवों पर लगाय जायँ जिनको इन सुविधाओं से प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। मतलब यह कि अतिरिक्त कर का प्रयोजन और आम लोगों को प्रत्यक्ष बीजना चाहिए।

११. उपभोग्य वस्तुओं के कारखानों के लिए देश में भ्रम घटिक विदेशी पूंजी नहीं घाने दी जाय । सभी यन्त्रों के बनाने में जो विदेशी पूंजी मगी हुई है उसे दूसरे प्रकार के कारखानों में ममाने पर स्वदेशी (इंडिया लिमिटेड) नामधारी इन विदेशी कारखानों के मास पर घतिरिक्त उत्पादन कर और बिज्जी-कर लगा दिया जाय ।

१२. स्थानीय करों को घबिक बैज्ञानिक और पद्धतियुक्त कर दिया जाय । नगरपालिकाएं घादि स्थानीय संस्थाएं अपने क्षेत्र में कीम-सा कर सही रूप में बिठना लगावे । इस सम्बन्ध में उन्हें सलाह देने के लिए राज्य सरकारें सासुदर पर कुछ बोफीसर रखें जिनका धर्म राज्य-सरकारें और स्थानीय संस्थाएं घापस में बांटकर उठा लें । बिकास-योजनाओं के कारण कुछ जमीनों की कीमतें बेहद बढ़ जाती हैं । कर लगाते समय इनका भी ध्यान रहे । लोग बेवस धान के लिए महुसों के समान बड़ी इमारत बनाते हैं । ऐसी इमारतों पर नगरपालिकाएं और नगर नियम घबदय ऊंचे कर लगावें ।

१७. मझाई के दिनों में घतिरिक्त साम-कर (एक्सेस प्रॉफिट टैक्स) एक साधारण बीज बन गया था । कुछ उद्योगों पर, जहां बिदेय साम होता है, यह कर फिर से जारी कर दिया जाय जिससे इन बिदेय सामों का घमसा समाज को भी मिल सके । सदूटे पर भी भारी कर लगा दिया जाय ।

१८. लोगों को यह जानने का घबिधार है कि करों के रूप में जो रकमें उनके बगून ली जाती हैं उनका उपयोग घासन उनके साम के लिए सही तीर पर और बिधायक के साथ ही कर रखा है । इसमिण घासन में कार्यक्षमता और बिधायक से काम लेना घरपन्त—सबसे घबिक—घाब-घक है । ऊंचे बेतनवासे या तो स्वेच्छा से घपने बेतन कम करमें या घनिघार्य रूप से उनके बेतन कम कर नियं जाय । इसी प्रकार सेवकों में रिउउत्तरी और भ्रष्टाचार पूरी तरह से निर्मूल हो जाना चाहिए । सोमन्त्र में हमरी कई बमियों को घोर बठिनाइयों को लोग बरदास्य कर सघटे हैं परन्तु घपन घासन-सम्ब में होम-योम और बईबानी के कमी बरदास्य नहीं कर सघटे करना भी नहीं चाहिए ।

१९ भाव हमारी बाणिक भाय की बाणी रकम सुरक्षा पर खर्च हो रही है। इसे सायब निकट अभिष्य में हम कम भी न कर सकें। परन्तु हमारी सेनाओं का उपयोग राष्ट्रीय विकास योजनाओं के उत्पादक और विकास कार्यों में बड़ी धन्यता तरह किया जा सकता है। इसके लिए गंभीरता पूर्वक यत्न किया जाना चाहिए। इससे जनता पर अधिक ऊँचे कर लगाने की जरूरत कुछ कम रहेगी। शांति के समय में सेनाओं का उपयोग गांवों के रास्ते पुनः सामान्य, अस्पताल बर्बाद करने के उपाय करने, अंबाला समाने और बेटी का पुनर्वासन करनेवाले जंगली पशुओं को नष्ट करने आदि के लिए किया जा सकता है।

२० करों के घटाना मूलोद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके लोगों को प्योकी सेवाएं स्थापित करके और कुछ चीजों का व्यापार बाहरी पर वैदेशिक व्यापार अपने हाथों में लेकर सासन अपनी भाय के कुछ धन्य साधन भी निर्माण कर सकता है। अनुभव की दृष्टि से ऐसे व्यापार के लिए प्रारम्भ में कुछ खास चीजें ही भी भाय।

२१ सबसे बड़ी बात सासन को ठेठ ऊपर से अपने ही उदाहरण द्वाारा देश में सादकी समय और कठोर परिश्रम का बातावरण बनाने का यत्न करना चाहिए। जबतक ऊँचे पर्वों पर बैठे हुए सोम और अधिकारी सुख संयम और सादगी का उदाहरण देश नहीं करते जबतक लोगों से इसकी भासा नहीं की जा सकती। बड़े सहरों में जो बाबतें स्वागत-समारोह बर्बाद होते हैं, बन्द हो जाने चाहिए। हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में सराब की पूरी बन्दी हो जानी चाहिए। इससे सासन को बाबकारी भाय की जो हाति होगी उसका बबला बनता की बबल के रूप में पूरे तरह से राष्ट्र को मित जायगा जो उत्पादक कामों के लिए बाबध्य ही उपसम्प हो सकेगी।

३८

साराबबन्दी की नीति

हमारी साराबबन्दी की नीति के बारे में अभी तक बड़ी गमवफ़हमी है। अनेक राजनीतिज्ञ और समाज-सुधारकों की भी समझ में बह नहीं

पा रहा है। वे तो मानते हैं कि यह भी गांधीवादियों की एक सफल है जिसके कारण राष्ट्र के कोष में प्रतिवर्ष १० करोड़ का घाटा हो रहा है। राशियों की विपणन-समाधियों में और ससह न भी 'इस गलत और दुर्भाग्यपूर्ण' नीति और कार्यक्रम पर सरकार की निम्ना करते नहीं पकते। सामान्य बहुमत से सोच नहीं जानते कि भारतीय संविधान में घासन को इस नीति के बारे में बड़ा स्पष्ट आदेश दिया है। संविधान की धारा ४७ में साफ लिखा है कि "छात्र और दूसरे गरीबों के पदार्थ मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इसलिए राज्य इनके उत्पादन और वितरण के काम को छोड़कर अन्य सब प्रकार के उपयोग पर पूरी बन्दी लगाने का यत्न करे।" इस स्पष्ट आदेश के होने हुए भारत में छात्रबन्दी और महाबन्दी की नीति को रद्द कर देने की बातें करना एकदम विज्ञान के विरुद्ध है। हाँ इस नीति पर प्रत्यक्ष प्रहार किया जाय मुषार की गति क्या हो इसके बारे में प्रत्येक राज्य की वार्षिक स्थिति या अन्य परिस्थितियों के अनुसार समय-समय रायें हो सकती हैं और वे उचित भी हो सकती हैं। परन्तु छात्रबन्दी की प्रत्यक्ष नीति को बुरा बताना और जो राज्य सरकारें छात्रपूर्वक उसे कार्यान्वित कर रही हैं उनका निन्दा करना—सौम्य-से-सौम्य भाषा में कहें तो—देश भक्ति के विरुद्ध है। वह हमारे महान राष्ट्र के पवित्र संविधान के विरुद्ध पाप भी है।

राष्ट्रीय कोष की हानिबाली बलीम न केवल वसत बहिर गरात ग मरी भी है। संयोज सरकार हमेशा बड़ गर्व के साथ छात्रवादी की प्राय को विद्या के नामों के लिए खर्च कर देती थी। पहले तो छात्र विद्या कर सोचों को पठित बनाया जाय और फिर इन पाप से कमाये पैसों का उपयोग हमी लोगों के बच्चों की पढ़ाई में खर्च करने के शुभ कार्य का भेय मिया जाय। इससे अधिक बिलबूफी की और वसत बाध बूमरी क्या हो सकती थी। जो भी सरकार छात्र जैसे बुरी नीति से मिलनेवाली प्राय के प्रयोग पर अपने विकास-काम बनाने की धापा लगाती है वह बन्धन राज्य कभी स्थापित नहीं कर सकती। और वह धनहीन हम साने के प्रयत्न देनेवाली मुर्गी को मारना कभी पसन्द नहीं करेगी। बहुतों स्वभावतः सदा यही आह्वान कि अधिकाधिक लोग छात्र भीयें। उन्हें यह बराबर

पीना सिखावेयी ठाकि उस अधिकारिक गैर मिस। लोक-कल्याण और
 घराबबोरी बढ़ाने की वृत्ति दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। फिर हमें
 एक यह बात भी याद रखनी चाहिए और यह महत्वपूर्ण है कि घराबबन्दी
 से लोगों का समायोजन बहुत भसा होता है। जिसे हम सरकारी धाय
 की हानि मानते हैं वह वास्तव में लोगों का बड़ा हित करना है। घराब
 बन्दी के मामलों का हिसाब लगाते समय हम कभी-कभी बड़े डर जाते हैं
 कि लोग गैरकानूनी घराब बनाने या बाहर से खुराकर लाने लग जायेंगे।
 किन्तु बर्षों की कुछ संस्थाओं ने जो सर्वेक्षण किया है उससे ज्ञात हुआ है
 कि घराबबन्दी की नीति से जनता का बड़ा लाभ हुआ है। जनता का यह जो
 प्रत्यक्ष लाभ हुआ है, क्या उसे हम मुझा हैं और किसी काल्पनिक प्रतिनिध
 लाभ के लिए राज्य की धाय बढ़ाने का यत्न करें? क्या यह बुद्धिमानी की
 बात होगी? राजस्व-शासन के सभी जानकार जानते हैं कि भारत जैसे
 गरीब देश में घराब से होनेवाली धाय का बोझ अधिकार में परीबों पर
 ही पड़ेगा। इस प्रकार इस मार्ग से होनेवाली धाय पाप की कमाई है जो
 देनेवाले और लेनेवाले दोनों के लिए, हानिखर और गिरानेवाली है।

कुछ लोगों का सुझाव है कि पूरी घराबबन्दी करने की प्रेरणा उस
 पर कुछ नियंत्रण लगा दिया जाय। घराब पीनेवाले परमिट से लिया करें
 और उसकी मात्रा भी बांध दी जाय। यह इत्तीक भी प्रममूलक है। इसमें
 समुच्च की स्वाभाविक कमजोरी का क्या नहीं किया गया है। पीन में
 एक मौकोमि है जिसका प्राधय है 'वहसे धायमी घराब पीता है और
 धम में घराब धायमी को पी जाती है। इसे हमें धवा बाह रलना चाहिए।
 घराब में संयम का नाम लेना ही यत्न है। इस संयम का धर्म है इस जान
 में अधिक लोगों को जीवना। यह धायकारी की धाय बढ़ाने की नीब
 तरकीब है। घराबबोरी एक बहुत बड़ी खुराई है। उससे किसी प्रकार का
 समझौता नहीं हो सकता। उसमें न धर्मशासन है, न राजनीति। नीति
 शासन तो है ही नहीं।

यह भी कहा जाता है कि धायरीका की नीति घराब-बन्दी की नीति
 भारत में भी सफल नहीं होगी और यह कि घराबबन्दी के उठते ही
 'कानूनी घराब का बनना भी धपने-धाय कम हो जायगा। यह कथन

भी वास्तविकता से दूर है। जो जोख भी कटम में अपनी 'गुड प्रोहि विथन रिटर्न' नामक पुस्तक में लिखा है कि सराबबन्दी के दिनों में किस प्रकार वहाँ के परिवारों में नई रीत का पई थी वचन बड़ गई थी जोय बीये कराने लग गये थे और दूध कम और दूध पीटिक पदार्थ अधिक खाने लग गये थे। कोहरम डिपार्टमेंट के सरकारी कामकाज बताते हैं कि संयुक्त राज्य से सराबबन्दी उठते ही सराब की आपत एकाएक बुरी तरह २३२ प्रतिशत बढ़ गई। इसके अलावा अत्यधिक मछली बराने वालों की विरफ्तारियों की संख्या पहले से दूनी हो गई। लोगों की वचन बड़ में तेजी से घटने लगी थी वरतें में फिर निराशा का संयोग छा गया। बहुत से धक बताते जा सकते हैं जो सिद्ध करते हैं कि संयुक्त राज्य संघीका में भी सराबबन्दी की नीति एक प्रकार से महान बरदान सिद्ध हुई है। उस देश में सराबबन्दी का उठना लोक-कल्याण के प्रयत्नों पर स्वार्थी तत्व की विजय का प्रकट सबूत है और फिर हम अल्पकाल मान लें कि सराबबन्दी की नीति वहाँ अत्यंत सिद्ध हुई तो इसका अर्थ यह नहीं हो सकता वह यहाँ भी अत्यंत ही गहरी। संघीका की टेम्परेट सोसायटी के एन्वीस्कुटिव सेक्रेटरी प्राध्यापक फार्मैनबन बम्बई माये थे। उन्होंने बम्बई के एक सम्वाददाता-सम्मेलन में कहा—

“भारत की जनता का अर्थ पर बड़ा विरवास है, उसकी अपनी सांस्कृतिक और आर्थिक परम्पराएं हैं। उसकी दृष्टि आदर्शवादी और अर्थवादी दोनों है। इसके अलावा बनाने बेचने, बाहर से मंगाने और उसके उपनोद के बारे में उसके विचार और दृष्टि बड़ा साफ और निश्चित रही है। अतः आज वह ऐसी स्थिति में है कि वह यदि एक राष्ट्र की हितवश से सराबबन्दी का निरन्तर कर ले तो उसके संघर्ष और निरन्तर से सराब संसार प्रभावित हो सकता है।”

परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि पूरी सराबबन्दी की नीति केवल कानून और पुलिस के बल पर सफल नहीं हो सकती। यह एक ऐसा नैतिक और सामाजिक गुण है जो लोक-विज्ञान और गैर-सरकारी सहयोग के बगैर कभी सफल नहीं होगा। इसीलिए ही गोपीजी ने अपने स्वनामक कार्य कम का उसे एक प्रथम ध्येय माना है। इसलिए सराबबन्दी

के कार्य-कर्म की स्थायी सफलता समाज-सुधारकों की अज्ञा और पुरुषार्थ पर ही अत्यंत निर्भर करेगी। सराबबन्दी की नीति निःसन्देह एक अन्धरी व्यावहारिक और महान नीति है। जो हो उसे सफल करके दिखाना हम सबका कर्तव्य है। यह संविधान का आदेश है अतः हमपर आसी मई एक जिम्मेदारी है। उसे हमें प्रसन्नतापूर्वक पूरी करनी चाहिए। यदि सराबबन्दी भारत में सफल नहीं होगी तो मानवता की आशा का सारा आधार टूट जाता है।

२९

सुरक्षा का अर्थशास्त्र

‘हम कभी किसी देश से नहीं कहेंगे कि वह सैनिक सहायता भेजकर हमारी रक्षा करे। प्रसंग आने पर हमारे पास पूरा सैनिक बल हो या न हो परन्तु हमारे पास कामद एक दूसरी चीज है—पुरुषार्थ औरता जो हमारे उससे भी अन्धरी रक्षा कर सकती है। यदि भारत अपनी इस आत्मा को ही जो बैठा है तो दूसरे की मदद से नया होना जाना है।

प्रधान-मन्त्री जवाहरलाल नेहरू के इन शब्दों में यह तत्त्व ज्ञान अत्यंत उभा है जो गांधीजी हमें और संसार को दिया करते थे। राष्ट्र का प्रतिम बल उसकी सेनाएं नहीं बल्कि उसकी आत्मा है जो समस्त आक्रमणों का मुकाबला कर सकता है। आत्मबल के मानस-शास्त्र की भाषा में कहें तो किसी भी राष्ट्र का बल उसकी जनता की हिम्मत—मरिज—में है। राष्ट्र की सुरक्षा के साधन न केवल बल बल और आसमान में मड़नेवाली सेना के रूप में झुटाने की जरूरत है बल्कि लोगों के दिलों में भी उसे निर्माण करना जरूरी है।

यह तभी संभव है जब जनता को अपने पुरुषार्थ में और अपने गैरापों की अमिच्छीसता में विश्वास होमा।

आत्मबल के राजनीतिक बलता में मय और होय फैलाते रहते हैं और अन्त में उनसे पूछते हैं कि बताइये मजबूत और मजबूत इन दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। आत्मबल की बन्तूकें भयकर मजबूती हैं। वे मनुष्य के शरीर और आत्मा दोनों को का जाती हैं। मसलब यह नहीं कि भारत को

प्रगती की ओर विमिश्रित कर देनी चाहिए। धातु के इस प्रचुर युग में राष्ट्र को कुछ तो कीर्ति रखनी ही पड़ती है। परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि धातु के इस प्रचुर-शक्ति के युग में केवल सैनिक शक्ति का होना काफी नहीं है। उस प्रचुर बल का मुकाबला करने के लिए गांधीजी के बताये 'आत्म शक्ति मनुष्य' का विकास हमें अपने धनदर करना होगा। प्रचुर बल का सच्चा जवाब तो धारम-बल में है। यह निरा मीनिशज स्वप्न नहीं है। यह तो प्राचुरिक चित्त धीर मानस-शास्त्र का सार है।

धातु हम एक नई शक्ति के द्वार पर खड़े हैं जो डेढ़ सौ वर्ष पहले धातु प्रौद्योगिक शक्ति से कहीं अधिक महान होगी। इस या पन्द्रह वर्षों में इसका इतना विकास हो जायगा कि वह संसार के समस्त उद्योगों का हाथ ही बन देगी। सोचता जबतक हमारी शक्ति का साधन रहा तबतक किसी खास प्रयोग में—जहाँ वह बहुतायत में पाया जाता था—उद्योगों का केन्द्रित होना स्वाभाविक और अनिवार्य था। परन्तु विश्वी के प्राविष्टार से उद्योगों का विकेंद्रीकरण अवश्य हो गया है। परन्तु प्राविष्टार के युग में तो उद्योगों का विकेंद्रीकरण अनिवार्य हो जायगा। विज्ञान के इस युग में केन्द्रीकरण न केवल प्राविष्टारिक है अपितु युद्ध की दृष्टि से खतरनाक भी है। इस प्राविष्टार युग में तो केवल विकेंद्रित उद्योग-पद्धति ही प्रचुर-बलों के प्रयोग से बचने की माता कर सकती है। पश्चिम में धातु केन्द्रित पद्धति के आ-बड़े-बड़े उद्योग बल रहे हैं उनके लिए धातु बनाना स्वल्प बहनता बहुत कठिन है। परन्तु भारत तो उनके समस्त वैज्ञानिक उद्योग के बड़े-बड़े कारखाने बनाने की भूमि जान-बूझकर न करे। राष्ट्र की रक्षा की दृष्टि से उद्योगों का विकेंद्रीकरण न केवल एक शक्ति अनिवार्य है। चीन में प्रौद्योगिक सहकारिता की पद्धति ने राष्ट्र की रक्षा में दूसरी रक्षा पद्धति का काम किया है। यदि यह संगठन चीन के गाँव-गाँव में नहीं फैला जाता तो चीन की जनता जापान के आक्रमणों का मुकाबला नहीं कर सकती थी। इस धीर समरीचा से मित्र-मित्र विचार प्रणालियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और दोनों एक-दूसरे से डरते हैं। धातु के विचार प्रणालियों का निजी की योग्य हानी तो संसार के अन्य राष्ट्र दोनों में से किसी-न-किसी एक को पराजित कर देंगे। परन्तु उनका मार्ग धातु का

मार्ग नहीं है और हरेक मानता है कि वह दूसरे के विरुद्ध धर्म-युद्ध कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र धमरीका भी जान से इस प्रयत्न में मगा है कि वह साम्यवाद के बढ़ते हुए कवनों को किसी तरह रोके। इसके लिए वह सोचता है और इस ओली भाषा में है कि उसकी शास्त्र-तयारी को देखकर दुश्मन सब आश्चर्य और उससे संसार में शांति का वातावरण बनेगा। परन्तु कहीं हिंसा से अहिंसा शांति और सद्भाव पैदा हो सकता है? यह कस्याना ही मजबूत और आत्मवातक है। महात्मा गांधी हमसे सदा कहा करते थे कि तलत तरीकों से कभी सही उद्देश्य नहीं प्राप्त हो सकते। हाइडोजन बम की मदद से आप किसीको अपनी आर्थिक नीति का कामकाजी नहीं कर सकते और उसका जिस नीति में पक्का विश्वास है, उसे वह कभी इस प्रकार छोड़ने पर मजबूर नहीं किया जा सकता। इस प्रकार ताकत के बल पर वैचारिक संघर्षों पर विजय नहीं पाई जा सकती। यह तो ठीकी होना अब दोनों पक्ष शांति के साथ बैठेंगे और सच्चे दिल से एक-दूसरे को समझने की कोशिश करेंगे। यदि धमरीका का यह प्रामाणिक विश्वास है कि सामग्री व्यापार और पूँजीवादी व्यवस्था से ही मानव जाति का कल्याण होगा तो वह दूसरे प्रकार के विचारवातों के गले बहुत बात उतार दे। इसी प्रकार यदि कस मानता है कि साम्यवादी धर्म रचना से ही अनुप्य-जाति सुखी और समृद्ध हो सकती है तो वह भी प्रत्यक्ष गतीने बताकर अपने दिल से सच्चा करके खुली और साफ-साफ नीति के पालन द्वारा अपनी बात को सिद्ध करके दिखा दे।

अर्हातक भारत का सम्बन्ध है, उसने सदा अपने दिल की बुला रक्खा है। वहाँ भी उसे कोई सच्ची बात बीसी है उसे ग्रहण करने का उसने प्रयत्न किया है। जैसा कि एक बार गांधीजी ने कहा था भारत में अपने मकाम की सिद्धिकियाँ बाहों तरफ से बाहर की हवा के धाने के लिए खुली रखी हैं। परन्तु वह नहीं चाहता कि किसी घाँबी में उठक्यै घाँबें घाँबी हो जायँ और वह तिनके की तरह इधर-उधर उड़ता फिरे। गांधीजी चाहते थे कि भारत फिर सहकारिता पर आधारित स्वायत्ती तथा स्वशासित छोटी छोटी ग्रामीण इकाइयों परबत् पंचायतों पर अपने स्वराज की नींव अड़ी

करे। इस प्रकार वे भारत को पूँजीवाद और साम्यवाद के भी दोषों में बचाना चाहते थे। बिजनेस प्रोफिट-व्यवस्था में व्यक्ति और समूह दोनों अपनी स्वतन्त्र बुद्धि और क्षमता की रक्षा और विकास कर सकते हैं। उद्योग स्थापना की अधिक प्रोत्साहना नहीं रहती। स्वतन्त्र व्यापार और कम के नैमित्तिक पद्धति के नियन्त्रण में जो भी सुख-दोष है उनका इयमें उचित समन्वय हो जाता है। इसकी जड़ में वा सिद्धान्त है—ग्रहिणा और मनुष्य की धारणा के प्रति आदर। गांधीजी मनुष्य को यंत्र से बहुत ऊँचा मानते थे। क्या पूँजीवादी और क्या साम्यवादी दोनों विचार प्रणालियाँ एक प्रकार से घपूरी कच्ची और घटुआ हैं। घट्टा राष्ट्र के और संसार के हित में भारत को इनमें बुरा ही रहना चाहिए। भारत में तो पूँजीवादी या साम्यवादी धर्म-रचना के स्थान पर हम भारत की प्रकृति और संस्कृति के अनुकूल एक संतुलित व्यवस्था कायम करना चाहते हैं। उसमें बहुजन सुगाय वा नहीं सर्वजन सुगाय 'सर्वोद्य' का माय हम ग्रहण करना चाहेंगे। दूसरे के परिष्कार का अनुचित नाम उठाने की प्रेरणा हम चाहेंगे कि हर मनुष्य अपने पछाने की बमर्द लाय।

इसलिए चर्चों की इस होड़ के दूरगामी परिणामों को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम उसके व्यवसाय को समझ लें। इस प्राकृतिक रीति मुँह का व्यवसाय और बारम्बार जवाब गांधीजी ॥ मित्राण्ड धर्मान् ग्रहिणा बिजनेसकरण सर्वोद्य और धाय वन हैं। इन बर्गों की जड़ें कड़ी गहरी हैं। धार्मिक और वैचारिक संघर्षों का जबतक हम नहीं हटा देंगे जबतक इन में सम्कारा वाला अन्तर्भव है। हमारा यह भी निश्चय हो चुका है कि विज्ञान के इस युग में एकाग्र व्यावहारिक धर्म ग्रहिणा वा ही रह गया है क्योंकि हिमा के साथ यदि विज्ञान भी हो जायगा तो उसका धर्म होगा मानवता का सम्पूर्ण विकास। विज्ञान के साथ यदि ग्रहिणा होगी तो संसार को मूल विन सजना है और हम अण्ड दिनों की धागा कर सकते हैं। हाइड्रोजन बम निगमने नयाव शक्ति बर्गों के लिए एक बुनोनी है। यह मानवता के प्रति पाप है। ईश्वर की मानने में इन्कार—नास्तिकता—है।

४०

सामग्री क्षेत्र

“सामंजसिक और धानगी इन दोनों क्षेत्रों में ऐसा कोई घन्तर नहीं है। वास्तव में दोनों का अर्थ है ‘जनता का क्षेत्र’ अर्थात् जनता और देश के कल्याण का क्षेत्र। यह ससार बड़ा परिवर्तनशील है। अल्प बीजों के साथ कल्याणों और विचारों में भी बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है। धान केवल धुंधी से काम नहीं बन सकता। उसके लिए बुद्धि और धन की भी जरूरत होती है, तब जाकर उत्पादन बढ़ता है। धर्म-संघर्ष तथा वर्गगत स्वार्थों की भाषा में सोचना हानिकर है। समाज के कल्याण के लिए सबकी परिश्रम करना होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

इन दिनों सामंजसिक और धानगी जगह के उद्योगों के बारे में बड़ी चर्चाएं होती रहती हैं, परन्तु यह विबाधन केवल धनात्मक है। अपितु हानि कर भी है। वह नाहुक लोगों का ध्यान दूसरी तरफ बंटता देता है और समाज में कड़बाहट पैदा कर देता है जिसमें किसीका साम नहीं है। दूसरी पंच वर्षीय योजना में साफ तौर पर कह दिया गया है कि सामंजसिक क्षेत्र के विकास-कार्यों को धानगी क्षेत्र के विकास-कार्यों के साथ-साथ ही देखा जाना चाहिए। दोनों को मिलकर काम करना है, क्योंकि वे एक ही वर्ग के दो पक्ष हैं। पूरी योजना तभी सफल होगी जब दोनों पक्ष साथ-साथ काम करेंगे और दोनों का संयुक्त काम होना होगा। धानगी क्षेत्रों के कार्यों को प्रभावित संभावित और नियमित करने की सारी शक्ति राज्य के पास है। इसलिए यह जरूरी नहीं कि वह धानगी क्षेत्र के उद्योगों का राष्ट्रीय करण कर ले या उन्हें अपने हाथों में ले ले। फिर धान हमारे आर्थिक साधन भी सीमित हैं। उनको अये-अये और लात तीर पर बुनियादी उद्योगों के पक्ष करने में लगाना नहीं अधिक लाभदायक हो सकता है। सामग्री व्यक्तियों द्वारा बनाये जानेवाले पुराने निरक्षर कारखानों को धरौटने में उन्हें उर्ध्व करना बुद्धिमानी की बात नहीं होगी। योजना में साफ कह दिया गया है कि यदि कोई प्रशासनिक स्थिति उत्पन्न हो गई तो धानन अब बाढ़े

राष्ट्र की सुरक्षा के लिए उपयोगी किसी भी उद्योग का अपने अधिकार में ले सकता है, परन्तु जो उद्योग बुनियादी या बहुत महत्व के नहीं हैं उनको अपने हाथ में लेना अनिवार्य है।

पानपी क्षेत्र के उद्योगों का एक बहुत बड़ा भाग तो छोटे छोटे उत्पादकों और कारीगरों का है या सारे देश में फैल हुए हैं। इन कारीगरों की स्वतन्त्रता और सुख-सुलभ पर कोई अकुल या शासकीय नियन्त्रण लगाया नहीं होगा। सबसे अच्छी नीति तो यह होगी कि उन्हें अपनी अपनी सहकारी औद्योगिक समितियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारें भी इसी नीति में काम ले रही हैं। इस सहकारी क्षेत्र का देश में जितना भी विकास किया जा सके करने ही जरूरत है। इसमें पानपी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के मूल हैं और समाजवादी स्वभाव की समाज-रचना की तरफ जरूरी बढ़ने में यह बहुत मदद भी कर सकता है। इस पद्धति में कारीगर स्वयं उत्पादन के साधनों के मालिक बन जाते हैं। मालिक और मजदूरों के बीच संघर्ष की सारी समस्या समाप्त हो जाती है और सहकारिता की इस पद्धति का विस्तार मध्यम वर्ग के और बड़े बड़े उद्योगों में भी क्यों न किया जाए? हमें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। बल्कि राज्य के नीतियों के कार्यक्रमों में यह प्रयोग शुरू किया गया है और बड़ा बड़ा अच्छा चल रहा है। पश्चिम के देशों में और व्यापक स्तर पर प्रयोग के कई बड़े-बड़े कार्यक्रमों को इसी पद्धति से चलाया जा रहा है। भारत जैसे सामान्य को अपने उद्योगों में इस पद्धति का कार्यान्वयन करना चाहिए, क्योंकि हम यहाँ लोकतन्त्र की पद्धति में समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

हमारा ध्येय अद्वय गुणियोजित समाज और नोब-अस्वास्थ्य है। इस पर सरकारी और गैर-गैर-राज्य क्षेत्रों में काम करनेवालों को सम्मिलित पूर्वक विचार करना चाहिए। सामान्य लोगों में काम करनेवाले उद्योग पति सासन में तत्काल व्यवस्थापिक सहमितियों की मान्यता करना है ताकि उनको अधिक गुणात्मक मिले। कुर्माय में उनकी उचित मुनाफे की परिभाषा दूसरे देशों के उद्योगपतियों की धोखा बिन्दुम मिले है। व्यवस्था का कोई भी राज्य उद्योगपतियों की मुश्किल पहुँचाकर उद्योग

पतियों को एक सीमा से अधिक मुनाफा नहीं लेने दे सकता। इससे पक्का हो कि जब भारत के उद्योगपति सुनियोजित समाज रचना में अपने मुनाफों की सीमा बांध लें। साथ ही वे यह भी निश्चास रखें कि सरकार धार्मिक विकास का प्रयत्न कर रही है। मत उसकी जगह भी यह दृष्टि नहीं कि वह जानपी क्षेत्रों को समाप्त कर दे, उन्हें निकम्मा बना दे। हमारी समझ में नहीं आता कि शासन की धार्मिक नीति के बारे में कुछ उद्योगपति इतने समझीत क्यों हैं जबकि अनेक बार यह साफ कर दिया गया है कि शासन ने राष्ट्रीय संयोजन में जानपी क्षेत्र को एक निश्चित स्थान प्रदान कर दिया है। हां इसका अर्थ यह नहीं है कि जानपी क्षेत्र राष्ट्र के हितको ध्यान में रखकर ही काम करेगा और राष्ट्र के हित में अपना हित समझेगा।

लोक-कल्याण की दृष्टि से देखें तो सार्वजनिक अर्थात् सरकारी क्षेत्र में भी बहुत सुधार की जरूरत है। जायसा बांध-नवीसन ने अपने प्रति देश में सार्वजनिक क्षेत्र के संगठन के बारे में कई महत्वपूर्ण बातें कही थीं। उनपर धन्योत्तरपूर्वक विचार होना चाहिए। पहले यह माना जाता था कि भारत के उच्च सरकारी अधिकारियों में ऐसी कोई आवश्यकता थी कि वे हर प्रकार का काम सफलता के साथ कर सकते हैं। जब ऐसी मामूली रचना शुरू है। जब तो प्रत्येक विशेष सेवा के कार्य के लिए योग्य प्राधमियों का चुनाव करके उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण देना चाहिए। इसमें जरा भी डीम-डास का मुरझाव न हो। प्रसन्नता की बात है कि शासन ने अर्थ-विभाग में काम करने के लिए सेवाओं का एक नवीन वर्ग खोलने और उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण देकर फिर शासकीय उद्योग कारखानों में काम करने के लिए भेजने का निश्चय किया है। यह बहुत पहले हो जाना चाहिए था। परन्तु खैर, जब सही। जब यह ध्यान में रखें कि इन प्रशिक्षित प्राधमियों को एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जल्दी-जल्दी न बदला जाय। प्राधमियों को इस प्रकार बार-बार बदलने से उनमें जिम्मेदारी की भावना का विकास नहीं हो पाता और वे सब लगाकर काम नहीं कर पाते जिससे कि उद्योग सफल हो।

प्रधान मंत्री ने सार्वजनिक (सरकारी) क्षेत्र और जानपी क्षेत्र

के घन्टार को मुलाकर सबको जनता का श्रेष्ठ अर्थात् जनता और देश के कल्याण को सेवा याद रखने की बात कही है। तो हमें देखना चाहिए कि इसका छाही धर्म क्या है? देश का अर्थात् देश के करोड़ों निवासियों के कल्याण का सबसे पहला धर्म निःसन्देह यह है कि उनका रहन-सहन अच्छा हो जाय। लोगों की धार्मिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संसार में जाना-पीना अर्थात् पैसों के बढ़े का भर मेला ही सबकुछ नहीं है। मनुष्य को जाना मिल गया, मकान मिल गया, कपड़े हो गये और कुछ धन्य सुविधाएं और मान सीजिये कि बिनास की चीजें भी मिल गईं तो केवल इनसे समाज में उसका जीवन ऊंचा नहीं हो सकता। राष्ट्र के लिए संयोजन करते हुए उसके निवासियों का जीवन नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी ऊंचा उठे, इस बात का भी संयोजकों को ध्यान रखना चाहिए। स्वयं प्रधान मंत्री ने कई बार कहा है कि राष्ट्र की महानता ऊंचे-ऊंचे महलों, विद्यालय, बारबारों और शक्तिशाली सेनाओं में नहीं बल्कि उसके नागरिकों—स्त्रियों और पुरुषों—की संस्कारिता में है।

जनता के कल्याण का दूसरा धर्म है उनको पूरा-पूरा काम मिलना। हर नागरिक का हक है कि उसे सरे पसीने की रोखी मिले। उद्योगों का श्रेष्ठ सरकारों हो या सामान्य देश के हर नागरिक को पूरा काम मिलना ही चाहिए। यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। परन्तु जब उद्योगों के सरकारी क्षेत्र में केवल बड़े-बड़े और महत्वपूर्ण उद्योग ही होंगे, उसमें अधिक लोगों को काम मिलने की संभावना नहीं है। इस विषय में मुख्य भार धारणी श्रेष्ठ पर ही धारणा। धार्मिक गुणों के महत्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता परन्तु भारत अथवा कोई भी देश संयोजन में अपने नागरिकों को रोखी देने के प्रयत्न की व्यवस्था नहीं कर सकता क्योंकि धार्मिक संयोजन का मूल उद्देश्य जनता की सेवा और भलाई ही तो है। यद्यपि संयोजन में योग नहीं माना जा सकता।

शासन का विकेन्द्रीकरण

स्वामीय स्वायत्त-शासन-संस्थाओं की केन्द्रीय परिषद की भीतर वाली बैठक के समुच्चय के अनुसार दूसरी पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास-योजनाओं के कार्यक्रम को पूरा करने की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों पर डाल दी गई है। इससे शासन का घोर आसतौर पर उसके विकास-कार्यक्रम का व्यापक विकेन्द्रीकरण हो जाता है। ग्राम-पंचायतों को अधिकधिक अधिकार देकर शासन-यन्त्र को विकेंद्रित करना तो संविधान के मार्ग-दर्शक सिद्धान्तों के अनुरूप ही है। उसमें यही आह्वान है कि शासन की बुनियादी इकाई ग्राम-पंचायत ही हो। सामुदायिक विकास-योजना सम्बन्ध में इसी बात पर जोर देता रहा है। वह भी चाहता है कि राज्य सरकार जो कार्यक्रम बनाती है और जनता उसमें सहयोग देती है उसके बबले अब जनता स्वयं कार्यक्रम बनावे और शासन उसमें सहयोग दे।

स्वायत्त-शासन-संस्थाओं की कार्य-विधि में भी इस प्रकार का परिवर्तन हो जाना चाहिए।

हारे संसार के प्रगतिशील विचारक अब यही मानने लग गये हैं कि प्रजातन्त्र तभी सफल होता जब उसका बहुत बड़े पैमाने पर विकेंद्रिकरण होता। लोकतन्त्र में सत्ता के धारकिक केन्द्रीकरण से नोकरशाही की उत्पत्ति बढ़ जाती है और बहुमत में राजनैतिक डिस्टेंटरशाही से जाती है। लोकतन्त्र की धारणा तो है मनुष्य के व्यक्तित्व का धारक। इसलिये लोकतन्त्र का काम है स्वामीय नेतृत्व निर्माण करके जनता का धारक-विरासत आनृत करना। ग्राम-पंचायतों, नगरपालिकाओं और ग्राम स्वामीय स्वायत्त संस्थाओं को अधिकधिक जिम्मेदारियाँ दीं जायँ और वे अपने काम-बुर करने लग जायँ तभी यह हो सकेगा। इसका मतलब यह हरमिज नहीं कि ग्राम पंचायतों और ग्राम स्वयत्त-संस्थाएँ बंटकर घलप हो जायँगी और इनका आपस में किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं होगा। इन संस्थाओं को अपने-अपने क्षेत्र में शिक्षा, धर्म और संस्कृति आदि सम्बन्धी कार्य करने की बकर

भाजारी हो, परन्तु साथ ही यह भी प्रबल हो कि तहसील और जिले के स्तर पर मिश्र-मिश्र पंचायतों के काम का सहयोग और समन्वय होता रहे। विकास-योजनाओं और उनके कार्यक्रमों को धमक करने की जिम्मेदारी यदि स्थानीय नेताओं पर छोड़ दी जाय तो इससे अवश्य ही काम अधिक और प्रबल भी होगा। जिससे ही ग्राम-पंचायतों के काम में व्यवस्था और कुछ अष्टाचार भी पाया जा सकता है। परन्तु यह कुछ ही होगी और इसे ठीक करने की जिम्मेदारी स्थानीय नेताओं पर ही होगी जो जनता के प्रति उत्तरदायी होंगे।

फिर भी एक बात है, जिसपर और करना जरूरी है। ग्राम-पंचायतों में धार्मिक और राजनैतिक सत्ता अधिक व्यापक रूप में सौंपने से पहले स्वयं ग्रामीण समाज के अन्दर आज जो धार्मिक और सामाजिक विषमताएँ हैं उनको ठीक करना होगा। आज भी उनमें जान-पाव का म-और धार्मिक असमानता बहुत है। जमीन-मालकी मुफ्तों में भी हम बड़े धीमे रहे हैं। आज भी गांव की बहुत सारी जमीन बोझ-से लोगों के हाथों में पड़ी है। जमीन का बंटवारा अधिक ग्यायपूर्वक होना जरूरी है परन्तु अनेक राज्यों में जमीन की अधिकतम सीमा अभी तक निर्दिष्ट नहीं हो पाई है। जाट-पाव और सम्प्रदाय आज भी स्वयं मोह-मग्न के मार्ग में अपने के रूप में लगे ही हैं। ऐसी हालत में धार्मिक और राजनैतिक सत्ता पंचायतों के हाथों में सौंपते समय योजनापूर्वक और कुछ सावधानी से ही काम लेना होगा। हर एक में धार्मिक और सामाजिक ग्याय की स्थिति क्या है, यह देखकर वहाँ की पंचायतों को अधिक या कम सत्ता सौंपी जाय। उदाहरणार्थ एक ग्रामवासी गांव में सारे लोग अपनी जमीन का स्वामित्व कुछ ही ग्राम समा को दे देते हैं। ऐसे गांवों को धार्मिक संयोजन में अवश्य अधिक सत्ता दे दी जाय क्योंकि वहाँ सामाजिक या धार्मिक मोह के लिए बहुत कम गुंजाइश रह जायगी। परन्तु जिन गांवों में अभी सारी अधिकार नहीं बिटाये गये हैं और सत्ता के आकार में बहुत असमानताएँ हैं वहाँ ग्राम-पंचायतों को अधिक धार्मिक या राजनैतिक सत्ता सौंपना गहरनाफ होना। जैसा कि आचार्य बिनोबा कृष्ण कहते हैं—“जहाँ सामाजिक और धार्मिक ग्याय नहीं है ऐसे गांवों में पंचायतों निर्गुण विकेन्द्रित मोह का बहुत बड़ा

साधन कम जायेंगी। इसलिए पंचायतों के दो या तीन वर्ष कर दिये जायें और जहाँ जैसी स्थिति हो उसके अनुसार उनके अधिकार और कर्तव्य भी निश्चित कर दिये जायें। इनमें ग्रामबासी गाँवों की पंचायतें निश्चय ही प्रथम श्रेणी में जायेंगी। दूसरी श्रेणी में उन गाँवों की पंचायतें होंगी जहाँ का प्राथमिक और सामाजिक वातावरण काफी स्वस्थ और व्यापक होवा और जहाँ के जनता सर्व-सम्मत या लगभग सर्व-सम्मत हों। किन्तु जिन गाँवों में राग-द्वेष भरा पड़ा है या एतद्दिन सझाई-झगड़े होते रहते हैं जहाँ प्राथमिक और सामाजिक न्याय भी परवाही नहीं है, उनकी पंचायतें तीसरी श्रेणी में जायेंगी। पहली श्रेणी की पंचायतों को उनके क्षेत्र की जनता के सगान का पचास प्रतिशत भी सौदाया जा सकता है। सगान की उबाही पर उन्हें बाधा मिहलवाना भी दिया जा सकता है। अपने क्षेत्र की प्राथमिक विकास-सम्बन्धी योजनाएं बनाने और उनको कार्यान्वित करने का काम भी उन्हींको सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी श्रेणी की पंचायतों को भी उनकी शक्ति और योग्यता के अनुसार काम सौंपा जा सकता है। इस तरह पंचायतों का वर्गीकरण करके तदनुसार उन्हें उपाय और अधिकार दे देने से काफी विकेंद्रीकरण हो जायगा और वह व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक भी होगा। इससे पंचायतों के अन्दर अपने-अपने क्षेत्र की प्राथमिक और सामाजिक स्थिति सुधारने के बारे में स्वस्थ होई भी होने लगेगी। ग्राम की सासन-पद्धति में क्षेत्रगत प्राधिकार और प्रसिद्ध स्पर्धा पैदा होती है। कई विकेंद्रित पद्धति में कुछ सामाजिक और सहकारी जीवन का विकास होगा।

गांधीजी हमसे हमेशा कहा करते कि लोकतन्त्र का विकास अहिंसा और सहकारिता के वातावरण में ही हो सकता है। भारतीय संविधान भी लोकतन्त्र और शान्तिपूर्ण मार्ग पर चलने के लिए प्रतिज्ञा रखे है और सभी अहिंसा का निवास विकेंद्रित प्राथमिक तथा राजनैतिक संगठन में ही रह सकता है। इसीलिए गांधीजी ग्राम-पंचायतों और सहकारी संस्थाओं के संगठन पर बहुत जोर देते थे। यदि हम भारत को अत्यधिक विकेंद्रित संसाधनात्मक लोकतन्त्र अथवा एकाधिकार-वाला (टोटेलिटेरियन) राज्य नहीं बल्कि अहिंसा पर आधारित एक राज्य बनाना चाहते हैं तो हमें बहुत योजना

और व्यवस्था के साथ राजनीतिक और धार्मिक सत्ता को विकेंद्रित करना होगा।

४२

सामुदायिक विकास और जनता

सामुदायिक विकास-योजनाओं पर विचार करने के लिए एक परिषद गार्ह में हुई थी। उसके लिए भेजे गये अपने समुदाय में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने लिखा था—“सामुदायिक विकास की यह हस्तक्षेप अब सेमी से लोगों के हाथों में बनी जानी चाहिए। सरकारी मदद और सहयोग भी आवश्यक है। यह निश्चित रहेगा, परन्तु अब इसे उत्तरोत्तर जनता की प्रभुता बन जाना चाहिए। इसको सरकार द्वारा ऊपर से नहीं बसाया जाना चाहिए।” प्रधानमंत्री ने यह भी कहा कि हमारे राजनीतिक धार्मिक और सांस्कृतिक विकास का आधार प्रत्येक गाँव में वाट्याला पंचायत और सहकारी समिति हो। स्वायत्तम्भी सहकार की मदद से ही हम आगे बढ़ सकेंगे। मेरा विश्वास है नवीन भारत के निर्माण में शासन को अभी बहुत अधिक काम करना है परन्तु मुझे विश्वास है इसमें असली उत्साह-शक्ति सरकार की नहीं, जनता की अपनी ही होगी।

योजना-मावूम के उत्पत्तीय उपसमापति थी बी० टी० बल्लभाचारि ने भी इस बात पर जोर दिया कि सामुदायिक विकास की सारी योजनाओं में गाँव की सभी संस्थाओं को भाग लेना चाहिए। अपने प्रारम्भिक भाषण में उन्होंने ग्राम-पंचायतों और सहकारी समितियों के द्वारा सिंचाई के वर्तमान साधनों का पुरा-पुरा उपयोग बिना प्रकार किया जाय इसपर विस्तार में कहा था। उन्होंने बताया कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में सिंचाई को केवल बड़ी योजनाओं में किसानों को अपने मन में से १ ६०००० मीत भी नहीं सोझनी होगी। फिर इन सहकों को हर वर्ष अच्छे हानप्र में रखने के लिए और उनके समुद्र से नहीं पानी केकार न यह जाय इसके लिए समय समय पर उनकी मरम्मत भी करते रहना पड़ेगा। फिर धन्य हो पैदावार बढ़ाने के लिए अच्छे बीज लाने होंगे तथा नमोस् और हरी पार बनानी होगी। यह साथ कार्यक्रम पंचायतों और सहकारी समितियों की मदद से

साधन बन जायेंगी। इसलिये पंचायतों के दो या तीन वर्ष कर दिये जायें और जहाँ जैसी स्थिति हो उसके अनुसार उनके अधिकार और कर्तव्य भी निर्दिष्ट कर दिये जायें। इसमें ग्रामवानी गांवों की पंचायतें निश्चय ही प्रथम श्रेणी में आयेंगी। दूसरी श्रेणी में उन गांवों की पंचायतें होंगी जहाँ का प्राथिक और सामाजिक वातावरण काफी स्वस्थ और स्वायत्त होया और जहाँ के जुगाह सर्व-सम्मत या लगभग सर्व-सम्मत होंगे। किन्तु जिन गांवों में राग-द्वेष मरा पड़ा है, पाएबिल नकाई भगाई होते रहते हैं, जहाँ प्राथिक और सामाजिक स्वायत्त की परवा ही नहीं है, उनकी पंचायतें तीसरी श्रेणी में आयेंगी। पहली श्रेणी की पंचायतों को उनके क्षेत्र की जमीन के लगान का पचास प्रतिशत भी भीटाया जा सकता है। लगान की उगाही पर उन्हें बासा मिहिनताना भी दिया जा सकता है। अपने क्षेत्र की प्राथिक विकास-सम्बन्धी योजनाएं बनाने और उनको कार्यान्वित करने का काम भी उन्हें ही सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी श्रेणी की पंचायतों को भी उनकी क्षिति और योग्यता के अनुसार काम सौंपा जा सकता है। इस तरह पंचायतों का वर्गीकरण करके तदनुसार उन्हें सत्ता और अधिकार दे देने से काफी विकेन्द्रीकरण हो जायगा और यह व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक भी होगा। इससे पंचायतों के अन्दर अपने-अपने क्षेत्र की प्राथिक और सामाजिक स्थिति सुधारने के बारे में स्वस्थ होड़ भी होने लगेगी। आज की सासन-प्रणति में क्षेत्रगत धाँकड़ और अनिष्ट स्वर्ण पैदा होती है। नई विकेंद्रित प्रणति में कुछ सामाजिक और सहकारी जीवन का विकास होगा।

गांधीजी हमसे हमेशा कहा करते कि लोकतन्त्र का विकास अहिंसा और सहकारिता के वातावरण में ही हो सकता है। भारतीय संविधान भी लोकतन्त्र और शान्तिपूर्ण मार्ग पर चलने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र है और सच्ची अहिंसा का विकास विकेंद्रित प्राथिक तथा राजनैतिक संगठन में ही रह सकता है। इसीलिए गांधीजी ग्राम-पंचायतों और सहकारी संस्थाओं के संगठन पर इतना जोर देते थे। यदि हम भारत को धर्मव्यधिक केन्द्रित सत्तावाता लोकतन्त्र घमना एकाधिकार-वाता (टोटेमिटेरियन) राज्य नहीं बल्कि अहिंसा पर आधारित एक राज्य बनाना चाहते हैं तो हमें बहुत योजना

और व्यवस्था के साथ राजनीतिक और आर्थिक सत्ता को विकेंद्रित कर दिया गया।

४२

सामुदायिक विकास और जनता

सामुदायिक विकास-योजनाओं पर विचार करने के लिए एक परिपक्व माहौल में हुई थी। उसके लिए भेजे गये अपने सन्देश में प्रधान मन्त्री नेहरू ने लिखा था— 'सामुदायिक विकास की यह हमसफर या तेजी से लोगों के हाथों में पानी जानी चाहिए। सरकारी मदद और सहयोग भी आवश्यक है। वह मिसला रहेगा परन्तु सब इसे उत्तरोत्तर जनता के प्रवृत्ति बन जाना चाहिए। इसको सरकार द्वारा ऊपर से नहीं बनाया जाना चाहिए।' प्रधानमन्त्री ने यह भी कहा कि हमारे राजनैतिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का आधार प्रत्येक गांव में पाठशाला पंचायत और सहकारी समिति हो। स्वावलम्बी सहकार की मदद से ही हम आगे बढ़ सकते हैं। मेरा विश्वास है नवीन भारत के निर्माण में शासन को अभी बहुत अधिक काम करना है परन्तु मुझे विश्वास है इसमें प्रसूती उत्साह-यानि सरकार की नहीं जनता की अपनी ही होगा।

माजना-आयोग के तत्कालीन उपसभापति श्री बी० टी० कप्पमाचार ने भी इस बात पर जोर दिया कि सामुदायिक विकास की सारी योजनाओं में गांव की सभी संस्थाओं को भाग लेना चाहिए। अपने प्रारम्भिक भाषण उन्होंने ग्राम-पंचायतों और सहकारी समितियों के द्वारा सिंचाई के वर्तमान साधनों का पूरा-पूरा उपयोग किस प्रकार किया जाय इसपर विस्तार बताया। उन्होंने बताया कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में सिंचाई की केवल बड़ी योजनाओं में किसानों को अपने क्षेत्रों में से १६०००० बीस की गहलोचना होगी। फिर इन गहरों को हर वर्ष अच्छी हासत में रखने के लिए और उनके अन्दर से कहीं पानी बहार न बह जाय इसके लिए समय पर उनकी मरम्मत भी करते रहना पड़ेगा। फिर ग्राम की पैदाश बढ़ाने के लिए अच्छे बीज लाने होंगे तथा कम्पोस्ट और हरी खाद बनानी होगी। यह सारा कार्यक्रम पंचायतों और सहकारी समितियों की मदद

ही हो सकता है। श्री इन्धुमाचारी ने कहा कि इसलिए धानेबासे बो-तीन वर्षों में सबसे पहले गांवों में यही काम—इन संस्थाओं की स्थापना का—करना होगा। अन्त में उन्होंने कहा कि इस काम की सफलता का हिसाब मानव-सूक्तों पर से लगाया जायगा इस प्रकार कि स्त्री-पुरुष अपने हस्तियों और जिम्मेदारियों को कितना समझने और उन्हें पूरा करने लगे हैं क्योंकि व्यक्ति-और सामूहिक रूप से भी इसी प्रकार तो मनुष्य का और समाज का भी पूरा-पूरा विकास हो सकेगा और इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक और नैतिक एकता की भावना भी पैदा हो सकेगी जोकि राष्ट्रीय एकता का एकमात्र आधार है।

घाट की परिपद में श्री बसवंतराव मेहता कमेटी की लोकतन्त्र के केन्द्रीकरण-सम्बन्धी सिफारिशों पर बड़े विस्तार से विचार किया गया और उसने महसूस किया कि सारे राज्यों की सरकारों को उनपर बत्ती-से जल्दी धमल करना चाहिए। वेष्ट के सारे गांवों में पंचायतों की स्थापना जल्दी-से-जल्दी हो जानी चाहिए। परिपद ने यह भी महसूस किया कि समुदायिक विकास योजनाओं का कार्यक्रम तबतक पूरा नहीं हो सकेगा जब तक इस काम के लिए स्थानीय नेता लगे नहीं होंगे और यह सभी सम्भव होगा जब ग्राम-पंचायतों को काफ़ी अधिकार दे दिये जायेंगे। सबकी राय इ रही कि तबतक यह सब नहीं हो जाय तबतक विकास-खण्डों की सहकार-समिति का समापति गैर-सरकारी ब्यक्ति रहे।

परिपद ने इस बात पर भी जोर दिया कि सामुदायिक विकास-योजना और ग्रामदान-आन्दोलन के कार्यों का सम्मिश्रित किया जाना बहुत आवश्यक है। यह स्वीकार किया गया कि ग्रामदान द्वारा सामाजिक जीवन की वृद्धि देने में बड़ी मदद मिलेगी, क्योंकि सहकारिता और एक-दूसरे की मदद। उसमें है ही। सरकार स्वयं भी ग्रामदान या भूमिदान में जमीनों दे सकती परन्तु सरकारी कामकाजों से बाग-यार्डों की जाँच में जमीनों की सीमाएँ गाने में जटिल करने और जमीनों के बाँटने में राज्य के सम्मिश्रित अधिकारी व्यवस्था व्यवह कर सकते हैं। यह भी निश्चय किया गया कि सामुदायिक विकास-खण्डों के काम के प्रतिष्ठान में ग्रामदान-आन्दोलन के अध्ययन को भी शामिल कर लिया जाय और ग्रामदानी गांवों के कार्य के

लिए खास धातमी को तैयार करने का यत्न किया जाय। ग्रामदाम-ग्रामो सत्ता भी धपमी तरह से हम गांवों में सामुदायिक विकास-योजना के विविध कार्यों को अपने ग्राम-राज्य-कार्यक्रम में शामिल कर लेया।

धुक्में सामुदायिक विकास के काम का प्रारम्भ तो सरकार ने किया और उसमें जनता का सहयोग योग्य धर्मात् कार्य कम सरकार का और जनता का सहयोग ऐसी बात थी। जब ऐसा समय आ गया है कि यह कार्य कम जनताका हो काम और सरकार उसमें मदद कर दिया करे। सोच जब स्वयं धपमी मदद करने लग जायेंगे तब सरकार भी उन्हें बकर मदद होगी। यदि यह ग्रामोसत्ता वास्तव में जनता के हाथों में नहीं जाता जाता है और निरु एक सरकारी कार्यक्रम ही रह जाता है तो निश्चय ही इससे भारत के लोकतंत्र को खतरा हो सकता है। इससे गौकरग्राही बलवान बन जायेंगी और सोच साधार बनकर उसके पहिए के साथ बंधकर उसके पीछे-पीछे घिस डटे जायेंगे। समस्त संसार में पहला देश भारत है जिसने लोकतंत्र के धम्बर यह संयोजन का प्रयोग पहले-पहल अपने दिल से अपने हाथों में लिया है। यह प्रयोग सभी सफल हुआ जब सहरों और गांवों की स्वायत्त शासन संस्था में सामुदायिक विकास के कार्यक्रम को अपने-अपने क्षेत्र में उठा लेंगी। लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण का यह कार्य नियमोपनियम धपवा कानून बना देने से भी नहीं बनेगा। यह सभी सफल होया जब स्वयं राज्य सरकारें और राज्य के अधिकारी भी साकर्ण के तरीकों से समाज के विकास के इस महान कार्य को सही वृत्ति से हाथ में लेंगे और उसे लगा तार धागे बढ़ावेंगे। निश्चयेह इस विकेन्द्रीकरण में देरी लगेगी। मोर्कों के हाथों में सत्ता कमजोर और एक खास विधि से डीपी जा सकेगी परन्तु जिस दिशा में हमें जाना है, उसके विषय में रती भर भी भ्रम या सन्देह न रहे।

भापीत्री बार-बार यही कहती थे कि जब ग्राम-संघायलें पुन प्राबलान बन जायेंगी और जनता की सामाजिक ध्यायिक और नैतिक मर्यादा के काम करने लगेगी तब सत्ता स्वराज आयगा। स्वयं भारतीय संविधान के मार्ग दर्शक सिद्धान्तों में लिखा है कि स्वराज्य की बुनियादी इकाई ग्राम-संघायलें ही होंगी। यह राज्य-सरकारों का कर्तव्य है कि इसका परिपालन के सक्थ

ही हो सकता है। श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि इसलिये मानेवाले दो-तीन वर्षों में सबसे पहले गांवों में यही काम—इन संस्थाओं की स्थापना का—करना होगा। अन्त में उन्होंने कहा कि इस काम की सफलता का हिसाब मानव-सूक्ष्मों पर है सवाया जायगा इस प्रकार कि स्त्री-मुख्य अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को कितना समझने और उन्हें पूरा करने लगे हैं क्योंकि व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से भी इसी प्रकार की मनुष्य का और समाज का भी पूरा-पूरा विकास हो सकेगा और इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक और नैतिक एकता की भावना भी पैदा हो सकेगी जोकि राष्ट्रीय एकता का एकमात्र आधार है।

घाबू की परिषद में श्री बलवंतराय मेहता कमेटी की लोकतन्त्र के विकेन्द्रीकरण-सम्बन्धी सिफारिशों पर बड़े विस्तार से विचार किया गया और उसने महसूस किया कि सारे राज्यों की सरकारों को ठगपर बस्ती-से बस्ती प्रमत्त करना चाहिए। बैठ के सारे वर्षों में पंचायतों की स्थापना बस्ती-मे-बस्ती हो जानी चाहिए। परिषद ने यह भी महसूस किया कि सामुदायिक विकास योजनाओं का कार्यक्रम तबतक पूरा नहीं हो सकेगा जब तक इस काम के लिए स्थानीय नेता बड़े नहीं होंगे और यह तभी सम्भव होगा जब ग्राम-पंचायतों को काफ़ी अधिकार दे दिये जायेंगे। सबकी राय यह रही कि जबतक यह सब नहीं हो जाता तबतक विकास-सङ्घों की समाह्वार-समिति का समापति गैर-सरकारी व्यक्ति रहे।

परिषद ने इस बात पर भी जोर दिया कि सामुदायिक विकास-योजना और ग्रामदान-ग्रामोत्थान के कार्यों का सम्बन्ध किया जाना बहुत आवश्यक है। यह स्वीकार किया गया कि ग्रामदान द्वारा सामाजिक जीवन की दृष्टि बढ़ाने में बड़ी मदद मिलेगी क्योंकि सहकारिता और एक-दूसरे की मदद तो उसमें है ही। सरकार स्वयं भी ग्रामदान या भूमिदान में जमीनें दे सकती है परन्तु सरकारी कागजातों से ग्राम-पत्रों की जाँच में जमीनों की सीमाएँ लगाने में जकड़ती करने और जमीनों के बाँटने में राज्य के सम्बन्धित अधिकारी अवश्य मदद कर सकते हैं। यह भी निश्चय किया गया कि सामुदायिक विकास-सङ्घों के कार्य के प्रशिक्षण में ग्रामदान-ग्रामोत्थान के अध्ययन को भी शामिल कर लिया जाय और ग्रामवासी गांवों के कार्य के

संसार के लिए असत्य महत्वपूर्ण है। इसलिए यदि वह प्रयोग सफल रहा और हमें निश्चय है कि यह सफल होगा तो हमारा यह अनुभव अनेक देशों के लिए और कम विकसित देशों के लिए चास तीर पर बढ़ा मार्गदर्शक होगा।

संयोजन का मुख्य चक्षुष्य और सार यह है कि देश के जन जन और अन्य साधनों का पूरा-पूरा उपयोग कर लिया जाय जिससे इनमें से कोई भी बच भी बेकार न जाने पावे। स्वतंत्र व्यापार और प्रतिस्पर्धा की पद्धति में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अज्ञान बरीबी और अन्य प्रसुविधा का अनुचित लाभ उठाकर उसका शोषण करना चाहता है, जिसके कारण मनुष्य की शक्ति और साधनों का भी बहुत अपव्यय होता है। कहने मात्र को वह कुत्ता बाजार और स्वतंत्र व्यापार कहा जाता है लेकिन उसमें बेहद प्रतिस्पर्धी होती है और वह होती है इस सिद्धान्त पर कि जो सबसे अधिक बोल्य होया वह बिबेया। इसलिये अब पूँजीवादी देशों में भी यह स्वीकार किया जाने लगा है कि स्वतंत्र व्यापारवाला यह सिद्धान्त पुराना और निकम्मा है। वे मानते हैं कि उसके स्थान पर अब राज्य का सारे व्यापार व्यवसायों पर अपना नियन्त्रण रखना चाहिए और सारे काम योजना पूर्वक किये जाने चाहिए। यदि हम यह मान लेते हैं कि लोकतंत्र में संयोजन संभव नहीं है तो उसका अर्थ यह है कि उसके संविधान में राष्ट्र की संपत्ति के व्यवस्थित उपयोग की अनुमति ही नहीं है। यह तो विस्तृत घटपटी बात है। अब तो यह है सच्चा संयोजन अर्थात् व्यक्ति और समाज के हितों का समन्वय तो लोकतंत्र में ही संभव है। मेरा तो बूढ़ मत है कि भारत में लोकतंत्री व्यवस्था में संयोजन का हम जो यह प्रयोग कर रहे हैं यह सारे संसार के सामने एक ऐसा आदर्श उपस्थित करेगा जिसका बहुत-से राष्ट्र अनुकरण करके लाभ उठावेंगे। धातुमिक संसार में संयोजन का अर्थ है जनता का अधिक-से-अधिक और प्रसन्नतापूर्वक दिया हुआ सहयोग और यह तो लोकतंत्र में ही संभव है। एकाधिकारवाले राज्यों में जिस प्रकार का धातुमिक संयोजन किया जाता है वह तो वास्तव में धातुमिक और फौजी बेगार होती है।

परन्तु एक बात साफ तीर पर समझ ली जाय। लोकतंत्र में संयोजन का मतलब होता है धातुमिक और राजनीतिक सत्ता का बड़े पैमाने पर

बिडेन्ट्रीकरण और वितरण। इसी प्रकार यदि संयोजन में पूरी तरह से सञ्चय न रहे तो लोकतन्त्र में भी सत्ता का प्राथमिक केन्द्रीकरण बहालक कि चौकी कड़ाई तक आ सकती है। इसलिए यह ठीक ही है कि भारत में सामुदायिक विकास-योजना पंचायत सहकारिता तथा विद्याभन नैती लोकतन्त्रीय ज्ञान-संस्थाओं के ठोस आधार पर बनाई जा रही है। प्रारम्भ में सामुदायिक विकास-योजनाओं को सरकारी योजनाएं बताया गया था और लोगों से कहा गया था कि वे उनमें सहयोग दें। परन्तु अब इतने वर्षों के अनुभव के बाद केन्द्र और राज्यों की सरकारों ने यह निश्चित किया है कि ये योजनाएं वास्तव में जनता की अपनी हों और सरकार का वे सहयोग न हों। यह केवल सचों का प्रश्न नहीं है, इसमें तो सारी दृष्टि और काम करने की पद्धति ही बदल जाती है। लोकतन्त्री संयोजन का सारा रहस्य यह है कि स्वयं लोगों की सक्रियता का विकास हो उनमें मूल-मूल धारों और वे अपनी बुद्धि से सारे काम अच्छी तरह करके राष्ट्र की संपत्ति को बढ़ावें। यदि संयोजन में यह नहीं होता है तो वह सच्चा लोक-तन्त्री संयोजन ही नहीं है। बांधीजी सदा कहा करते थे कि सही सामनों से ही अच्छे काम हो सकते हैं। वहां बनाई कमिटी भी सत्ता के केन्द्रीकरण और हिंसा से काम लिया जाता है वहां लोकतन्त्र ही नहीं। वहां ऐसी प्राप्ति और राजनैतिक सत्ता सही हो जायगी जो लोकतन्त्र की विरोधी होगी। प्राप्तापक कोस ने लिखा है कि लोकतन्त्र और केन्द्रीकरण परस्पर विरोधी चीजें हैं क्योंकि वही वही भी समाज अपनी इच्छा प्रकट करना चाहता है उसे इसका अवसर उत्पन्न और पूरा-पूरा मिलना ही चाहिए। यदि उसे एक प्रवाह-विरोध में ही बसने या बहने के लिए मजबूर किया जायगा तो वह अपनी महज स्फूर्ति और उत्साह को देगा। पश्चिम के घने जंगलों में कहने को लोकतन्त्र है परन्तु सत्ता के प्राथमिक केन्द्रीकरण के कारण वहां उसमें घने जंगल पैदा हो गये हैं। इसलिए प्राप्तापक ऐश्वर्य ने अपनी पुस्तक 'दि गॉडन स्टेट' में राजकर्म की लोकतन्त्री दृष्टियों का विस्मय-परीक्षण करने के बाद धर्म में लिखा है कि हमें बुद्धि की जड़ में पहुँचना चाहिए और साहसपूर्वक सत्ता का बिडेन्ट्रीकरण और वितरण करना चाहिए। प्राप्तापक लारकी भी यही सलाह देते हुए कहते हैं कि निरे

ग्रामोपासन से सूचन-सहित मर जाती है। जहाँ राज्य में सत्ता पार्षदिक केन्द्रित होती है, वहाँ ग्रामोपासन मनुष्य को मग्न बढ़ धीर निष्ठावान बना देता है। इसीलिए अमरीका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री मेरियम ममफोर्ड ने देहात में छोटे-छोटे संतुलित समाजों के निर्माण पर जोर दिया है। ये समाज नीकरशाही ब्रुति को पैदा ही नहीं होने देंगे और लोकतन्त्र की स्वस्थ पद्धति की नींव बन जायेंगे।

यदि हम भारतीय लोकतन्त्र का अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि इस देश में पंचायत-ग्राम प्रजातन्त्र काल से जमी धाई है। ठेठ वैदिक काल में भी शासन की बुनियादी इकाई गांव माना जाता था। उपनिषदों में जातकों में और स्मृतियों में ग्राम-समाजों का उल्लेख मिलता है। सर चार्ल्स मैट काफ ने इन पंचायतों को छोटे-छोटे गणराज्य कहा है और लिखा है कि वे एकदम स्वतन्त्र थे किसी बाहरी शक्ति के अधीन नहीं थे। अंग्रेजों के राज्य में इनपर बड़ा कठोर प्रहार हुआ परन्तु सब के फिर अपने पुराने स्थान को प्राप्त करने आ रही हैं। भारतीय संविधान में पंचायतों को शासन की बुनियादी इकाई माना गया है। अतः इनको बितने स्वतन्त्र और स्वस्थ वातावरण में अपना विकास करने का अवसर दिया जायगा हमारा पार्षदिक संयोजन उतना ही सफल होगा। पंचायतों को धीरे-धीरे कारी समितियों को संयोजन का आधार बनाने के बदले यदि हम केवल सरकारी नौकरों और अधिकारियों से ही यह काम लेंगे तो इनकी एक विघात फौज बढ़ी हो जायगी जो बहुत दुरी थीव होगी और काम कुछ नहीं होगा। नि सन्नेह सरकारी नौकर भी एक हद तक तो मानसिक है ही परन्तु इनकी संख्या अधिक बढ़ाना और उन्हींके भरोसे रहना लोकतन्त्र का नहीं एकाधिकार का मार्ग है।

इसलिए हमें भारत में स्वतन्त्र व्यापार और फौजी कड़ाई इन दोनों पद्धतियों से एकदम बचना है। हमें अपने देश का संयोजन इस प्रकार करना है कि जिससे व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के विकास और प्रगति में सहायक हों। इस व्यवस्था में दो क्षेत्र होंगे एक सरकारी और दूसरा निजी। परन्तु दोनों इस प्रकार सहयोग के साथ काम करेंगे कि दोनों मिलकर सही अर्थ में लोकहित के क्षेत्र बन जायेंगे। हमने भारतीय

लोकतन्त्र को सोशलिस्ट कोऑरेटिव कॉमनवेल्थ कहा है। लोकतन्त्र में समाजवाद सभी सब सचता है जब जीवन के सभी तत्वों में सहकारिता के तत्वों से काम लिया जाय। धार्धार्य बिनोबा भावे का सामान्य आन्दोलन बताता है कि धार्मीय तत्वों में किस प्रकार सहकारिता के धारण पर प्रमत्त किया जा सकता है। हमें धारणा है कि इस मिडान को धीरे धीरे धार्मीयिक क्षेत्रों में भी लागू किया जा सकता है। कोई कारण नहीं दियाई बता कि हमारे बड़े-स-बड़ कारखाने भी सहकारिता के धारण पर क्यों न बसाये जायें। धार के संसार में समाजवाद धीरे लोकतन्त्र एक-दूसरे से मिलते हैं परन्तु बात ऐसी नहीं है। निकेन्टि सहकारिता की प्रवृत्ति से यदि हम काम लें तो दोनों एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं धीरे धीरे परस्पर को मजबूत बना सकते हैं।

भारत एक साम्यवादी राष्ट्र है। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार हमारी परम्पराओं धीरे कार्य-प्रवृत्ति का विकास करने के बजाय यदि हम दूसरे देशों के प्रयोगों की नकल करने लगे तो वह हमारे लिए घातक होगा। मुझे विश्वास है कि लोकतन्त्र में धार्मिक संयोजन का हमारा यह प्रयोग धारण सचन होगा धीरे वह दूसरे राष्ट्रों को बता देता कि संयोजन न केवल लोक तन्त्र से सुसंगत है अपितु उसका धारण्यक भाग है।

२

संयोजन का ध्येय

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कहा करते थे कि केवल स्वतन्त्र ही जान से हमारी सारी समस्याएँ नहीं सुलझ जायेंगी। उसने तो हमारे धार्मिक धीरे सामाजिक विकास के धर्म की केवल कुछ सकारण ही दूर करने में हमें मदद मिलेगी परन्तु इन बाधाओं को भी पूरी तरह से दूर करने के लिए हमें व्यवस्थित रूप से धीरे प्रवृत्तिपूर्वक धारण करना होगा। इसीलिए तो स्वराज्य-प्राप्ति के बहुत पहले से गांधीजी रणनीतिक धर्म की धृति पर धारणा धीरे देते रहते थे। स्वराज्य धारण-धारण में कोई सत्य नहीं था। हमारा धारणसी सत्य तो था धारण करोड़ों देश-भाषियों का सर्वोपेय विकास धीरे प्रवृत्ति। भारत के संविधान में यही बात ध्याय स्वतन्त्रता समाजता

और बन्धुता पर आधारित लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना' इन धर्मों में कही गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खेती और उद्योगों की उपज बढ़ाना तथा बेकारी को मिटाना जरूरी है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद तुरन्त भारत सरकार ने देश के सामाजिक आर्थिक और औद्योगिक विकास के लिए एक राष्ट्रीय योजना बनाने का निर्दिष्ट किया। तदनुसार सन् १९४० में योजना-आयोग की स्थापना हुई और सन् १९४१ से हमारी पहली पंचवर्षीय योजना शुरू भी हो गई। सन् १९४६ में यह समाप्त हुई और उसके बाद दूसरी पंचवर्षीय योजना शुरू हो गई और अब तीसरी योजना की तैयारी है।

भारत जैसे कम विकसित देश को जिन समस्याओं का मुकाबला करना पड़ता है उनमें से कुछ ये हैं—

१. खेती और उद्योगों की उपज बढ़ाना।
२. अधिक-से-अधिक लोगों को रोजी देना।
३. सामाजिक और आर्थिक विषमताएं कम करना।
४. विकास के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध करना।

भारत कवि प्रधान देश है और राष्ट्र की धान का सगमय धाना भाग खेती से प्राप्त होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास की किसी भी योजना में खेती का हिस्सा प्रमुख होगा। पहली पंचवर्षीय योजना में खेती की उपज बढ़ाने पर बहुत जोर दिया गया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी भारी उद्योगों के साथ-साथ खेती की उपज बढ़ाने पर जोर दिया गया। परन्तु बीच में कुछ वर्ष खराब गये। इस कारण हमें सफलता नहीं मिल सकी। इसलिए अब यह जरूरी समझा गया कि खेती की उपज बढ़ाने के कुछ ऐसे उपाय किये जायें जिनसे हमें केवल वर्षों पर निर्भर न रहना पड़े, भले ही इसके लिए हमें लगातार कई वर्षों तक प्रयत्न करना पड़े। परन्तु वह स्मरण रखना जरूरी है कि खेती की उपज इस प्रकार स्थायी रूप से बढ़ाने के लिए जनता को स्वयं पूरा-पूरा मत्न करना होता है। कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही कुशल और कार्यक्षम हो राष्ट्र के साधनों का स्वयं इस प्रकार उपयोग नहीं कर सकती। इसीलिए तो सामुदायिक ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों और सहकारी समितियों की स्थापना

पर विकास-योजनाओं में इतना ध्यान दिया गया है। इन संस्थाओं को राष्ट्रीय संयोजन में अपनी पूरी-पूरी शक्ति सगा देनी होगी। पशु-पामन और गृहोद्योग ये दो और ऐसे काम हैं जिनका राज्य के निर्माण में बहुत महत्व है। पंचायतों और सहकारी समितियों को इनका भी ध्यान रखना होगा।

प्रधानमन्त्री इन दिनों सहकारी पद्धति की खेती पर बहुत जोर देते हैं। इनकी राय यह है कि छोटे-छोटे खेतों की खेती बढ़नी पड़ती है। उनके बड़े-बड़े बक बना सिये जाय और उनपर सहकारी पद्धति में खेती हो। इन पद्धति में किसानों का अपने खेतों पर हक बना रहेगा और सारे बक की जो उपज होगी उसमें से उनही जमीन की अनुपात में उनको उपज का हिस्सा मिल जाय करेगा। इसके बजाय जो सम्मिलित खेती में काम करते उन्हें उनके काम के अनुसार मजदूरी मिल जायगी चाहे उनकी जमीन हो या न हो। प्रधानमंत्री यह भी चाहते हैं कि इस प्रकार की सहकारी खेती करने से पहले लोगों में सहकारी भावना का निर्माण करने के लिए सारे देश में ग्राम्य अनेक प्रकार की सेवा सहकारी समितियाँ स्थापित हो जामी चाहिए। ये समितियाँ पाँच के सारे काम करें—बीज दें, कार लायें, छोटी-छोटी सिंचाई योजनाएँ बनायें और उन्हें बतायें खेती में मुबरे हुए तरीकों से काम करें किसानों को कर्ज देने का प्रयत्न करें और उनकी कसलों के बेचने का भी प्रयत्न करें।

औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए भी पहली तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकार ने काफी यत्न किया है। सारे देश में भारी उद्योगों में सेकर छोटे-छोटे और गृहोद्योगों के विकास की तरफ भी उसने पूरा ध्यान दिया है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में उसने मोहा इस्पात विजली कोयला परिवहन संचार, यन्त्र-निर्माण तथा रासायनिक चीजों के निर्माण-मन्वन्धी बड़े उद्योगों के विकास पर बास ठोर पर अधिक ध्यान दिया है।

इसमें उद्देश्य यह रहा है कि हमारे विकास का कार्यक्रम बहुत सच्चा होय। उसके लिए अनेक छोटे-बड़े उद्योग शुरू करने होंगे जिनके लिए धन की जरूरत होगी। यह सब धन हमें अपने देश में ही बना लेने चाहिए। मोहा इस्पात-विजली और यन्त्रों के इन बड़े कारखानों की हमें इच्छा बहुत

देश में इसे संचित सीमा तक क्यों नहीं सामें ? यह केवल र्वत्र की तरह काम करने से नहीं होगा । इसके लिए कर-अभावों का उपयोग करना होगा । आय कर की ऊँची दरें, संपत्ति और व्यय का कर, गैट (गिफ्ट) कर और ऊँची आयवासी आयदायों पर आयदाय-कर लगाने से इन विषयताओं को कम करने में काफी मदद मिली है ।

परन्तु केवल करों से भी पूरी समानता नहीं पायेगी । उत्पादन के तरीकों को ही हमें बदलाना होगा जिससे संपत्ति के केन्द्रीकरण की जड़ में प्रहार हो सके । प्रायः निम्नी कारखानों में उत्पादन होता है और सोप बहुत मुनाफ़ा कमाते हैं । इसके बजाय उत्पादन सहकारिता की पद्धति से विकेंद्रित कर दिया जाय तो थोड़े-से लोगों के हाथों में इस प्रकार संपत्ति एकत्र नहीं होगी । भारी और बुनियादी उद्योगों पर तो राज्य का स्वामित्व है ही । इनका लाभ किसी व्यक्ति की जेब में नहीं राज्य-कोष में जाता है जिससे सारे समाज की सेवा होती है । इसी प्रकार उपभोग्य वस्तुओं के उद्योग यदि सहकारिता के आधार पर और छोटे कारखानों के रूप में चलाये जायँ तो थोड़े-से खानगी आदमियों के हाथ में सब एकत्र होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होगा । प्रायः बनकर देश के भीतरी और बाहरी व्यापार में सभी विधोविधों को हटाया जा सकता है । राष्ट्रीय विकास-परिषद् शोध-निर्माण-कार्यों के ठेकों का भी नियमन करने की योजना बना रही है । इन कार्यों को प्रत्यक्ष खानगी ठेकेदार करते आ रहे हैं और देश की बहुत बड़ी जनराशि इनमें बर्ब होती है । इस काम को भी शासन भवन निर्माण-सहकारी समितिमाँ बनाकर अपने हाथ में ले ले तो यहाँ भी विनती के आदमियों के हाथों में सब एकत्र होना एक आसना ।

कारखानों और मिसों के प्रबन्ध की पद्धति में भी होने-गिने आदमियों के हाथ में सम्पत्ति एकत्र होती रहती है । इस बारे में कम्पनी-सम्बन्धी कानून में काफी संशोधन कर दिया गया है और प्राया है प्रबन्धकों की वर्तमान पद्धति सीधे ही समाप्त हो जायगी । इस प्रबन्धक पद्धति —मैनेजिंग एजेंसी—के स्थान पर हमें समान छोटे-बड़े कारखानों में सहकारिता का तत्त्व जारी कर देना चाहिए । इन्डस्ट्रियल फ़ास वर्कमी लार्जे और स्वीडन जैसे पश्चिम के कई देशों में बड़े उद्योग भी इसी सहकारिता की पद्धति से चलाते

जा रहे हैं। भारत में भी हम ऐसा क्यों न करें ? बड़े उद्योगों का भी सञ्चालन हम सहकारिता के आधार पर करने लगेंगे तो सबसे पहले-से पूँजी पतिव्यों के हाथों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण नहीं हो सकेगा। प्रवासन के उद्योग में भी यदि इस सहकारिता के तत्त्व को धुँक कर दिया जाय तो घाज नलकों धीरे-धीरे प्रयत्नकारों का शोषण करके प्रकाशक जो अपनी जेब भर रहे हैं वह बन्द हो जायगा। इस प्रकार उत्पादन में सहकारिता की मजद मेकर हम असमानताओं को काटी कम कर सकते हैं।

परन्तु असमानताएं माओ धीरे-धीरे के बीच भी हैं। प्राप्त सांकेतिक से बात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति वर्ष आबादी की वृद्धि जहाँ की प्रतिघन है वहाँ शहरों में वह चार प्रतिघन है। इस प्रकार गाँवों की आबादी घटती धीरे-धीरे की आबादी बढ़ती जा रही है। इसका कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोमी के साधनों की कमी है। बहुत-से गाँवों में जमीन पर अनुप्यों को पूरा काम नहीं मिलता धीरे-धीरे गृहोद्योग ग्रामीणों के रोमी के कोई सहायक साधन नहीं हैं। इस कारण किसानों को धीरे-धीरे साधनों पर भूमि हीन मजदूरों को विवश होकर कुछ समय के लिए या हमेशा के लिए शहरों में जाने जाना पड़ता है। इन लोगों के शहरों में जा जाने से किसानों की कमी गन्दगी जैसी अनेक समस्याएं शहरों में पैदा होती रहती हैं। फिर इन पर छोड़नेवालों का पारिवारिक जीवन टूट जाता है। गाँव में रोमी की कमी होती ही है, किन्तु शहरों में जीवन की बुराई भी कुछ मुश्किलें जैने होती हैं। इसलिये शहरों धीरे-धीरे गाँवों के बीच पड़ी हुई खाई को पाटने के लिए यह जरूरी है कि वहाँ रोमी के साधन निर्माण करने के अलावा नागरिक जीवन की ये साम्य मुश्किलें भी बीरे-बीरे पहुँचाई जायें। प्राणा है, सीधरी पञ्चवर्षीय योजना में विजली तथा पिता धीरे-धीरे आरोग्य-सम्बन्धी काटो मुश्किलें गाँवों में पहुँचाने का प्रबन्ध हो जायगा। पिता-संस्थाएँ धीरे-धीरे प्रत्यक्ष प्रावि सब केवल शहरों में ही इकट्ठे कर दिये जाते हैं। इस कारण बेकारे ग्रामीणों को अगला पर धीरे-धीरे लेनी लोड़-लोड़कर पढ़ने या निमाओं का हमाज करवाने के लिए शहरों में लोड़-लोड़कर आना पड़ता है। यदि ये मुश्किलें गाँवों में ही पहुँचा दी जायें तो उनको बड़ी सहसियन

देश में इसे उचित सीमा तक क्यों नहीं लायें ? यह केवल यंत्र की तरह काम करने से नहीं होगा । इसके लिए कर-प्रणाली का उपयोग करना होगा । प्रायः कर की ऊंची बरें संपत्ति और व्यय का कर, गैट (गिफ्ट) कर और ऊंची आयवाली आयदाओं पर आयदाय-कर लगाने से इन विषयवाची को कम करने में काफी मदद मिली है ।

परन्तु केवल करों से भी पूरी समानता नहीं प्रायेगी । उत्पादन के तरीकों को ही हमें बहुमाना होगा जिससे संपत्ति के केन्द्रीकरण की जड़ में प्रहार हो सके । प्रायः निजी कारखानों में उत्पादन होता है और मजदूर बहुत मुनाफ़ा कमाते हैं । इसके बजाय उत्पादन सहकारिता की पद्धति से विकेंद्रित कर दिया जाय तो थोड़े-से लोगों के हाथों में इस प्रकार संपत्ति एकत्र नहीं होगी । भारी और बुनियादी सख्तियों पर तो राज्य का स्वामित्व है ही । इनका लाभ किसी व्यक्ति की जेब में नहीं राज्य-कोष में जाता है जिससे सारे समाज की सेवा होती है । इसी प्रकार उपभोग्य वस्तुओं के उद्योग यदि सहकारिता के आधार पर और छोटे कारखानों के रूप में चलाये जायें तो थोड़े-से जानगी आबमियों के हाथ में धन एकत्र होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होगा । प्रायः चलकर देश के भीतरी और बाहरी व्यापार में सभी बिजौनियाँ को हटाया जा सकता है । राष्ट्रीय विकास-परिषद् लोक-निर्माण-कामों के ठेकों का भी नियमन करने की योजना बना रही है । इन कामों को प्रत्यक्ष जानपी ठेकेदार करते या रहे हैं और देश की बहुत बड़ी धनराशि इनमें खर्च होती है । इस काम को भी खासन भवन निर्माण-सहकारी समितियाँ बनाकर अपने हाथ में ले ले तो यहाँ भी गिनती के आबमियों के हाथों में धन एकत्र होगा एक आममा ।

कारखानों और मिलों के प्रबन्ध की पद्धति में भी इन्ने-गिने आबमियों के हाथ में संपत्ति एकत्र होती रहती है । इस बारे में कम्पनी-सम्बन्धी कानून में काफी संशोधन कर दिया गया है और धाधा है, प्रबन्धकों की वर्तमान पद्धति शीघ्र ही समाप्त हो जायगी । इस प्रबन्धक पद्धति—मैनेजिग एजेन्सी—के स्थान पर हमें समान छोटे-बड़े कारखानों में सहकारिता का उत्पन्न जारी कर देना चाहिए । इंग्लैंड फ्रांस जर्मनी जार्ज और स्वीडन जैसे पश्चिम के कई देशों में बड़े संयोग भी इसी सहकारिता की पद्धति से चलाये

जा रहे हैं। भारत में भी हम ऐसा क्यों न करें ? बड़े उद्योगों का भी संभालन हम सहकारिता के आधार पर करने लगे तो उससे बोझ-मे पूँजी पतियों के हाथों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण नहीं हो सकेगा। प्रकाशन के उद्योग में भी यदि इस सहकारिता के तत्त्व को धुँक कर दिया जाय तो प्रायः लेखकों और सम्पादकों का दोषण करके प्रकाशक जो अपनी बैबें मर रहे हैं वह मर जायगा। इस प्रकार उत्पादन में सहकारिता की मदद लेकर हम सममानताओं को काफ़ी कम कर सकते हैं।

परन्तु अस्तमानताएँ गाँवों और ग्रहों के बीच भी हैं। प्राप्त धाँकड़ों से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति बण धाबाड़ी की दृष्टि जहाँ की प्रतिष्ठान है वहाँ ग्रहों में वह भार प्रतिष्ठित है। इस प्रकार गाँवों की धाबाड़ी बट्टी और ग्रहों की धाबाड़ी बढ़ती जा रही है। इसका कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोखी के साधनों की कमी है। बहुत-से भागों में जमीन पर मनुष्यों को पूरा काम नहीं मिलता और वहाँ पुहोछोय चापोछोय जैसे रोखी के कोई सहायक साधन नहीं है। इस कारण किसानों को धीरे-धीरे धर भूमि हीन मजदूरों की विपन्न होकर कुछ समय के लिए या हमेशा के लिए ग्रहों में बसे जाना पड़ता है। इन लोगों के ग्रहों में जा जाने से मकानों की कमी गम्भीर बँधी धनैक समस्याएँ ग्रहों में पैदा होती रहती हैं। फिर इन घर छोड़नेवालों का पारिवारिक जीवन टूट जाता है। गाँव में रोखी की कमी तो होती ही है, किन्तु ग्रहों में जीवन की दूसरी भी कुछ मुबिबाएँ जैसे बिजली पानी सिगा शाकरी महायत्ता धारि होती हैं जो गाँवों में नहीं होती। इसलिए ग्रहों और गाँवों के बीच पड़ी हुई ताई को पाटने के लिए यह जरूरी है कि वहाँ रोखी के साधन निर्माण करने के अलावा बाह्य जीवन की ये अन्य मुबिबाएँ भी धीरे-धीरे पहुँचाई जाय। प्राण है, छोटी पंचवर्षीय योजना में बिजली तथा मिठा और धारोग्य-सम्बन्धी काफ़ी मुबिबाएँ गाँवों में पहुँचाने का प्रयत्न हो जायगा। शिक्षा-संस्कार और अस्पताल धारि सब केवल ग्रहों में ही इकट्ठ कर दिये जाते हैं। इस कारण बेचारे ग्रामीणों को अपना घर धीरे-धीरे छोड़-छोड़कर पाने या बीमारों का इलाज करवाने के लिए ग्रहों में दौड़-दौड़कर जाना पड़ता है। यदि ये मुबिबाएँ गाँवों में ही पहुँचा दी जाय तो उनको बड़ी सहमिष

हो जाय। ऐसा करने से हमके मनन वहाँ सस्ते में बन जाय। बाठाबाठ के सामनों का बोझ कम हो जाय और लोगों को अपना घरबार छोड़ छोड़कर इधर-उधर मारा-मारा नहीं फिरना पड़। सब बेतों कारखानों और दुकानों के कामों में समन्वय होकर ग्रामों का जीवन सुखी और समृद्ध भी हो सकता है।

सामाजिक और धार्मिक असमानताओं को मिटाने का काम हाथ में लेते समय सबसे पहले उन लोगों के कामों को हाथ में लेना चाहिए, जिनकी जरूरतें गांवों और सहरों में भी सबसे बड़ी हैं। उदाहरण के लिए संयोजन की हमारी समाज योजनाओं में बेजमीन मजदूरों और खासतौर पर हरिजनों की तरफ हमें सबसे पहलू ध्यान देना चाहिए। जमीन के मुबारकों के सम्बन्ध में अनेक राज्यों में अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं। इनका मुख्य उद्देश्य वही है कि जमीन की अधिकतम सीमा निश्चित करने के बाद जो जमीन बचे वह बेजमीन मजदूरों में बांट दी जाय। उन बेजमीनों की जरूरतों की हम उपेक्षा नहीं कर सकते जिनकी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में पाँचवाँ हिस्सा है और जिनकी धार्मिक प्रीसत धाम केवल एक-सी बार कब्रों के करीब है। इसी प्रकार सहरों में मेहतरों की हालत बहुत खराब है। जिन धोबियों से उन्हें काम लेना पड़ता है वे बहुत गन्दे और मनुष्यों के साथ नहीं हैं। हमारे देश की बहुत कम नगरपालिकाओं का ध्यान इस तरफ गया है। मजदूर बस्तियाँ भी बहुत गन्दी हैं। उनकी तरफ भी ध्यान देना बड़ा जरूरी है। अतः जबतक बेजमीन मजदूरों मेहतरों और सहरों की मजदूर-बस्तियों की हालत नहीं सुधारी जाती समाजवादी समाज की स्थापना की बातें करना व्यर्थ है।

अन्त में इन सारे बिकाश-कामों के लिए साधन प्राप्त करने का प्रयत्न है। भारत जैसे कम विकसित देश में गरीबों पर करों का अधिक बोझ डालना उचित नहीं। पहले ही यहाँ काफी अधिक कर लगे हुए हैं। इसलिए जमीन धाम बढ़ाने के साधन निर्माण करने से पहले और अधिक कर नहीं बढ़ाये जा सकते। कम विकसित देशों में विभिन्न उद्योगों के लिए पूँजी भी कम ही होती है। दूसरा उपाय है विदेशों से कर्ज लेना। यदि इस कर्ज के साथ दूसरी कोई राजनैतिक या धार्मिक बातें जुड़ी हुई न हों तो कर्ज भी

सिवा जा सकता है। परन्तु यह बाहरी मदद भी स्वाभाविक मर्यादित ही होगी। यद्यपि उसमें सावधानी से काम नहीं लिया गया तो उससे स्वयं हमारी आजादी को खतरा हो सकता है। इसलिए भारत जैसे कम विकसित देश के लिए तो केवल एक चारा रह जाता है। वह यह कि अपने मनुष्य-बल का समुचित उपयोग करे। हमारे देश में बहुत लोग बकार हैं और उनसे भी अधिक आर्थिक बकारों की मरम्मत है।

प्रत्येक घर में कमरानेवाला तो एक होता है और न कमरानेवाले कई होते हैं। वे देश की सम्पत्ति में कुछ भी बूझ नहीं करते। तो मुख्य सवाल यह है कि देश की सम्पत्ति बढ़ाने में इन बेकारों का उपयोग किस प्रकार किया जाय। यह प्रश्न मजदूरों और मजदूरों की सम्पत्ति पर रहता है। प्रश्न है कि यह काम सामाजिक क्षेत्रों में ग्राम-पंचायतों और सहकारी समितियों को अपने हाथ में ही लेना चाहिए और बाहरी क्षेत्रों में इसे लोकल बोर्डों और पारिशदों और बार्ड तथा मुहल्ला कमेटियों को करना चाहिए। यह काम सरकारी नौकरों के बल-बूते का नहीं भले ही वे कितने ही कुशल हों। वे सबों करोड़ों आयुधियों को काम में नहीं लगा सकते। वे तो जनता को इन विकास कार्यों में कुछ योगदान दे सकते हैं। लोकतांत्रिक प्रेरक शक्ति तो इन और सरकारी संस्थाओं में ही होती है। इसीलिए तो शासन इन लोक-संस्थाओं को अपने-पंचायतों सहकारी समितियों और शालाओं को इतना महत्व प्रदान कर रहा है और उनके अच्छे संगठन तथा अच्छे प्रशासन पर जोर दे रहा है। वे संस्थाएँ अपने-अपने स्थान के विकास-कार्यों को नकद धनाज या धन के रूप में मदद भी कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें केन्द्र या राज्य की सरकारों का मुह देखने की जरूरत नहीं होगी। वे अपनी बकरतों को देखकर कामकाज कुछ बना लेंगी और उन्हें कार्यन्वित भी कर लेंगी। नदी पाटी-योजना से तो सोडा और इस्पात के कारखाने जैसे बड़े-बड़े और बुनियादी तथा महत्व के उद्योग स्वाभाविक उनही शक्ति में बाहर की चीजें हैं। इसलिए उन्हें राज्यों और केन्द्र की सरकारें ही कर सकते हैं। गाँवों में खेतीवाले साधारण लोगों को तो अपने तत्काल उपयोग की और जरूरत की चीजें और मिश्र की छोटी योजनाओं में ही दिलचस्पी होती है और इनमें से बहुत-सी योजनाओं का वे स्वयं हिममिलकर पूरी भी कर सकते

हैं। इनके लिए मकड़ घनाब या परिधम के रूप में सहामता की जरूरत हो तो स्वामीय भोग इसे स्वयं अधिक भासाभी से प्राप्त भी कर सकते हैं।

पिछले बरों के अनुभव से हमने देखा लिया कि लोकतन्त्र में संयोजन तभी सम्भव और सफल होता है जब धार्मिक और राजनैतिक घत्ता को व्यापक स्तर पर बांट दिया जाता है। देश के छोटे पांच सात गांवों का संयोजन हिस्सी में या राज्यों की राजधानियों में बैठकर नहीं हो सकता। इस लिए भारत सरकार की यह मुख्य नीति है कि वह इन पंचायतों को काफ़ी अधिकार और सत्ता सौंप दे।

यद्यपि शासकीय स्तर पर हम जो बचत कर सकते हैं धनवा कर्म से सकते हैं उसकी धपनी कुछ मरबाबाई होती है तथापि नागरिकों द्वारा ज्ञानगी रूप से और जासकर ग्रामीण क्षेत्रों में काफ़ी बचत हो सकती है और इस बचत को कोष के रूप में एकत्र करके उसका राष्ट्रीय कार्यों के लिए उपयोग हो सकता है। इस क्षमता पर सभी केवल सदूरों में ही मुख्यतया धमल हुआ है। परन्तु इसे धन व्यापक रूप से गांवों में भी फैलाने की जरूरत है और पंचायतें सहकारी समितियां तथा धासाएं इसको एकत्र करने में काफ़ी मददगार हो सकती हैं। प्रायः इस बचत से एकत्र होनेवाले कर्म को सौटाने की एक निश्चित अवधि होती है। इस नियम को कुछ बीता किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी-छोटी बचत की रकमें राष्ट्रीय कार्यों के निकल-बासे में धीमा-पड़ति का भी उपयोग हो सकता है। गांवों के लिए ऐसी योजनाएं प्रबन्ध बनाई जायं। सरकारी और ज्ञानगी नौकरियों में काम करनेवालों के लिए छोटी-छोटी धनिवार्य बचत की कोई योजना भी बनाई जा सकती है।

बहुस्तक शासकीय उद्योगों से सम्बन्ध है उनमें मुनाफ़ा कमाने की काफ़ी गुंजाइश है। इनमें कोई मुनाफ़ा नहीं किया जाय—न लाभ हो न हानि—यह विचार गलत है। रेलवे डाकस्तार नबी-बाटी-योजनाएं, मोड़ा इस्पात काब आदि के बड़े-बड़े कारखानों में मुनाफ़े की काफ़ी गुंजाइश है। इसी प्रकार भीतरी और बाहरी व्यापार में भी लाभ कमाया जा सकता है। इनसे संयोजन के लिए धन प्राप्त किया जा सकता है।

इसके धमाबा लोग करें की बीरी तो करते ही हैं, परन्तु बमुसी की

पद्धति में भी दिखाई है। इसलिये बसुओं के काम को व्यवस्थित करने की जरूरत है। कर की बोरी और बसुओं के कुप्रबन्ध के कारण बिठना मुक-सान होता है इसका ठीक अनुमान लगाया कठिन है। परन्तु बसुओं के हमारे राज्य में सुधार कर लिया जाय तो काफी लाभ हो सकता है इसमें कोई संदेह नहीं।

एक बात और है। धार्मिक विकास का प्रश्न आबादी की वृद्धि से बहुत जुड़ा हुआ है। इसलिये आबादी की वृद्धि को नियन्त्रित करना बड़ा जरूरी है। यह या तो लोक-संश्लेष के द्वारा संभव हो सकता है या पहली तथा ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार-नियोजन के अन्य आधुनिक उपचारों के द्वारा भी किया जा सकता है। देश में घातक रक्षा और रोगों के उपचार-सम्बन्धी अनेक योजनाएँ चल रही हैं। इनकी सहायता से मृत्यु-संख्या तो स्वभावतः प्रतिबन्ध पड़ेगी ही। परन्तु इसके साथ ही जन्म-संख्या भी यदि नहीं बटेगी बल्कि बढ़ती ही जायगी तो हमारी सारी योजनाएँ गलत और अनबूरी सिद्ध होंगी। इसलिये देश की आबादी को नियन्त्रण में खाने का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अपनी अनेक समस्याओं को हम संयोजन के द्वारा हल कर सकते हैं, बघने कि खुर संयोजन का हमारा यत्र प्रख्या और नगर हो। हमारा शासन-व्यवस्था मूलतः लगान वसूल करने वाला तथा व्यवस्था की रक्षा के क्वालिटी से बनाया गया था। परन्तु स्वतन्त्रता के बाद देश के आर्थिक संयोजन और विकास की बहुत बड़ी जिम्मेदारी उत्तर पर आई है। इस काम के लिए वह अपने-आपको तैयार कर रहा है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि अभी उसमें बहुत सुधार की जरूरत है। शासन-व्यवस्था का ईमानदार और कार्यक्षम होना चाहिए, नहीं तो संयोजन सफल बचापि नहीं होया। संयोजन के यत्र की सुधारने के लिए कमचारियों की प्रशिक्षण की व्यवस्था बड़े पैमाने पर करना आवश्यक है। इसके अलावा हमारी साधारण प्राथमिक माध्यमिक और उच्च शिक्षण की पद्धति में भी बहुत-से सुधार करने होंगे। यदि संयोजन का आधार खेती और भारी उद्योग उत्तरा हाव है तो हमें श्रम सम्बन्ध सेना चाहिए कि शिक्षा उसकी प्रत्यक्ष आधार है।

गांधीवादी संयोजन के मूल तत्त्व

महाराजा गांधी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग गांवों में राष्ट्रीय जीवन के विविध घंटों के गव-निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य में बिताया है। ग्रामीण जीवन को मजबूत और स्थायी आधार पर खड़ा करने के हेतु से वह सेगांव चले गये। वहाँ वह दस वर्ष रहे और वहाँ बेटी योपात्म ग्रामोन्नति, बुनियादी शिक्षा आरोग्य सफाई और संस्थानों के जीवन-सुधार जैसे ग्रामीण जीवन के हर पहलू पर ध्यान दिया। मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि सामुदायिक विकास का एक वैश्वव्यापी और महान कार्य तो हमने हाथ में ले लिया है, परन्तु इसमें हम राष्ट्रपिता के अनुमति और सलाह से लाभ उठाने का यत्न नहीं कर रहे हैं। इसमें हम विदेशी विशेषज्ञों की बातों को अव्यक्त महत्व प्रदान कर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। संभव है उन्होंने अपने अपने देशों में प्रत्यक्ष ही बहुत काम किया होगा परन्तु भारतीय संस्कृति परंपरा और परिस्थितियों का उन्हें स्वभावतः ज्ञान नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए गांधीजी सदा कहा करते थे कि हमारे सारे प्रांशिक संयोजन का आधार गांव हों। उनकी यह निश्चित राय थी कि संयोजन ऊपर से नीचे नहीं, नीचे से ऊपर की तरफ होना चाहिए। इतने वर्षों के अनुभव के बावजूद हम यह अनुभव करने लगे हैं कि गांधीजी की बात ही सही थी। जबतक पंचायतों सहकारी समितियों और आसनाओं को हम अपने सामुदायिक विकास की योजनाओं के बुनियादी आधार नहीं बनायेंगे हमें कोई ठोस सफलता नहीं मिल सकेगी। यदि हम गांधीजी की सलाह को शुरू से ही मान लें तो हमारा बहुत-सा समय सक्रिय और साधनों की बचत हो जाती जिसका उपयोग अत्यंत अधिक प्रभावी तरह कर सकते हैं।

फिर बेटी के सुधार के प्रश्न को सीखिये। गांधीजी कुएं, टालाब नालों और झरनों के पानी की रोकना आदि सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाओं पर हमेशा बड़ा धोर दिया करते थे। इन छोटी-छोटी योजनाओं पर ध्यान देने के बजाय हम बड़ी-बड़ी बहुदेशीय योजनाओं के बकुर में पड़ गये,

“सैकड़ों-करोड़ रुपये हमने लगा दिये। हमारा मतलब यह नहीं कि ये

बड़ी योजनाएं बेकार हैं। राष्ट्र के विश्वास में उनका स्थान भी घबस्य है। परन्तु ये छोटी योजना कम खर्चीली हैं। इनका निर्माण और सम्पन्न भी बन्दी हो सकती है और क़ायदा भी ये तुरन्त बेमै सग जाती है। बड़ी नहीं जाती योजनाओं पर हमने सैकड़ों-करोड़ खर्च कर दिये किन्तु उनसे हम केवल पेसठ-खसठ लाख एकड़ की सिंचाई कर सकेये। इसके विपरीत पहली पंचवर्षीय योजना में हमने छोटी योजनाओं पर केवल सौ करोड़ खर्चे खर्च किये परन्तु उनकी मदद से हमें एक करोड़ एकड़ की सिंचाई का काम मिल गया। इससे स्पष्ट है कि भारत जैसे गरीब देश को बहुत खर्चीली योजनाएं नहीं पुछा सकती। एक दिन महाभारत पड़ते-पड़ते नारद और बुधिष्ठिर का संवाद देखकर मुझे धारण्य मिश्रित आनन्द हुआ। नारद बुधिष्ठिर की राजसभा में पहुंचे तब उन्होंने बुधिष्ठिर से कितने ही प्रश्न पूछे। राज्य की खेती के बारे में उन्होंने पूछा

“बुधिष्ठिर तुम्हारे राज्य में खेती केवल वर्षा पर ही अवलम्बित नहीं है न ?

“हर बाल का अपना तालाब है न ?

“और उनकी सम्पत्ति भी हर वर्ष होती रहती है न ?”

इन तीन प्रश्नों में भारत की खेती-सम्बन्धी कृषिपापी नीति आ गई। धार्मिक प्रश्नों के बारे में हमारे पूर्वज कितने व्यावहारिक थे इससे यह स्पष्ट है। अतः अपने संयोजन में हमें अपने पूर्वजों के अनुभव से कुछ-बुरा काम उठाना चाहिए।

इसके अलावा पूँजी और धार्मिक बेकारी के प्रश्न की तरफ भी हम बुरा ध्यान नहीं दे पाये हैं। यदि देश की सम्पत्ति बढ़ती है, परन्तु उसके साथ ही-साथ लोगों की खरीदने की शक्ति नहीं बढ़ती है तो इस बड़ी हुई सम्पत्ति से समाज में धार्मिक और सामाजिक श्याम नहीं बढ़ेगा। हमने अनुमान समायो या कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में खेती को छोड़कर ग्रामीण भाग अधिक धार्मिकों को रोजी मिल जायगी परन्तु बाद में जब फिर हिसाब लगाया गया तो वह धाँडा पेसठ लाख तक आ गया और वस्तुस्थिति तो इतनी आगामी भी नहीं दिनाती। अबतक जो धाँड़े प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार दूसरी योजना के विविध नामों में केवल पञ्चीस लाख धार्मिक

आदिमियों का काम मिल सकता है। इस यंत्रिय का चाहिए कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरों के अनुमान के अनुसार भी हम लोगों को रोजी नहीं दे पायेंगे। हमें भूलें नहीं कि देश में कबल मजदूर वर्ग में अन्धरा पन्हु मात्र नय लोग बढ़ जायें हैं। इन लोगों से हम इसी कठोर पर पुंजते हैं कि यदि देश मजदूरों का मिटाना है तो हमें ऐसी प्रयोगों और अन्य लोगों की योजनाएं हो बनानी होंगी जिसमें अधिक-से-अधिक मजदूरों को काम दिया जा सके। यह सच है कि हमारे विकास-अर्थों में ऐसी बेटी धारणाएं धुक की जा रही हैं परन्तु हमारी यंत्रिय बहुत खोली है। इस यंत्रिय से काम नहीं चल सकेगा।

८

भूमि-सम्बन्धी नीति

पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में जो भूमि-सम्बन्धी नीति बनाई गई है, उसके आधार को विचारें—(१) बेटी में अधिक उत्पादन और (२) आर्थिक तथा सामाजिक न्याय। योजना-आयोग की यह निर्दिष्ट राय है कि भूमि-सम्बन्धी मुद्दों के घमेल में जिसने देरी होगी, उसका असर बेटी के उत्पादन पर विपरीत पड़ेगा। भूमि-सम्बन्धी मुद्दों का कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि बेटी पर काम करनेवालों को अपने काम में अधिक प्रेम और उत्साह हो। राज्य और किसान के बीच यदि कोई सम्बन्ध होता है तो जमीन की उपज बढ़ने में बाधा होगी। इसीलिए योजना-आयोग की यह राय है कि जो जमीन को जोते वही उसका मालिक भी हो। सम्बन्धनों को हटा देने से किसान को उसका अपना हक का स्थान मिल जाता है और उसे जमीन की पैदावार बढ़ाने में उत्साह होता है।

आर्थिक और सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी जमीन के स्वामित्व के बारे में समाज में जो असमानताएं हैं, उनको हटाना जरूरी है। इसीलिए योजना-आयोग चाहता है कि एक आदर्श के पास जिसने जमीन हो इसकी अधिकतम सीमा निर्दिष्ट कर दी जाय। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार भी कर लिया गया है, परन्तु दूसरी योजना में इसके कुछ अपवाद

भी रक्त दिये गए हैं। उसमें मूल उद्देश्य यही है कि उपज बढ़े नहीं। उदाहरणार्थ चाय काँकी और रबर के बागान फस-बाग पशु-संबर्धन के प्रयोग में लगे हुए क्षेत्र कुम्हालय ऊन के क्षेत्र चीनी की मिर्चों के द्वारा की जानेवासी गन्ने की खेतीवाले क्षेत्र और व्यवस्थित रूप से जहाँ खेती होती है ऐसे बड़े-बड़े क्षेत्र, जिनपर बहुत सागत लगाई गई है और बड़ी-बड़ी इमारतें बड़ी कर दी गई हैं। इन सबको अधिकतम सीमाबद्ध निर्बंध से मुक्त कर दिया गया है। मुख्य कल्पना यह है कि गाँवों में जमीन के स्वामित्व सम्बन्धी असमानताएँ उत्तरोत्तर कम होती चालें परन्तु खेती का उत्पादन किसी प्रकार कम न होने दिया जाय। जब आसामी के पास अधिक जमीन होती है तो वह उससे पूरी उपज नहीं ले सकता। इसलिए उसे कोई अधिकार नहीं कि वह अधिक जमीन अपने पास रखे इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे लोगों के पास से फलतः जमीन लेकर उन लोगों को दे दे, जो उसपर मेहनत करके उससे पूरी उपज ले सकते हैं। परन्तु जिन बड़े क्षेत्रों में खेती अच्छी तरह हो रही है पूरी वस्ति साधारण से अधिक उपज की जा रही है और जिनपर बहुत सागत लगी हुई है उन्हें न छोड़ा जाय।

यह स्पष्ट भी गमन है कि योजना-आयोग ग्रामीणों की आय की सीमाएँ बाँध देना चाहता है। जमीन की अधिकतम सीमा बाँधने का अर्थ यह इरादा नहीं कि समुक्त सीमा से अधिक कोई कमाई न करे। इसके विपरीत आयोग तो चाहता है कि जमीनों का एक बार फिर बंटवारा हो जाने के बाद प्रत्येक किसान अपनी की एकड़ उपज बढ़ाने की पूरी कोशिश करे। इसके अभाव में योजना में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि घर-घर देहात में छोटे छोटे कारखानों ग्रामोद्योगों तथा मछली-उद्योगों का एक आन बिछा देना चाहती है। इन उद्योगों की सहायता से तरह-तरह के काम करके ग्रामीण अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

फिर इसी प्रकार शहरों में भी जमीन और आय-शक्ति के ऊपर उचिततम सीमाएँ लगाई जा सकती हैं। समाजवादी समाज बनाने की किया राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में काम करेगी। जनताओं पर कर, मृत्यु-कर, सम्पत्ति-कर, व्यव-कर और इनाम मेंट (गिफ्ट) जैसे विविध कर लगा

आदिमियों को काम मिल सका है। इस गति से तो आदि योजना के अन्त तक संशोधित अनुमान के अनुसार भी हम नहीं दे पायेंगे। हमें सुनने नहीं कि देश में केवल मजदूर। पन्द्रह लाख लगे लोग यत्र जाते हैं। इन तथ्यों से हम इसी नर है कि यदि देश से बेकारी को मिटाना है तो हमें एसी गृहोद्योगों की योजनाएं ही बनानी होंगी जिनमें अधिक-से-अधिक काम दिया जा सके। यह सच है कि हमारे विकास-समर्थ योजनाएं शुरू की जा रही हैं। परन्तु हमारी गति बहुत धीमे से काम नहीं चल सकेगा।

४

भूमि-सम्बन्धी नीति

पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं में जो भूमि बनाई गई है, उसके आधार को विचार है—(१) बेटी बन और (२) आर्थिक तथा सामाजिक न्याय। योजना निर्दिष्ट राम है कि भूमि-सम्बन्धी सुधारों के समस्त होयी उसका असर बेटी के उत्पादन पर विपरीत पड़े सुधारों का कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि बेटी को अपने काम में अधिक प्रेम और उत्साह हो। राज्य यदि कोई सम्पन्न होता है तो जमीन की उपज बढ़े इसीलिए योजना-आयोग की यह राम है कि जो प उसका मासिक भी हो। सम्पन्नों को हटा देने से किसान हक का स्वामि मिल जाता है और उसे जमीन की पैदावार होता है।

आर्थिक और सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी जमीन बारे में समाज में जो असमानताएं हैं उनको हटाना जरूरी योजना-आयोग चाहता है कि एक आदमी के पास कितनी जमीन अधिकतम सीमा निर्दिष्ट कर दी जाय। दूसरी पंचवर्षीय स्वीकार भी कर लिया गया है, परन्तु दूसरी योजना में इस

छोटी 'उप इकाई' उसीके धन्य बनाने सकते हैं। यद्यपि सब अपनी-अपनी जमीनें अलग-अलग रखें। केवल खेती की खास-खास किम्पों में सहकारिता से काम लें। दूसरी योजना में लिखा है—“हर जगह की परिस्थिति अलग-अलग होती है। इसलिए खेती तथा अन्य कामों में सहकारिता शुरू करने के लिए काफी अनुभव की जरूरत होगी और सारे कामों में अडा पूर्वक शुरू से प्रवीर तक प्रयोग की श्रुति से काम करना होता है। सगा तार हम अध्ययन करते रहें। पन्ध्रे-से-पन्ध्रे तरीके ढूँढने का यत्न करें और अपने अनुभव दूसरों के सामने रखते जाय। इससे किसान एक-दूसरे के अनुभव से धाम उठाकर अपनी विशेष परिस्थिति के अनुसार रास्ता ढूँढ सके।”

स्वयं प्रधान मंत्री ने अपने एक भाषण में विस्तृत स्पष्ट कर दिया है कि सहकारी खेती का धर्म सामुदायिक खेती कोई न समझे। सरकार किसानों पर किसी प्रकार भी सहकारी सम्मिलित खेती बबरबस्ती लायना नहीं चाहती। यह चाहती है कि सबसे पहले सारे देश में सहकारी सेवा-समितियों (सर्विस कोऑपरेटिव) का काम फैल जाय। ये समितियाँ खेती में किसानों के लिए जितनी सामवायक होती हैं, यह बताने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। जहाँ-जहाँ भी सेवा-समितियों के अनुभव से प्रभावित होकर किसान सहकारी सम्मिलित (जॉइंट कोऑपरेटिव) खेती करने की इच्छा प्रकट करें, वहाँ उन्हें इसकी सुविधा कर दी जाय। हाँ किसानों को यह बताया दिया जाय कि ऐसे सम्मिलित खेत बहुत बड़े न हों। उस के सहकारी खेत तो दस बीस तीस बल्कि चौबीस हजार एकड़ तक के होते हैं। हमारे देश में तो पन्ध्रस पचास यद्यपि ही किसान परिवार अपने खेत भिन्न भिन्न और एक सम्मिलित परिवार की तरह खेती करें तो काफी हाया। मुझे की बात यह है कि सहकारी किसान-परिवारों में जितनी निकटता और प्रेम होया, सहकारी खेती जितनी ही अधिक सफल होगी। बाहिर है कि ऐसी खेती ग्रामवानी पाँवों में अधिक सफल होगी क्योंकि वहाँ किसानों के दिम पहले ही इतने तैयार हो गये हैं कि उन्होंने अपना स्वामित्व-विकास करने के लिये ग्राम-समाज को छोड़ दी है। इसी

लिए सारी जमीनें मिला भी जाती हैं। सब मिलकर खेती करते हैं और उपज का बंटवारा करते समय जमीन के मालिकों का क्यास इन्का जाता है। इस प्रकार की सहकारिता में यदि कोई बाढ़ तो अपनी जमीन को लेकर समिति से धनग भी हो सकते हैं, परन्तु इसकी कुछ बातें होती हैं उनके अनुसार।

दूसरा प्रकार यह है कि सब किसान केवल अपनी जमीनों ही नहीं बल्कि सारे सामान भी एकत्र कर लेते हैं। अर्थात् उपज के बंटवारे का प्रश्न है जमीनों का सामूहिक स्वामित्व समाप्त हो जाता है। जो जिसका काम करता है उस हिस्सा से उसे उपज का हिस्सा मिल जाता है। ध्यान रहे यह सोवियत रूस की और दूसरे साम्यवादी देशों की साम्यवादि खेती से भिन्न है, क्योंकि वहाँ सहकारी खेती में शामिल होना या न होना किसीकी इच्छा पर छोड़ा गया है। वह अनिवार्य नहीं है और इस खेती का संभालन भी लोकतन्त्र के सिद्धांतों पर सबस्यों की इच्छा और सहमति से नहीं होता।

तीसरा प्रकार यह है जिसमें खेती को मिलाकर एकत्र नहीं किया जाता। केवल खेती-सम्बन्धी सब काम उदाहरणार्थ निबाई, कटाई मात्र निकालना साव का प्रबन्ध करना फसल बेचना बरैरा किसान हिम-मिल कर सहयोग से करते हैं। इसके लिए वे सहकारी सेवा-समितियाँ बना लेते हैं और उनके द्वारा सब काम होता है। जर्मनी के सहकारिता विधेयक डॉ. माटो धिसर ने इसे सहकारी वाजार पर व्यक्तित्व खेती कहा है।

इस प्रकार भारत में सहकारिता के प्रयोग के लिए बहुत क्षेत्र है। जहाँ जैसी अनुकूलता हो उसके अनुसार अलग-अलग क्षेत्रों में सहकारिता के अलग-अलग प्रकारों का प्रयोग विस्तृत स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह बात विस्तृत स्पष्ट कर दी गई है कि इसमें किसी प्रकार की सक्ती न हो। प्रत्येक प्रयोग पूर्णतः स्वेच्छा से हो। सहकारिता के कुछ सास मनुने निश्चित कर दिये जाय और वहाँ जो नमूना उपपन्न समझ जाय उसका प्रयोग वहाँपर हो तो बहुत प्रबल परिणाम पा सकता है। उदाहरणार्थ सारा खेत सारे कामों के लिए या कुछ सास कामों के लिए एक इकाई मान लिया जाय। कुछ परिवार अपनी-अपनी एक

छोटी 'सप इकाई' उसीके अन्दर बना सकते हैं, यन्त्रवा सब अपनी-अपनी जमीन पर समय-समय रखें। केवल सेटी की जाय-जाय कियुक्तों में सहकारिता से काम लें। दूसरी योजना में सिखा है— 'हर जगह की परिस्थिति प्रलय-असय होती है। इसलिए सेटी तथा अन्य कामों में सहकारिता शुरू करने के लिए काफी अनुभव की जरूरत होगी और धीरे धीरे कामों में यथा पूर्वक शुरू से यत्नरत तक प्रयोग की वृत्ति से काम करना होता है। तथा तब हम प्रयत्न करते रहें। यन्त्र-से-यन्त्र तरीके ढूँढ़ने का यत्न करें और अपने अनुभव दूसरों के सामने रखते जाय। इससे किसान एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठाकर अपनी विशेष परिस्थिति के अनुसार रास्ता ढूँढ़ सकें।

प्रकार नई गांधीबादी की जमीनों पर भी यह सेती अधिक प्रचंडी और सफल हो सकेगी।

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि स्वयं गांधीजी इस प्रकार की सहकारी सेती को पसन्द करते थे। सन् १९४२ के १५ फरवरी के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था 'मेरा पक्का विश्वास है कि जबतक हम सहकारी सेती की पद्धति को नहीं अपनायेंगे जबतक हमें सेती का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलेगा। बात विस्मय साध है। सी परिवार मिलकर किसी जमीन पर सेती करें और उत्पादन को घापस में बांट लें तो निश्चय ही वे अधिक फायदे में रहेंगे बजाय इसके कि उस जमीन को छोटे-बड़े सी दुकानों में बांट लें। सहकारी सेती का धर्म है जमीन पूरी साधन पशु बीज घास सभी चीजों पर सबका सम्मिलित स्वामित्व हो और सेती में सब मिलकर काम करें। यदि इस प्रकार सेती की जाय तो किसानों की सारी बख्शता और भावस भाग जायगा। परन्तु यह नहीं हो सकेगा जहाँ किसान घापस में मिल-जुलकर एक परिवार की भाँति रहेंगे। पाठकों को यह भी जान लेना चाहिए कि गांधीजी मानते थे कि केवल सहकारी सेवा समितियों से काम नहीं चलेगा सहकारिता पूरी और हर बात में हा।

फिर सहकारी सेती का अर्थ यह नहीं कि वह यागिक सेती ही हो। यह क्या मतलब है कि बड़े-बड़े सेतों में उपज का मान अवश्य ही अधिक होता है। यदि बराबर मेहनत हो तो छोटे सेतों से भी काफी उपज लाया सकती है। उपज के धाँकड़ों से तो यह सिद्ध होता है कि बड़े सेतों की अपेक्षा छोटे सेतों की उपज का मान ही ऊँचा होता है। जबाहरलाल के लिए प्रमरीका और आस्ट्रेलिया के बड़े-बड़े विधान सेतों की अपेक्षा जापान की प्रति एकड़ उपज जूनी और जर्ममार्क तथा स्विटजरलैण्ड के छोटे सेतों की कोशुनी है। हाँ बड़े सेतों पर फी एकड़ के बजाय फी एकड़ की उपज का मान अवश्य अधिक होता है। भारत में जो सेती की तरफनी चाहते हैं उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए।

भारत में सहकारी सेती को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित आदमियों का होना बहुत जरूरी है जो इसके तरफ को प्रचंडी तरह समझे-बुझे हों और सेवा तथा त्याग की भावना से किसानों में काम करने को तैयार हों। मत

उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना बहुत जरूरी है क्योंकि यदि ऐसे श्रमजी नहीं मिलें तो सहकारिता के किसानों के शोषण का एक नया कारण बन जाने का भय रहेगा। अतः एक निश्चित कार्यक्रम बना लिया जाय और उसके अनुसार काम शुरू कर दिया जाय। सहकारी सेवा-समितियों के प्रयोग की संरचना सम्मिलित सहकारी क्षेत्रों के प्रयोग के लिए जमीन तैयार कर देनी। यह एकदम ऐच्छिक हो। उसमें किसी प्रकार का दबाव न हो। भारतीय किसान बहुत समझदार और व्यावहारिक हैं। यदि उसे सम्मिलित क्षेत्रों की प्रक्रियाएं और लाभ धकड़ी तरह समझा दिये जायें तो वह स्वयं ही उसे उत्साहपूर्वक स्वीकार कर लेगा।

। १

भारत में कृषि का संयोजन

दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही क्षेत्रों के संयोजन का महत्व बहुत बढ़ गया है। परन्तु कुछ की बात है कि पिछले कुछ वर्षों में संयोजन के इस महत्वपूर्ण धर्म की तरफ समुचित ध्यान नहीं दे पाये। इसका एक कारण शायद यह रहा कि हम पिछले वर्षों में साम्राज्य से बर्बाद प्रचुली रही। उसके कुछ निरिच्छता की जगहों पर हो गई, परन्तु अब यह अनुभव लिया जाने लगा है कि केवल धर्म-न्यायसम्यक् की दृष्टि से ही क्षेत्रों की उपज बढ़ाना जरूरी नहीं है, बल्कि दूसरे क्षेत्रों से हमें जो लाभ प्राप्त होनी चाहिए। उसके लिए भी विदेशी मुद्रा कमाने के लिए भी बहुत जरूरी है। इसके अलावा राष्ट्रीय संयोजन के लिए आवश्यक साधनों का १० प्रतिशत हमें क्षेत्रों की उपज बढ़ाकर ही प्राप्त करना होगा। अगर हम यह नहीं बढ़ावें तो योजना की भीतरी जरूरतों के लिए साधन ही नहीं मिलेंगे। इसलिए संयोजन की नींव को मजबूत करने के लिए हमें इस समस्या पर अच्छी दृष्टि से विचार करना होगा और धैर्यपूर्वक कई वर्षों तक उठकर लगातार काम करना होगा। यदि हमने ऐसा किया तो मुझे विश्वास है हम अपनी क्षेत्रों की उपज परबल ही काफी बढ़ा सकेंगे। इसमें संशय या निराशा के लिए कोई कारण नहीं है।

हमारे लिए सबसे पहली विचारणीय बात यह है कि भारत के किसान

प्रकार नई गांधीवादी की जमीनों पर भी यह खेती अधिक प्रगच्छी और सफल हो सकेगी।

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि स्वयं गांधीजी इस प्रकार की सहकारी खेती को पसन्द करते थे। सन् १९४२ के १४ फरवरी के 'हरिवन' में उन्होंने लिखा था— मेरा पक्का विश्वास है कि जबतक हम सहकारी खेती की पद्धति को नहीं अपनायेंगे जबतक हमें खेती का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलेगा। बात निष्कुल साफ है। जो परिवार मिलकर किसी जमीन पर खेती करें और उत्पादन का आपस में बांट लें तो निश्चय ही अधिक फायदे में रहेंगे बजाय इसके कि उस जमीन को छोटे-बड़े सौटुकड़ों में बांट लें। सहकारी खेती का अर्थ है जमीन पूंजी साधन पशु, बीज आदि सभी चीजों पर सबका सम्मिश्रित स्वामित्व हो और खेती में सब मिलकर काम करें। यदि इस प्रकार खेती की जाय तो किसानों की सारी बख्तिरा और आनन्द भाग जायगा। परन्तु यह वहीं हो सकेगा जहाँ किसान आपस में मिल-जुलकर एक परिवार की भाँति रहेंगे। पाठकों को यह भी जान लेना चाहिए कि गांधीजी मानते थे कि केवल सहकारी सेवा समितियों से काम नहीं चलेंगा सहकारिता पूरी और दृढ़ बात में हो।

फिर सहकारी खेती का अर्थ यह नहीं कि वह यांत्रिक खेती ही हो। यह क्या समझ है कि बड़े-बड़े खेतों में उपज का मान अवश्य ही अधिक होता है। यदि बराबर मेहनत हो तो छोटे खेतों से भी काफी उपज लाया जा सकती है। उपज के आँकड़ों से तो यह सिद्ध होता है कि बड़े खेतों की अपेक्षा छोटे खेतों की उपज का मान ही ऊँचा होता है। उदाहरण के लिए अमरीका और फ्रान्सेलिया के बड़े-बड़े विशाल खेतों की अपेक्षा जापान की प्रति एकड़ उपज दूनी और डेनमार्क तथा स्विट्जरलैण्ड के छोटे खेतों की चौगुनी है। हाँ बड़े खेतों पर फील्ड के बजाय फील्डवासी उपज का मान अवश्य अधिक होता है। भारत में जो खेती की तरफ की जा रही है उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए।

भारत में सहकारी खेती को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित आदमियों का होना बहुत जरूरी है जो इसके तत्त्व को अच्छी तरह समझे-बुझे हों और सेवा तथा त्याग की भावना से किसानों से काम करने को तैयार हों। अतः

को अधिक उपज करने के लिए कैसे उत्पादक ब्रिताया जाय। येरा क्या है कि बोनी के ज़रूरीने पहले उसे यह धारणा मिल जाना चाहिए कि उसे उसके मात की कम-से-कम इतनी कीमत तो प्रदत्त मिलेगी। मैं तो समझता हूँ कि इस प्रकार न्यूनतम मात्र दो-तीन वर्षों के लिए भी निश्चित कर देने या सहे तो कोई हानि नहीं होगी। इससे वह अपने प्रगते धन-व्यय का हिसाब ठीक बैठ सकेगा परन्तु ये न्यूनतम मात्र वचित हों—उत्पादक और उपभोक्ताओं दोनों के लिए। इसी प्रकार बेकहरी क्षेत्र के उपभोक्ताओं और ग्रामीण क्षेत्र के उपभोक्ताओं दोनों को पुचाने भी चाहिए। उभर उत्पादक को जो सागठ-सर्व और परिश्रम मिलता है उसको ध्यान में रख कर उसे भी बराबर मुआवजा मिल जाना चाहिए। कपास और गन्ने के मात्र निश्चित करने का परिणाम बहुत अच्छा हुआ है। इसी प्रकार यदि हम प्रजाओं का मात्र भी निश्चित कर दें तो भारत के किसानों पर प्रचलित प्रसर पड़ेगा और वे हमारे राष्ट्रीय संयोजन में अच्छा योग दे सकेंगे।

छोटे किसानों की बकरतों को भी हमें भुलाना नहीं होगा। किसानों में इन्हींकी संख्या अधिक है। ध्यान देने की बात है कि कर्ष उकाशी खाद बीज बरत-सम्बन्धी जितनी भी सहूलियतें सरकार से दी जाती हैं वे इस वर्ग तक या तो पहुँचती ही नहीं या पहुँचती हैं तो बहुत कम और वे भी समय पर नहीं। वे सहायताएं देने के सम्बन्ध में हमने जो नियम बनाये हैं उनका आकार बामबाह है। इस कारण वे इनके निकट पड़ते हैं। केवल मासदार किसान ही उनसे लाभ उठा सकते हैं और छोटे किसान सहूलियतें न मिलने के कारण अपना उत्पादन नहीं बढ़ा पाते। इस दोष को बत्ती-से-बत्ती दूर किया जाना चाहिए।

फिर हमको बेसी-सम्बन्धी ऐसी योजनाओं की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए, जिनमें बहुत अधिक सरकारी कार्यवाही की भ्रष्ट न हो। उदाहरण के लिए हर नाँव से कहा जाय कि वह अपने यहाँ पंचायत और सहकारी समिति की भी स्थापना कर से और सिबाई की छोटी-छोटी योजनाएं, खाद बीजों के बेत और अपने लिए सुबरे हुए धाजार बनाने का काम इन्हींके द्वारा वे करायें। लालाओं में यदि मिट्टी भर गई है, तो उसे निका सने और पुराने कुओं की मरम्मत का काम तुरन्त हाथ में ले लिया जाना

चाहिए। जो राज्य-सरकारें अपने यहां इन कामों को अपने हाथ में लेनी उनकी सहायता नाष्ट-सरकार और योजना-आयोग प्रचल करेगा। जहां तक बादों का सम्बन्ध है, रासायनिक खादों का भी अपना महत्व प्रबन्ध है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु यह इस बात को सभी स्वीकार करने लग गये हैं कि अच्छे पुर्नोद्धार फसल यदि लेनी है तो उद्योगिक खाद को मोहर-मूत्र और येम के खाद तथा हरी खाद के साथ मिलाकर काम में लेना चाहिए। रासायनिक खाद बनावटी घन्न और खादा खाद स्वाभाविक घन्न के समान है। बनावटी घन्न निश्चय ही महंगा होता है, यद्यपि वह प्रारम्भ में अधिक लाभदायक मामूम होता है। परन्तु हमें अधिक ध्यान तो मुबकतबा वाले खाद के ऊपर ही देना चाहिए। प्रत्येक गांव बल्कि प्रत्येक किसान अपने लिए खारी खाद तैयार कर लिया करे। योजना-आयोग ने इस बारे में एक योजना बनाई है जो समस्त राज्य सरकारों के पास जेब दी गई है। फिर बहुत अधिक कर्चाली और कीमती ट्रैक्टर बाहर से मंगाने के बजाय हमें अपने देशी औजारों से ही काम लेने की कोशिश करनी चाहिए। जहां आवश्यक हो उनमें मुबार प्रचल कर लिया जाय। गई जमीनें छोड़ने के लिए ट्रैक्टरों का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु साधारण खेती के लिए हमारे ईजीनियरों और ईजीनियरिंग कालेजों को सुधरे हुए अच्छे औजार तैयार करने चाहिए। इससे सबसे स्वावलम्बन की और आत्मविरवास की भावना जायेगी। बीज खाद और औजार हर बात के लिए किसानों को सरकार का मुंह नहीं चकना चकना चाहिए। इस प्रकार हम उत्पादन नहीं बढ़ा सकते।

खेती के उत्पादन के साथ-साथ घनाजों के वितरण के काम को भी हमें अधिक व्यवस्थित बनाना होगा। घनाज के चोर ध्वंसार को धर सरकार अपने हाथ में ले लेती है तो इससे घनाज की कीमतों में स्थिरता लाने में काफी मदद मिल सकती है। समाजवादी समाज-व्यवस्था में इस प्रकार के महत्वपूर्ण कामों पर धासन का नियन्त्रण है भी जरूरी। इसमें एक बात का ध्यान रहे। घनाज के नियन्त्रण को लेकर नहीं एक नया धीर सम्भा-योद्धा मोहर बने निर्माण न हो जाय। उत्पादन विधाय और वितरण का यह सारा प्रबन्ध सहकारी समितियों संघात में। घनाज

जो काम खानगी व्यापारी कर रहे हैं इसे सहकारी समितियाँ करने लग जायेंगी अर्थात् खानगी के लोक व्यापारियों का स्थान सहकारी समितियों में लेंगी। हम आशा करें कि योजना-आयोग और कृषि तथा बाब मन्त्रालय इस सम्बन्ध में व्यवस्थित और पूरी योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यान्वित करने में लग जायेंगे।

सबसे अधिक महत्व का काम तो है हमारे वर्तमान शासन-मन्त्र को समय की जरूरतों के सामक जना देना। रास्वों के बेटी-सिंघाई और राजस्व बिभागों में अधिक सम्बन्ध और सहयोग होना चाहिए। एक ही नाम की बिम्बेदारी अनेक आबमियों पर डालने से नुकसान होता है। होना यह चाहिए कि प्रत्येक आबमी के पास निश्चित काम हो और उसे यह काम अपनी क्षमता पर करनी ठरह से करने का अवसर दिया जाना चाहिए। नर्मचारियों और अधिकारियों का काम बार-बार बदलने से कोई काम ठीक से नहीं हो पाता। इसका असर हमारी योजनाओं पर बुरा पड़ता है।

अन्तिम बात हमारी शिक्षा-योजनाओं में बिकास और आस और पर बेटी के साथ सुनबडवा सामे की बहुत जरूरत है। वर्तमान कृषि बिद्यालय अपने बेतों में बिद्यालयों को कुछ व्यावहारिक बिषय प्रकस देते हैं परन्तु इन्हें अपाधि देने से पहले गाँवों में भेजकर बह्रा कम-से-कम २५ महीने इनसे बेटी का प्रत्यक्ष काम लिया जाना चाहिए। इस अवधि में बेटी के सुधार-सम्बन्धी किसी आस योजना को सफल बनाने का काम से करें। इसी प्रकार मेडीकल कसिनों और इंजीनियरिंग कालेजों में पढ़नेवासे बिद्यालयों को भी गाँवों में भेजकर उनसे बिकास-सम्बन्धी किसी आस योजना को सफल करने में एक निश्चित अवधि के लिए मयब ली जाय। तब उन्हें बिस्वबिद्यालयों की सथाधिया ली जाय। इस पद्धति से बिकास-बिभाग और बिसा-बिभाग दोनों को लाभ होया तथा योजनाओं का समय भी प्रबद्ध होय।

तीसरी योजना की दृष्टि

तीसरी योजना का रूप तैयार किया जा चुका है। शासन और देश के

लिए वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः तमाम राजनैतिक वर्गों को अपने भेद-भाव भुलाकर निर्माण के इस महान् अभियान में लग जाना चाहिए। इसमें सबसे बड़ा सवाल है साधनों का। वे कहाँ से पायेंगे? हमें इस प्रश्न पर कुछ विस्तार से विचार करना होगा।

१ सबसे पहले तो वास्तविक करों की बसूली करनेवाले यंत्र को हमें पूरी तरह कार्यकुशल बनाना होगा। करों की जाँच करने के लिए जो प्रायोगिक निमुक्त किया गया था उसकी राय है कि करों की जोरी बहुत होती है। लोगों ने जो प्रारम्भ में बताया थीर जो जाँच के बाद पाई गई उसमें छूट चुका फर्क था। इस हिस्से से उन्होंने अनुमान लगाया कि शासन को प्रति वर्ष दो सौ से लेकर तीनसौ करोड़ रुपये का बाटा केवल करों की जोरी के कारण होता है। हम मान लें कि वास्तविक यह अनुमान एकदम सही न हो परन्तु प्रायः मान लें तो भी यह बहुत बड़ी रकम हो जाती है। इसलिए इस विभाग को प्रथम ही कसने की जरूरत है।

२ फिर छोटी बचत की रकमें एकत्र करनेवाले खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में काम करनेवाले संयोजन को भी सुधारने की बड़ी जरूरत है। यों तो ग्रहों में काम करनेवाले संयोजन में भी सुधार की काफी गुंजाइश है। उदाहरणार्थ अहमदाबाद के व्यापारी महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने ग्रह में एक सर्वेक्षण किया था। उसमें पाया गया कि दो सौ मजदूरों में से अठ्ठत्तर को सरकार की इस छोटी बचतवासी योजना का पता ही नहीं था। वे सारे सोम मासिक दो सौ रुपये से कम की आयवाले लोग थे और इन दो सौ बाईस आयियों में से केवल एक के पास योजना में काम करनेवाला प्रादमी पहुँचा था। इससे प्रकट है कि ग्रहों में भी योजना के अन्त को बहुत विचारशील बनाने की जरूरत है। परन्तु ग्रामीण क्षेत्र तो अभी एकदम अज्ञात ही पड़ा हुआ है। इसमें जाँच-विभाग का उपयोग करना अधिक सुविधाजनक होगा। सेविंग बैंक—अर्थात् बचत जमा करने की सुविधा बहुत अधिक गाँवों में कर दी जानी चाहिए। इसी प्रकार इसके नियमों में भी खास तौर पर वर्ज की मियाद पर जाने पर अपनी रकम को निरासने की विधि कुछ अधिक सरल कर दी जाय। बीमे की पद्धति के लिए भी गाँवों में बहुत बड़ा ध्यान पड़ा हुआ है। राजस्थान के एक-दो सामुदायिक

को काम आगयी व्यापारी कर रहे हैं, इसे सहकारी समितियाँ करण तब आगयी। अर्थात् ग्रामाज के लोक व्यापारियों का स्थान सहकारी समितियों में मँपी। हम आशा करें कि योजना-आयोग और कृषि तथा आद्य मन्त्रालय इस सम्बन्ध में व्यवस्थित और पूरी योजनाएं बनाकर उन्हें कार्यान्वित करने में सत आगये।

सबसे अधिक महत्व का काम तो है हमारे वर्तमान शासन-व्यवस्था की समस्याओं के समाधान करना। राज्यों के खेती सिंचाई और राजस्व विभागों में अधिक सम्बन्ध और सहयोग होना चाहिए। एक ही काम की बिम्बेवारी अनेक प्रावधियों पर लागने से नुकसान होता है। होना यह चाहिए कि प्रत्येक प्रावधि के पास निश्चित काम हो और उसे वह काम अपनी क्षमताओं के अनुसार ठीक से करने का अवसर दिया जाना चाहिए। कर्मचारियों और अधिकारियों का काम बार-बार बदलने से कोई काम ठीक से नहीं हो पाता। इसका असर हमारी योजनाओं पर कुछ पड़ता है।

प्रथम बात हमारी शिक्षा-योजनाओं में विकास और शासक और पर खेती के साथ सुनबद्धता लाने की बहुत जरूरत है। वर्तमान कृषि विद्यालय अपने खेतों में विद्यार्थियों को कुछ व्यावहारिक शिक्षण प्रबन्ध देते हैं परन्तु उन्हें उपाधि देने से पहले गांवों में भेजकर वहां कम-से-कम छ महीने इनसे खेती का प्रत्यक्ष काम लिया जाना चाहिए। इस अवधि में खेती के सुधार-सम्बन्धी किसी आस योजना को सफल बनाने का काम करें। इसी प्रकार मैडीकल कॉलेजों और इंजीनियरिंग कॉलेजों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को भी गांवों में भेजकर उनसे विकास-सम्बन्धी किसी आस योजना को सफल करने में एक निश्चित अवधि के लिए मदद की जाय। तब उन्हें विद्यार्थियों की उपाधियाँ दी जायें। इस पद्धति से विकास-विधायक और शिक्षा-विधायक दोनों को लाभ होगा तथा योजनाओं का प्रभाव भी अधिक होगा।

७

तीसरी योजना की दृष्टि

तीसरी योजना का रूप तैयार किया जा चुका है। शासन और देश के

नए बहु पर्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः तत्काल राजनैतिक दलों को अपने वेद-भाव भुलाकर निर्माण के इस महान अभियान में लगे जाना चाहिए। इसमें सबसे बड़ा सवाल है साधनों का। वे कहाँ से आये ? हमें इस प्रश्न पर कुछ विस्तार से विचार करना होगा।

१ सबसे पहले तो शासकीय करों की बसूली करनेवाले यन्त्र को हमें पूरी तरह कार्यक्षम बनाना होगा। करों की जाँच करने के लिए जो प्रायोग नियुक्त किया गया था उसकी राय है कि करों की चोरी बहुत होती है। जेलों में जो प्रारम्भ में बंटाई थीर जो जाँच के बाध पाई गई उसमें स्रग्गुणा फर्क था। इस हिसाब से उन्होंने अनुमान लगाया कि शासन को प्रति वर्ष दो सौ से लेकर तीससौ करोड़ रुपये का बाटा केवल करों की चोरी के कारण होता है। हम मान लें कि धायव यह अनुमान एकदम सही न हो परन्तु प्राचा मानलें तो भी यह बहुत बड़ी रकम हो जाती है। इसलिए इस विभाग को प्रबल ही कसने की जरूरत है।

२ फिर छोटी बचत की रकमें एकत्र करनेवाले सास तीर पर ग्रामीण क्षेत्रों में काम करनेवाले संघठन को भी सुधारने की बड़ी जरूरत है, यों तो सहर्षों में काम करनेवाले संघठन में भी सुधार की काफी मुंजाइत है। उदाहरणार्थ ग्रहमबाबा के व्यापारी महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने शहर में एक सर्वेक्षण किया था। उसमें पाया गया कि दो सौ मजदूरों में से अठ्ठहत्तर को सरकार की इस छोटी बचतवाली योजना का पता ही नहीं था। वे सारे शीघ्र मासिक दो सौ रुपये से कम की आयवाले लोग थे और इन दो सौ बार्स प्राथमियों में से केवल एक के पास योजना में काम करनेवाला प्रादक्षी पहुंचा था। इससे प्रकट है कि सहर्षों में भी योजना के यत्न को बहुत कियाधीन बनाने की जरूरत है। परन्तु ग्रामीण क्षेत्र तो अभी एकदम प्रसूता ही पड़ा हुआ है। इसमें डाक-विभाग का उपयोग करना अधिक मुविबाजनक होगा। सेविश्व बैंक—अर्थात् बचत जमा करने की मुविधा बहुत अधिक गांवों में कर दी जानी चाहिए। इसी प्रकार इसके नियमों में भी सास तीर पर कर्ज की मियाद पक जाने पर अपनी रकम को निकालने की विधि कुछ अधिक सरल कर दी जाय। बीमे की पद्धति के लिए भी गांवों में बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है। राजस्थान में एक-दो सामुदायिक

विकास-खर्चों में इसका प्रयोग करने पर उसमें काफी उत्साह-वर्धक सफलता मिली है। जयपुर जिले के केवल दो विकास-खर्चों में छः महीनों में ₹ १०००००० का बीमा हो गया। यदि देश के दूसरे भागों में भी इसी प्रकार प्रयोग किया जाय तो मुझे विश्वास है बहुत थोड़ा परिणाम प्राप्त सकता है।

३. रैमबेसहित कई शासकीय कारोबार हैं। उनको लाभदायक बनाकर उस लाभ का उपयोग योजना के लिए हो सकता है। यह क्मात्त गलत है कि इनमें कमाना नहीं चाहिए। इनमें नफ़ा कमाकर जनता की ही सेवा में लगाया क्यों बुरा है?

४. भूतल-कर, व्यय-कर, सम्पत्ति-कर की बरे बढ़ाई जा सकती हैं और प्रतिरिक्त लाभ के कर को स्थायी कर दिया जाय।

५. यदि खेती और उद्योगों के उत्पादन को हम बढ़ा सकते हैं तो बाटे की धर्म-व्यवस्था के बारे में भी हमें भ्रमरान बबराना नहीं चाहिए। उत्पादन बढ़ेगा तो बचत भी सम्भव होगी ही और बचत होगी तो हम अपनी योजनाओं के आकार की क्यों नहीं बढ़ा सकते। धार्मिक क्षेत्र में यदि सहायी सेवा-समितियाँ काममें हो जाय तो खेती की उपज सम्भव ही बढ़ेगी क्योंकि इनकी मदद से खेती गहरी और वैज्ञानिक तरीके से होगी। उद्योग के क्षेत्र में हमें सारे देश में छोटे-छोटे उद्योगों-ग्रामोद्योगों और गृहोद्योगों का नाम बिछा देना होगा जो सहायी पद्धति पर काम करेगा। इस प्रकार तीसरी योजना का आधार न विधुत रूप से खेती होगा न उद्योग बल्कि दोनों होंगे और लोग इस प्रकार खेती और छोटे-छोटे कार-खानों में काम करेंगे कि दोनों मिलकर एक ही हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक और सहायक होंगे।

देश के समान भागों को इन कार्यों के लिए उपलब्ध करने के लिए हमें शासन तथा संघटन में भी बहुत-से सुधार और परिवर्तन करने होंगे। उनपर भी विचार कर देना उचित होगा।

(घ) उत्पादन और उपभोग के क्षेत्रों में हमें सहायिता का ब्रुव विस्तार करना होगा। खेती और औद्योगिक सहायी समितियों की मदद से न केवल उत्पादन को बढ़ाने में बल्कि पूँजी के निर्माण में भी हमें मदद

मिलेगी जो कि अपनी प्रवृत्तियों के बढ़ाने में हमारी सहायता करेगी गाँवों में और संस्थानों में बेचनेवाली सहकारी समितियाँ खरीद-बिक्री का धोक व्यापार करेगी। बाईं और मोहम्मद के उपभोक्ताओं की सहकारी समितियाँ प्रजाज के निरक्षण में सहायता करेंगी। औद्योगिक क्षेत्र में छोटे-छोटे उद्योगों के खोलने में सहकारी समितियाँ बड़ा काम करेंगी। मुझे तो लगता है कि यूरोप की भाँति यहाँ भी बड़े उद्योग सहकारी पद्धति से बकर बनाये जा सकते हैं।

(घ) गाँवों और शहरों के जीवन-मान और पद्धति में भी बड़ा अन्तर हो गया है। हम देखते हैं कि इधर कई जगहों से बहुत बड़ी संख्या में गाँवों के लोग गाँवों को छोड़कर शहरों में जाकर बसते जा रहे हैं। इस कारण शहरों की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। लोग गाँवों को छोड़-छोड़कर शहरों में जाते हैं, इसके मुख्य कारण दो हैं—एक तो गाँवों में रोजी का न मिलना और दूसरे शहरों में शिक्षा आरोग्य तथा जीवन की अन्य सुविधाओं का होना। इस प्रवाह को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि ये सुविधाएँ गाँवों में भी उपलब्ध कर दी जायें। इस हेतु से गाँवों में उद्योगात्मक खोलना प्रारम्भ भी हो गया है। इन उद्योगों के लिए गाँवों में पानी की सस्ती बिजली भी दी जायगी। इससे उद्योगों के चलाने में भी मदद मिलेगी और ग्रामीणों को प्रकाश की भी सुविधा हो जायगी। इस बिजली की सहायता से तेल गुड़ आखसारी आबस कामज और बमड़े के उद्योग बड़ी पच्छी तरह से गाँवों में चलाये जा सकते हैं।

(ङ) अर्थात् शिक्षा का सम्बन्ध है सरकार को गाँवों में भी माध्यमिक उच्च तथा औद्योगिक विद्यालय खोल देने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत-सी बंजर जमीन बेकार पड़ी हुई है। शहरों में बड़ी कीमतें देकर खर्चीली इमारतें बनाने के बजाय गाँवों की इन बेकार पड़ी हुई जमीनों पर घर बनाएँ और अच्छे-अच्छे अस्पताल बना दिये जायें तो बहुत सस्ते में काम हो जायगा और जमीनों का भी उपयोग हो जायगा। यदि यह हो सका और रोजी तथा जीवन की ये अन्य सुविधाएँ भी स्वयं गाँवों में लोगों को बरबंटे मिल गईं तो शहरों की तरफ जानेवाला जनता का प्रवाह अपने आप बन्द हो जायगा, बल्कि उल्टे शहरों के लोग गाँवों के स्वास्थ्यप्रद

मातांवरण में प्रावर बसना पसन्द करते समेत ।

(ई) आर्थिक और सामाजिक न्याय के सिद्धान्त इस छेती और उद्योगों की इस समन्वित व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए यह बकरी है कि विविध क्षेत्रों में काम करनेवाले लोगों के वेतनों में जो बहुत बड़ा अन्तर है वह कम किया जाय और उस न्याय और समता पर आधारित किया जाय । प्रायः केन्द्रीय शासन के मातहत काम करनेवालों और राज्यों के कर्मचारियों के वेतन में काफी अन्तर है । राज्यों के कर्मचारियों के और नगरपालिकाओं के कर्मचारियों के वेतनों में भी अन्तर है । सरकारी और निजी कर्मचारियों के वेतनों तथा नौकरी की शर्तों और परिस्थितियों में अन्तर है । इस अन्तर को दूर करके सारे देश के लिए न्यूनतम और अधिकतम वेतन का मातृ निर्धारित करने की भी जरूरत है और वैसे कि कर-आव-आयोग ने सुझाया है न्यूनतम प्राय और अधिकतम प्राय के बीच का अन्तर १ : १० से किसी प्रकार अधिक न हो ।

(उ) सहकारिता की पद्धति से स्थापित और चालित छेती और उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें कर्ष-सम्बन्धी सहूलियतों का भित्ति बकरी है । इस विषय में हमें बेकों की नीति में ही सुधार करना होगा । ग्रामीण जनताओं को और सहकारियों को कर्ष प्राधानी से भित्त जाता है । गरीब बेचते रह जाते हैं । बेकों की नीति में ऐसा सुधार करने की जरूरत है जिससे छोटे किसान और कारीगर भी इस सुविधा से लाभ उठा सकें ।

(ऊ) परिवहन और संचार-व्यवस्था के क्षेत्र में भी गांधी की जरूरतों की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए । उदाहरणार्थ बड़ी-बड़ी सड़कों और राष्ट्रीय मार्ग बनाने की अपेक्षा गांधी के बीच में प्राचीन कच्ची सड़कों और छोटे-छोटे पुल तथा रपटें बनाना अधिक अग्रेसर होगा जिससे किसान अपनी उपज बाजारों में प्राधानी से पहुंचा सकें ।

(ए) बेहतर में छेती से निकट का सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगों के खोलने और चलाने के लिए प्राचीन स्वयं प्रविष्टाओं से ऐसा प्रयत्न करना चाहिए । प्रायः तो वे विद्यार्थी छात्रों युवकों से मरे रहते हैं, जो सरकारी नौकरी पर भी गांधी में जाना बहुत कम पसन्द करते हैं ।

(ऐ) विकास की किसी भी योजना में नगरीयों का स्वेच्छित सहयोग

परम आवश्यक होता है। परन्तु भाव यह कहना कठिन है कि संघों में अधिक उत्पादन करने में मजदूर-संयोजन किस से सहयोग दे रहे हैं। इसलिए जितने भी संघों और विभागों में संभव हो काम की तादाद को देखकर मजदूरी देने की पद्धति बनाना आवश्यक भाव्य होता है। इसके साथ ही न्यूनतम मजदूरी भी निर्दिष्ट कर दी जाय और ऐसी व्यवस्था हो कि प्राप्त हो जाकर मजदूर स्वयं सहायी सिद्धान्तों पर कार्रवाने के मात्तक न जाय। तबतक संकामकाल में कारखानों की व्यवस्था में मजदूर अधिकाधिक भाग ले सकें ऐसी परिपाटी बाल दी जाय जिससे उन्हें यह महसूस हो कि वे भी उसके संयोजक हैं।

(घो) राष्ट्रीय संयोजन में जनता में किसी उत्साह पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि जनता की अपनी संस्थाओं अर्थात् पंचायतों और सहायी समितियों को संयोजन और विकास में प्रभावशाली और क्रियाशील बनाया जाय। समाजवादी रचना के परिणामस्वरूप देश में नीकरी का विद्यास प्राप्त नहीं फैलाना चाहिए। इसके विपरीत जनता और उसकी संस्थाओं को स्वयं अपनी योजनाएं बनाकर उनका प्रमत्त करने का अवसर देना चाहिए। इससे उनकी बुद्धि साहस-शक्ति और साधनों का पूरा-पूरा विकास हो कर सकेगा।

जनता परिश्रम करे, आवश्यक आर्थिक बोझ उठाने या भनाज प्रवर्धन अपनी उपज की अल्पकोई चीज दे तो उसे जीवन की न्यूनतम प्राथमिक आवश्यकताएं तो प्रवर्धन ही मिल जाय इसके लिए उन्हें बिल से यत्न हो। उदाहरणार्थ एक भी गांव ऐसा न हो जहां पीने के लिए स्वच्छ-छुड़-भीठे पानी का साधन न हो स्कूल न हो और समिति को जाने के लिए निकटतम मण्डी और सहायी समिति को जाने के लिए सड़क न हो। गांवों में भोवों को काफी समय मिलता है। उसका उपयोग में प्राथमिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए वे अवसर कर सकते हैं।

ये तो कुछ सूचनाएं मात्र हैं। इनपर तथा और भी उपयोगी सूचनाओं पर सबको बैठकर विचार करना चाहिए और कोई निर्दिष्ट कार्य कम बनाकर उसे कार्यान्वित करने में लग जाना चाहिए। योजना-क्षेत्रों में और अल्पकाल तक जो प्रयत्न प्रामुख्य हुआ है निश्चय ही वह भी हमारा मार्ग-दर्शन करेगा।

खण्ड ६

उपसंहार

भारत का आर्थिक विकास बन्धी-से-बन्धी हो यह आवश्यक है। हम सब यह चाहते हैं परन्तु इसके लिए यदि उत्साह में हम कहीं एक की बात को न धुता हैं। केवल नीतिक सुख-साधनों के बड़ जाने से ही राष्ट्र प्रतिष्ठीत नहीं बन जाता है। ये सुविधाएँ हम अपने नागरिकों को बिठनी भी संभव हो अधिक-से-अधिक हैं अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को संतुष्टित जीवन मिले। सरीर-रक्षा के लिए पूरे कपड़े हों रहने के लिए आश्रम अर्थात् घर हो शिक्षा और आरोग्य-सम्बन्धी सुविधाएँ हों—ये सब हों। परन्तु किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सच्चा माप तो उसके नागरिकों की संस्कारशीलता और चरित्र ही माता बामया। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु कुछ की बात है कि ऐडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और कीम्स तक के समान आदर्शवादियों और नीतिक, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र पर चिन्तन करनेवालों ने इस प्रश्न के माननी तथा नैतिक पहलू पर बहुत कम ध्यान दिया है। बाँबीजी ने लिखा है कि 'सम्यता का अक्षरी अर्थ अपनी आवश्यकतों को बढ़ाना नहीं बल्कि स्वयं उन्हें विवेकपूर्वक कम करना है।' पैट-भर उपभोग कर लेने के बाद धीरे में समाप्ति इसी नतीजे पर तो पहुँचा था कि भोज से कामना शान्त नहीं होती, उल्टे बढ़ती ही जाती है।

न जातु काम-कामना उपभोगेन आम्बति ।

हविषा कृष्य-वर्जितं भुयएवामिबर्जते ॥

आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा बनाये गए सौ धीरे विभिन्न विधियाँ सिद्धि और सौ धीरे इनसंख्येयस्य वास्तव का अर्थ भी तो यही है। इस लिए हमारे आर्थिक संयोजन का मुख्य केवल यह न हो कि हम बहुत सारी

भीजें पैदा करें ताकि लोगों की सुख-सुविधाएं बूझ बढ़ें बल्कि यह हो कि लोग अपने जीवन को अच्छा बनायें। प्रथम जीवन को ऐसा बनाने के लिए केवल प्रावश्यक चीजों का उत्पादन ही हम बढ़ायें। आर्थिक संयोजन की जिस पद्धति में केवल उपसोप्य वस्तुओं के उत्पादन के बढ़ाने पर ही जोर दिया जाता है और मनुष्य के नैतिक विकास का ध्यान नहीं किया जाता। वह निश्चय ही समाज को अन्ये कुएं में गिरानेवाली है।

दूसरी चीज है विकेन्द्रीकरण। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ आर्थिक और राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी परम आवश्यक है। गांधीजी की दृष्टि में विकेन्द्रीकरण स्वयं एक वैज्ञानिक आवश्यकता है, उसमें सामाजिक स्थिरता का आस्वादन है। जिस प्रकार अपने लिए घर पर ही खाना पका लेने में कोई प्रमाद्विपण या पिछड़ेपण नहीं है, उसी प्रकार विकेन्द्रीकृत विकेन्द्रीकरण वही पिछड़ेपण की निशानी नहीं माना जा सकता। स्वावलम्बन व्यक्ति और समाज दोनों के जीवन में अहिंसा को सुमन बना देता है जो दोनों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

अहिंसक अर्थात् सर्वोच्च समाज रचना में सारा अभिक्रम पंचायतों और सहकारी समितियों जैसी समाज की छोटी-छोटी इकाइयों के द्वारा में रहना चाहिए, ताकि स्वपराजम और स्वावलम्बन का उन्हें व्यवहार मिले और वे आजादी का उत्साह अनुभव कर सकें। इसीलिए तो आर्थिक और राजनैतिक इकाइयों के रूप में पंचायतों का विकास करने पर गांधीजी इतना जोर दे रहे थे। सामुदायिक विकास की प्रवृत्ति का इतने व्योम का अनुभव भी हमें यही कहता है कि समाज का विकास पंचायतों सहकारी समितियों और पाठशालाओं की मध्य से ही हो सकता है क्योंकि छोटी छोटी इकाइयों के अन्दर मनुष्यों में परस्पर प्रेम मित्रता और विश्वास होता है। पश्चिम के विचारक भी अब इस बात को मानने लग गये हैं कि वहां राजनैतिक और आर्थिक सत्ता अत्यधिक केन्द्रित होती है वहां लोक-तंत्र का अच्छा विकास नहीं हो सकता। अत्यधिक केन्द्रीयकरण से मनुष्य की सुजन-शक्ति दब जाती है, स्वतन्त्रता के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता और अपने-आप काम करनेवाले मनुष्य की यांति यह पड़ बन जाता है।

नहीं हो सकता। हां कम धावादीवासे देशों में जहां पूंजी बहुत है, वहां पहले ही यन्त्रों से काम लिया जा सकता है।

इसलिए भारत जैसे गरीब देश तो फिलहाल प्रयोज्य कम उत्पादक धीमारों से भी काम चला ले तो बुरा नहीं है। इसीलिए गांधीजी बड़ा जोर देते थे कि हर मनुष्य अपने हाथ से परिश्रम करे और अपनी प्राथमिक स्थिति सुधारे। इसमें उन्हें कभी संकोच नहीं मानूम हुआ। वह तो मनुष्य की नैतिक और धार्मिक उत्पत्ति के लिए भी शरीरश्रम को प्राथमिक मानते थे। वह कहते थे 'भगवान ने मनुष्य को हाथ इसीलिए दिये हैं कि वह खुद परिश्रम करके अपनी रोटी कमावे। जो ऐसा नहीं करता वह खोर है।' अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक संयोजन में भी इस सिद्धान्त को सब स्वीकार किया जा रहा है।

सबसे बड़ी और महत्व की बात तो यह है कि हमारे सारे संयोजन और प्रगति के प्रयासों में मानवता की भावना प्रधान रहनी चाहिए। आचार्य बिजीबा इजर बहुत समय से कह रहे हैं कि जब विज्ञान और यन्त्र शास्त्र के साथ धर्मिता धर्मात् मानवता का होता निष्ठात बकरी हो गया है। विज्ञान की प्रगति के कारण धर्मिता अब धर्मितार्थ हो गई है। विज्ञान ने मनुष्य को अब इतना साक्षितकारी बना दिया है कि बेवतार्थों को भी उससे ईर्ष्या होती। अब तो यदि जिन्दा रहना है तो धर्मितयुक्त सङ्गीतन धर्मात् धर्मिता के बहर काम नहीं चल सकता। अब तो मानवता और धार्मिकता का स्वात किया बिना यदि हम केवल भौतिक मूर्त्यों के पीछे ही बीड़ते रहे तो यह विज्ञान और यन्त्र समाज का कल्याण करने के बजाय जीवन में बिप बोन देंगे और समाज को बिनाश की गर्त में पहुंचा देंगे। नैतिक और धार्मिक मूर्त्यों की रक्षा बनी धावादीवासे सहरों की प्रपेशा गांवों की छोटी-छोटी इकाइयों में धर्मिक धर्मिता तरह से हो सकती है। इसीलिए तो गांधीजी चाहते थे कि भारत में सहरों और पश्चिम के ढंग के बड़े-बड़े उद्योगों का विकास न हो बल्कि गांवों में पंचायतों की पुनः स्थापना हो सङ्कारी समितियां बनें छोटे-छोटे ग्रामीणोय बहों चले तथा सारे गांव अपनी बकरतों के बारे में स्वावसम्भी हों और धास-धास के गांवों और पंचायतों से भी उनका सम्बन्ध हो। इस प्रकार सब मिसकर

एक-दूसरे की मदद करें। यदि ये सारी सुविधाएँ गाँवों में ही कर दी जायँगी तो धातु रोजी की तलाश में या शिक्षा तथा अन्य सुविधाओं के लिए गाँवों के लोगों को जो शहरों में जाना पड़ता है वह भी बन्द हो जायगा। गाँवों का उन्नयन बन्द हो जायगा। गाँवों में ये सुविधाएँ यदि ही जाती हैं तो ग्रामीणों को अपना घर और परिवार नहीं छोड़ना पड़ेगा और वे स्वाभाविक मुक्त बातावरण में रह सकेंगे।

इसलिए भारत जैसे बड़ी आबादीवाले किन्तु कम विकसित देश के लिए बड़े-बड़े सहयोगी सम्मता का विकास करने के बजाय छोटी-छोटी इकाइयों का प्रत्यक्ष ग्रामों की सम्मता का विकास ही अधिक लाभदायक होगा। इन गाँवों में छोटे-छोटे उद्योग और कारखाने भी हों जो इनकी जरूरतों को पूरा कर दिया करें।

इस विकेंद्रित समाज रचना में प्रत्येक व्यक्ति और इकाई को समाज और देश के व्यापक हितों को भी सदा ध्यान में रखना होगा। सर्वोदय प्रकृति गाँबीजी के विचार की समाज रचना में व्यक्ति और समाज दोनों को परस्पर के हितों की रक्षा-बुद्धि करनी होगी। जहाँ-जहाँ भी इनके हित टकराते नजर आने लगें उनको छान्ति और प्रेम से ठीक कर लिया जायगा।

यस में मैं फिर बता दूँ कि मेरा तो पक्का विश्वास है कि धार्मिक विकास के सम्बन्ध में गाँबीजी के विचार पुराने अपने देलनेवाले एक प्राचीन के और पिछड़े हुए नहीं हैं बल्कि वे परम्परा बुद्धिमत्तापूर्ण और वैज्ञानिक हैं और धार्मिक-से-धार्मिक परिधि में विचार से सम्मत् हैं। पश्चिम के लोगों के पास जो भी सीखने सामक बातें हों उनसे हम प्रबल्य लाभ उठावें परन्तु अपने देश के लिए नहीं योजनाएँ बनाते समय उन बुद्धिवादी सिद्धान्तों की उपेक्षा न करें जिन्हें गाँबीजी ने अपने सम्पूर्ण जीवन में ग्रामभाकर और सब परत-परतकर हमारे सामने रखा है। अपने छोटे विचारों का धार उन्होंने इस छोटे-से क्षेत्र में हमारे और संसार के सामने रख दिया है।

“मैं आपको एक गुप्त-सूत्र बताये देता हूँ। जब कभी आप सन्धेह और मोह में पड़ जायँ तो यह कसौटी लगा लीजिये। उस गरीब-गरीब और कमजोर-से-कमजोर प्राचीन का स्थापन कीजिये जिसे आपने कभी देखा ही

धीरे अपने आपसे पूछिये कि जो कदम आप उठाना चाहते हैं उसका फल पर क्या पसर होगा ? उसे कुछ लाभ होगा ? अपने जीवन को सुधालेगी ऊपर उठने में आपके कदम से उसे कुछ मदद होगी ? दूसरे शब्दों में यदि तो क्या उसके भूखों धीरे धार्मिक भोजन के अभाव में जो ठक रहे हैं, उनका स्वास्थ्य एक कदम भी नजदीक आयेगा ? तब आप देखेंगे कि आपका सारा समूह धीरे मोह वायव हो गया है धीरे आपका दिल कहेगा—नयी भोजन समुत्थितता ।



